समर्पण

परम पूज्य पिता जी श्री अम्बालाल व्यास
एवं
माताजी जडाव बहन व्यास को
सादर समर्पित

—नटवरलाल व्यास

परिचय

डॉ० नटवरलाल अम्बालाल व्यास पिछले आठ वर्षों से क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा मे गुजराती के प्राध्यापक का काम कर रहे हैं। उपर्युक्त सस्था के प्रवर्त्तन काल से लेकर जब तक मैं उनका निदेशक रहा तब तक डा० व्यास के सम्पर्क का मुझे लाभ था। मैं इनकी अध्ययनशीलता से बहुत ही प्रभावित रहा हूँ। अध्यापन का कार्य करते हुए उन्होने ऐसे विषय पर अनुसधान किया है, जिसके बारे में गुजराती के ही नही, अपितु हिन्दी के विद्वानो का भी ध्यान नही गया था। नरसिंह मेहता से लेकर मूलदास तक गुजराती के कवियो ने गुजरात मे हिन्दी के विकास और समृद्धिवर्द्धन मे अपनी रचनात्मक शक्ति द्वारा जो योग दिया, हिन्दी की सरस्वती की आराधना मे अपनी प्रतिभा की जो भेंट चढाई, इन सबका सम्यक् अध्ययन डा० व्यास ने अपने शोध प्रबन्ध "गुजरात के कवियो की हिन्दी काव्य साहित्य को देन" मे प्रस्तुत किया है।

इस ग्रन्थ मे ६० से अधिक कवियो के विषय मे विस्तृत जानकारी उनकी रचनाओ के उदाहरण के साथ दी गई है। इनमें से बहुतेरे कवियों के विषय मे हमारी जानकारी प्राय बहुत कम थी। प्रारम्भ मे डा० व्यास ने गुजरात के सास्कृतिक इतिहास तथा गुजरात मे हिन्दी की लोकप्रियता का जो विवेचन किया है, उससे इस ग्रन्थ का महत्व और बढ़ गया है। धार्मिक और सास्कृतिक दृष्टि से गुजरात प्रारम्भ से ही देश का प्रमुख अग रहा है। भगवान कृष्ण के समय से लेकर आज तक धार्मिक, सास्कृतिक और सामयिक जन-आन्दोलनो का प्रभाव गुजरात पर पडा है। उस प्रभाव को गुजरात के हिन्दी कवियो ने किस रूप मे ग्रहण किया, इसका बडा रोचक परिचय हम इस पुस्तक मे पायेंगे। गुजरात के मध्यकालीन कवियो द्वारा विरचित भक्ति-काल तथा राजाश्रित कवियों द्वारा प्रणीत अलकृत काव्य का हिन्दी साहित्य की विकास परम्परा मे विशिष्ट स्थान है। इस विवचन से यह भी स्पष्ट होगा कि हिन्दी का विकास प्रारम्भ से ही अखिल भारतीय रूप म हुआ है और उसमे हिन्दीतर क्षेत्र के साहित्य स्रष्टाओ का भी वैसा ही योग रहा है जैसा हिन्दी क्षेत्र के।

डा० व्यास की इस विद्वत्तापूर्ण कृति की मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ और विद्वन्मण्डली के समक्ष इसकी संस्तुति करते हुए मुझे असाधारण आनन्द हो रहा है।

डा० विश्वनाथ प्रसाद

निदेशक,

२६-१-१९६५

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

प्रस्तावना

श्री नटवरलाल अम्बालाल व्यास सन् १९५६ मे क० मु० हिन्दी विद्यापीठ मे गुजराती के प्राध्यापक पद पर नियुक्त होकर आगरा आये। तभी से मेरा इनसे परिचय हुआ। डा० व्यास अत्यन्त सीधे-सादे, मितभाषी और सरल प्रकृति के अध्यापक हैं। विद्यापीठ अनुसधान-प्रधान सस्था थी अत. इसके प्रत्येक प्राध्यापक को किसी-न किसी प्रकार के अनुसधान मे प्रवृत्त होना आवश्यक था। इसी प्रेरणा से डा० व्यास ने पी-एच० डी० करने का निश्चय किया। इसमे आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति एव उत्तर प्रदेश के गवर्नर श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी जी का भी हाथ था। इनकी नियुक्ति के तुरन्त बाद ही मुशी जी ने मुझसे कहा कि इन्हे शीघ्र डाक्ट्रेट दिलाओ, और व्यास जी से कहा कि किसी अच्छे अनुसधान से पी-एच० डी० प्राप्त कीजिए।

क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ की कल्पना मे एक अत्यन्त दिव्य भावना काम कर रही थी। उस भावना का मूल स्रोत सभवत. मुंशी जी ही थे। कल्पना यह थी कि हिन्दी क्षेत्र मे एक ऐसा शोध-सस्थान स्थापित होना चाहिए जिसमे भारत की समस्त भाषाओ के विद्वान उपस्थित रह, समस्त भारत के सभी भाषा क्षेत्रो से विद्यार्थी भी वहाँ आयें—इन विद्यार्थियों को उच्चस्तरीय अध्ययन कराया जाय तथा तुलनात्मक अनुसधान कराया जाय। इस समस्त अध्ययन-अध्यापन और शोध का माध्यम हिन्दी हो। इस प्रकार भारत की सभी भाषाओं का एक केन्द्र बने, जिसमें भारत की सभी भाषाओ के विद्वान तथा व्यक्ति परस्पर एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क मे आयें और यह सम्पर्क सारस्वत भूमि पर भारतीय साहित्य को यथार्थतः भारतीय रूप दे। और इस समस्त उपक्रम का माध्यम हिन्दी बने। इस योजना के अन्तर्गत इस विद्यापीठ मे तुलनात्मक साहित्य मे शोध कार्य को प्रमुखता दी गयो। डा० व्यास ने इसी योजना के अन्तर्गत 'गुजरात के कवियो की हिन्दी काव्य साहित्य को देन' विषय पर शोध करने का निश्चय किया।

डा० व्यास अध्यवसाय और लगन से अपने अनुसंधान मे लग गये। आपके इस शोध-ग्रन्थ के संबध मे एक विद्वान का यह मत है "The treatment of the subject is lucid and records much valuable information.

to the literary studies. He has found out as many as 91 poets born and brought up in Gujarat who wrote notable poems in Hindi and prescribed varied specimen of poetry (Kavya) and a new variety of metres and subject-matter." इन्होंने ही आगे लिखा है, "The work is doubtlessly an outcome of the candidate's patient industry and careful research and could be deemed to be a worthy contribution towards the advancement of the literary studies both in Hindi and Gujarati as well."

यह उद्धरण इस ग्रन्थ के महत्त्व को भी स्पष्ट करता है। गुजराती क्षेत्र ने हिन्दी के विकास में कितना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, यह डा० व्यास के इस ग्रन्थ से स्पष्ट हो जाता है। और हमें 'शिक्षण अने साहित्य' के लेखक श्री जनक दवे के इस कथन का स्मरण हो आता है कि गुजरातियों के हाथों हिन्दी भाषा की जो सेवा हुई है वह मूक होते हुए भी महान है। जैसे डा० व्यास ने इसी कथन को सिद्ध करने के लिए अपने अध्यवसायपूर्ण अनुसंधान से प्रमाण रूप मे ही यह ग्रन्थ दिया हो। इससे यह भी स्पष्ट है कि दोनों भाषाओं का हृदय एक है, दोनों के साहित्य की साधना का स्वरूप एक है।

गुजरात के कई हिन्दी कवियों से जब तब हम लोग परिचित होते रहे हैं। नरसी मेहता का नाम तो सभी हिन्दी क्षेत्र में परिचित था, पर नरसी का भात या नरसी का मामेरा या माएरा भी जहाँ तहाँ बड़ी रुचि से गाया और सुना जाता रहा है, गाँवों मे, लोक क्षेत्र में लोक गाथा के रूप में। इन पंक्तियों के लेखक ने बचपन में नरसी का भात सुना था, वह बड़ी प्रवाहपूर्ण शब्दावली मे था, गाने वाला भी उससे प्रभावित होता था और सुनने वाला तो मंत्रमुग्ध हो जाता था। दयाराम भी पहले से हमारे जाने-माने कवि थे। ऐसे ही कुछ और भी थे जिन्होंने हिन्दी के संवर्द्धन में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। स्पष्ट ही गुजरात का क्षेत्र भी हिन्दी अथवा ब्रजभाषा का एक विशद पालना था। गुजरात क्षेत्र के कच्छ में ही हमे राजा लखपत के द्वारा स्थापित ब्रजभाषा विद्यापीठ का पता चलता है जहाँ ब्रजभाषा का विशेष अध्ययन कराया जाता था, विशेषत: काव्य-रचना की शिक्षा के लिए ऐसे विद्यापीठ का पता हमे अन्यत्र कही नही लगता। यह कहा जाता है कि इस विद्यापीठ मे शिक्षा ग्रहण करने के लिए दूर-दूर के लोग आते थे।

यहाँ इस बात की ओर ध्यान जाता है कि आधुनिक युग मे गुजरात ने देश को महान नेता प्रदान किये हैं—स्वामी दयानन्द गुजरात के थे और महात्मा गांधी भी गुजरात के थे, दोनों ने ही हिन्दी को देश की भाषा का

गौरव प्रदान किया, दोनो ने ही हिन्दी को पुष्ट और समृद्ध करने के प्रयत्न किये। गुजराती भाषा का साहित्य आज किसी भी देश भाषा के साहित्य से कम नही माना जा सकता। देश का मस्तक जब स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गाधी के लिए झुकता है तो वह गुजरात के अभिनन्दन के लिए ही झुकता है क्योकि इस भूमि की दृष्टि वस्तुत. सत्य को ग्रहण करने वाली रही है। स्वामी दयानन्द का "सत्यार्थ प्रकाश" और महात्मा गाधी का सत्याग्रह—गुजरात के सत्यान्वेषी और सत्यारूढ़ स्वभाव के ही परिणाम हैं।

इस सत्य के प्रति आस्था के कारण ही इस भूमि से देश को एक सूत्र में बाधकर महान बनाने की ओर अग्रसर करने के सूत्रो का उद्‌भव हुआ। यह सत्य कल्याणकारी ही होता और वैष्णव भावना से ओत-प्रोत—

"वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे।"

इन गुणो से ही किसी जाति को महानता मिलती है। गुजरात में इन गुणो की व्यापकता सिद्ध है और वह गुजराती के (और हिन्दी के भी) आदि काल से ही इसमे पनपती रही है। यही गुण इसके साहित्य मे अवतरित हुए हैं। अत इस क्षेत्र के कवियो ने ब्रजभाषा अथवा हिन्दी मे भी लिखा तो कोई आश्चर्य नही और यह सब तब से आरम्भ हुआ जब से आधुनिक लोक भाषाएँ अपना स्वरूप ग्रहण कर रही थी।

उसी की एक व्यवस्थित झाकी हमारे डा० नटवरलाल अम्बालाल व्यास जी ने प्रस्तुत की है। मुझे पूरा भरोसा है कि इस ग्रन्थ का हार्दिक स्वागत किया जायगा।

डा० व्यास के इस प्रयत्न को महत्व केवल इस दृष्टि से ही नही है कि गुजराती कवियो के हिन्दी सजन से हम परिचित हो सकेंगे, इसलिए भी नही कि हमे यह विदित हो सकेगा कि हिन्दो तथा ब्रज क्षेत्र का गुजरात से भावनात्मक ऐक्य साहित्यिक भूमि पर दीर्घकाल से दृढ रहा है, इसलिए भी नही कि ऐसे अनुसधानो से नये कवियो और उनके कृतित्व के उद्घाटन से साहित्य के इतिहास की खोयी कड़ियाँ मिलती हैं, और यह स्वयमेव एक महत्वपूर्ण कार्य है, वरन् इस प्रयत्न की ऐतिहासिक महत्ता इसलिए भी है कि निष्पक्ष अनु-सधान का यह ग्रन्थ एक आदर्श है। साथ ही इससे हमे हिन्दी तथा ब्रज से इतर क्षेत्र मे स्वीकृत हिन्दी तथा ब्रज की भाषा के स्वरूप का भी पता चलता है, साहित्यिक चिन्तन के देशव्यापी स्तर की कल्पना भी इसके द्वारा हो सकती है। यह ग्रन्थ ऐसे ही अन्य प्रयत्नो को प्रेरणा देगा, ऐसा मुझे भरोसा है, और

डा० व्यास जी भी अब अपने परिपक्व ज्ञान से और भी अधिक उज्ज्वल रत्न हिन्दी को भेंट कर सकेंगे।

हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर।
अक्षय तृतीया सं० २०२४

डा० सत्येन्द्र—
आचार्य एवं अध्यक्ष

दो शब्द

क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ मे प्राध्यापक पद पर नियुक्त होने के पश्चात् मैं अनुसन्धान के विषय की खोज मे रहा। पर्याप्त विचार के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि 'गुजरात के कवियो की हिन्दी काव्य साहित्य को देन' विषय पर अनुसधान किया जाय। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल एव आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय महामहिम श्री डा० के० एम० मु शी जी ने मेरे इस विषय की बहुत ही प्रशसा की। शीघ्र ही विद्यापीठ के प्रवाचक एव कार्यवाहक सचालक डा० सत्येन्द्र जी के मार्गदर्शन मे अनुसन्धान का श्रीगणेश कर दिया।

अभी तक प्राय यही प्रवृत्ति रही है कि प्रत्येक भाषा भाषी अपनी ही भाषा के साहित्य का अनुसधान करता रहा है। गुजरात में कवियो की गुजराती रचनाओ का ही अध्ययन, अध्यापन एव अनुसन्धान होता रहा। इसी तरह हिन्दी भाषी प्रदेशो मे हिन्दी कवियो की रचनाओ का ही अध्ययन, अध्यापन एव अनुसन्धान होता रहा और यह स्वाभाविक ही था। यह प्रवृत्ति अनुसन्धान करने वालो मे थी। पर, कवियो की दृष्टि इतनी सकुचित नही थी। गुजराती भाषी प्रदेश के बहुत से कवि एव इनकी रचनाएँ बहुत ही समय तक हिन्दी भाषी लोगो से अदृष्ट ही रही। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी जी ने अपने स्वातन्त्र्य सग्राम के असहयोग आन्दोलन के साथ साथ ही राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रचार एव प्रसार को भी अपना जीवन ध्येय समझा। उनके आदेश से स्वर्गीय नारायण मोरेश्वर खरे ने आश्रम भजनावलि का सकलन किया जिसमे भारत की विभिन्न भाषाओ के भक्ति गीत सगृहीत थे। उसी सग्रह मे गुजराती कवियो के हिन्दी भक्तिगीत सर्वप्रथम प्रकाशित हुए और इस तरह गुजरात के कवियो की हिंदी रचनाएँ भी सभी के सामने प्रस्तुत की गई। तदनन्तर कई विद्वानो का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित हुआ। 'सरस्वती' मासिक मे ई० स० १९२० वर्ष में श्री भवानीशकर याज्ञिक ने 'गुजरात प्रान्त के हिन्दी कवि' शीर्षक लेख लिखा था। यह लेख अब सरस्वती हीरक जयती

विशेषांक (ई० स० १६००-१६५६) में भी ग्रन्यस्य किया गया है।[1] गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री जगजीवन क० मोदी ने 'गुजरात नुं हिन्दी साहित्य' विषय पर ई० स० १६२१ के अक्टूबर के गुजराती के अंक में एक लेख लिखा था। गुजराती के अन्य विद्वान श्री डाह्याभाई पी० देरासरी ने इसी विषय पर 'गुजराती ओए हिन्दी-साहित्यमां आपेलो फालो' नामक पुस्तिका लिखी थी। किन्तु इन तीनो के प्रयत्न प्रशंसापूर्ण होने पर भी संपूर्ण नहीं थे। श्री जनक दवे ने 'शिक्षण अने साहित्य' (मासिक) मे जुलाई १६५१ से जनवरी १६५२ तक के कई अंकों में 'सुरत अने हिन्दी' शीर्षक लेखमाला में इस विषय का पर्याप्त अध्ययन प्रस्तुत किया है। परन्तु उसमें विशदता एवं गहनता का अभाव है। श्री अंबाशंकर नागर ने 'प्रवीणसागर' लेख सम्मेलन पत्रिका संवत् २०१३, अंक २ मे और 'स्वामी ब्रह्मानन्द की हिन्दी कविता' लेख सन्त-वाणी (मासिक) वर्ष १, अंक ६ में लिखे हैं। इस विषय के सम्बन्ध मे उनके ई लेख निकलते रहे। 'ब्रजभारती' में श्री अगरचन्द नाहटा ने भी प्रवीण सागर और अन्य ऐसे ही विषयों पर मननीय लेख लिखे हैं। हिन्दी अनुशीलन १६५८ के वर्ष में श्री जयेन्द्र त्रिवेदी का 'गोविन्द गिल्लाभाई' पर लेख निकला है। इस प्रकार इस दिशा में कुछ प्रयत्न तो अवश्य हुए हैं। पर इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती रही कि गुजराती कवियों की यथासम्भव समस्त हिन्दी रचनाओं का समीचीन अध्ययन एवं सर्वेक्षण किया जाय। क० मुं० हिन्दी एवं भाषाविज्ञान विद्यापीठ ने आरम्भ से ही विविध भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की और विविध भारतीय भाषाओं की पारस्परिक तुलना का भी प्रवर्तन किया। इस दृष्टि ने मुझे और भी उत्साहित किया और मैं 'गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन' विषय पर अनुसंधान करने में प्रवृत्त हुआ।

उपर्युक्त आधारयुक्त सामग्री का उपयोग करते हुए मैंने इस विषय में पूर्णतः मौलिक अनुसंधान करने का नम्र प्रयास किया है। सभी प्राप्त रचनाओं का मैंने विधिवत अध्ययन किया है और उनका सर्वेक्षण एवं उनकी समालोचना निजी ढंग से ही की है। कई ऐसे कवि हैं जिनके विषय में सर्वप्रथम उल्लेख इसी प्रबन्ध मे किया गया है। उनका अध्ययन भी साथ साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रबन्ध के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र करने मे मुझे अनेक संस्थाओं से सहायता प्राप्त हुई है जिनमें अग्रलिखित मुख्य हैं :

---

[1] हीरक जयंती विशेषांक, पृ० ५८५-५६२।

१. गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद।
२. मा० जे० पुस्तकालय, अहमदाबाद।
३. गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद।
४. क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा
५. यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, आगरा।

अपने अनुसधान के सम्बन्ध मे निम्नलिखित विद्वानो से साक्षात्कार द्वारा या पत्र-व्यवहार करके मैंने सहायता प्राप्त की है। एतदर्थ उनका बहुत ही अनुगृहीत हूँ :

सर्वश्री कन्हैयालाल मुशी, कांतिलाल व० व्यास, डॉ० भोगीलाल ज० साडेसरा, के० का० शास्त्री, डॉ० हरि वल्लभ भायाणी, डॉ० मजुलाल मजमुदार, उमाशकर जोषी, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, विश्वनाथ म० भट्ट, अनन्तराय रावल, डॉ० अम्बाशंकर नागर, डॉ० ईश्वरलाल र० दवे, अगरचन्द नाहटा, त्रि०क० ठक्कर, रग अवधूत, महाराज, अमृतलाल मोदी, सुन्दरम, सौ० इन्दुमती ह० देसाई जी।

यह प्रबन्ध क० मुं० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक तथा कार्यकारी सचालक एव राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, डा० गौरीशकर 'सत्येन्द्र' जी के निर्देशन मे ई० स० १९६० मे प्रस्तुत किया गया था। अत. यह प्रबन्ध उनकी ही प्रेरणा, प्रोत्साहन एव मार्ग प्रदर्शन का परिणाम है। क० मु० हिन्दी एव भाषाविज्ञान विद्यापीठ के भूतपूर्व सचालक एव केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के निर्देशक आदरणीय डॉ० विश्वनाथ प्रसाद जी से मुझे समय समय पर अपूर्व सहायता एव मार्ग-दर्शन मिलता रहा है। अतः मैं उनका भी बहुत आभारी हूँ। मेरे मित्र श्री उदयशंकर शास्त्री जी भीसमय समय पर अपने सुझाव मुझे देते रहे है। उनके सुझावो से तथा उनके निजी सग्रहालय की पुस्तको के उपयोग की सुविधा रहने से मेरा दुष्कर कार्य भी सुकर हो गया। एतदर्थ मैं उदयशकर शास्त्री जी का बहुत ही अनुगृहीत हूँ। डॉ० अबाशकर नागर के कई लेखों की सहायता मैंने ली है। इसके लिए मैं इनका बहुत ऋणी हूँ।

परिशिष्ट मे गुजरात के कवियो की हिन्दी कविताओ का सकलन दिया गया है। जिन-जिन कवियो की कृतियों से उद्धरण लिये गये हैं उन सभी कवियों का एव इनकी कृतियो के प्रकाशको का मैं बहुत आभारी हूँ। विशेष रूप से मैं प० बहेचरदास दोशी, सस्तु साहित्यवर्धक कार्यालय, अहमदाबाद के व्यवस्था-

पक श्री त्रि० क० ठक्कर, श्री अमृतलाल मोदी एवं सौ० इन्दुमती हू० देसाई जी का विशेष ऋणी हूँ जिन्होंने अपने प्रकाशनों मे से या अपनी कृतियों में से संकलन करने की अनुमति प्रसन्नतापूर्वक दी है। आगरा विश्वविद्यालय ने इस प्रबन्ध के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता दी है। एतदर्थ मैं इनके संचालकों का आभारी हूँ।

क० मु० हिन्दी विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय आगरा
१२-५-६७

नटवरलाल अम्बालाल व्यास

विषय-सूची

प्रकरण—१

प्रकरण—२

प्रकरण—३

प्रकरण—४

प्रकरण १

गुजरात का सांस्कृतिक इतिहास एव गुजरात में हिन्दी की लोकप्रियता के कारण

गुजरात का इतिहास बहुत पुराना है। सिधु सस्कृति (३५००-२७५० ई० पू०) सिन्धु की घाटी तक ही सीमित नही थी। निश्चित साधनो से पता चलता है कि इस सस्कृति का विस्तार, सिन्ध, सौराष्ट्र एव नर्मदा तथा ताप्ती के समीपवर्ती भागो तक था।[1] भडोच एव स्तम्भ तीर्थ, आधुनिक खभात गुजरात के प्राचीन बन्दरगाह थे। आर्य भारत मे या गुजरात मे किस समय आये यह कहना दुष्कर है। प्रारम्भ मे नाग जाति के लोग गुजरात मे रहते थे।[2] अशोक के युग मे रट्ठीक जाति ने सौराष्ट्र में रहने का प्रारम्भ किया और उसके नाम पर स ही प्रदेश का नाम सु रठ (सौराष्ट्र) पडा होगा।[3]

ईसा मसीह के सातवी शताब्दी पूर्व गुजरात मे कई प्रमुख बन्दरगाह थे जिनमे भृगुकच्छ एव सुपरिक बहुत ही प्रसिद्ध थे। गुजरात मे सर्वप्रथम आनेवाली आर्य जाति शर्याति थी। तदनन्तर कई आर्य जातियों ने यहाँ पदार्पण किया।' हैग जाति के महान् विजेता सहस्रर्जुन कार्तवीर्य ने इस भूमि पर अपना ध्यान आकर्षित किया। कौरवो एव पाडवो के महाभारत् के युद्ध तक

---

1 Dikshit, *Prehistoric Civilization of the Indus Valley*, p 12.

2 K. M. Munshi, *Gujarat and Its Literature*, p. 8.

3 *Ibid.*

आनर्त या सौराष्ट्र में निश्चित सामग्री नहीं मिलती ।[1] महाभारत के युद्ध से पूर्व शूरसेन की यादवप्रजा अपने राजा कंस के विरुद्ध हो गई और कृष्ण ने कंस की हत्या की । तदनन्तर मगध के राजा एवं कंस के साले जरासंध के भय से अभिभूत होकर कृष्ण एवं बलदेव के नेतृत्व में यादवगण गुजरात में आकर आनर्त एवं सौराष्ट्र में बस गये । कृष्ण की सहायता से उग्रसेन द्वारिका के सारे राज्य का संचालन करता था । कृष्ण आर्य संस्कृति एवं सभ्यता के सर्वोत्तम प्रतिनिधि माने जाते थे ।[2]

महाभारत के वन पर्व में युधिष्ठिर की गुजरात यात्रा के विषय मे उल्लेख मिलता है । यहाँ आकर इन्होने देखा कि बम्बई से उत्तर के प्रदेश में— अपरान्त मे कई आर्य जाति रहती थी । मार्कंडेय ऋषि का आश्रम पयोष्णी (ताप्ती) नदी के किनारे पर था । नर्मदा नदी के तीर पर भृगुओं के आश्रम थे । महाभारत के युद्ध के समय कृष्ण ने पांडवों को विजेता बनाने मे बहुत योग दिया । यादवों ने बहुत ही वीरता के साथ महाभारत के युद्ध मे भाग लिया था पर अपने घर आकर इन्होंने अपने वैमनस्य एव वैर में अपना ही सर्वनाश कर दिया । सौराष्ट्र मे प्रभास से कई मील दूर श्रीकृष्ण ने देहोत्सर्ग किया था । इसके बाद मगध के मौर्य शासन तक कई शताब्दियों के बारे में हमे कुछ ज्ञान नहीं है । इस समय के दरम्यान अनार्य निषाद लोग गुजरात मे रहने लगे ।[3] गुजरात के भील जाति के लोग इनके ही वंशज हैं ।[3] बुद्ध एवं जैन धर्म का भी प्रभुत्व बढ़ रहा था । ग्रीक गवर्नर यायान थेरा की सहायता से अशोक (२७२-२३२ ई० पू०) सौराष्ट्र पर शासन कर रहा था । गिरिनार पर्वत पर चढ़ते हुए इनके शिलालेखों को हम आज भी देख सकते हैं ।

मौर्य शासन के अन्त के बाद (१८७ ई० पू०) एपोलोडोट्स एवं मिनान्दर ने इस प्रदेश का शासन किया । तदनन्तर ईसु की प्रथम शताब्दी मे सौराष्ट्र में क्षत्रियों के शासन का प्रारम्भ हुआ । रुद्रदामन[3] (ई० स० १४३-१५८) आनर्त, अनूप, कच्छ, सौराष्ट्र, अवन्ती, गुजरात इत्यादि प्रदेशों पर शासन करता था । क्षत्रियों के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) का शासन गुजरात पर रहा ।

---

1 K. M. Munshi, *Gujarat and Its Literature*, p. 5.
2 *Ibid.*, p. 6.
3 *Ibid*

इस समय के दरम्यान गुजरात एव उत्तर भारत में आर्य संस्कृति का प्रचार एव प्रसार हो रहा था। आश्रमो मे ऋषि रहते थे एवं विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। आश्रम व्यवस्था आर्य संस्कृति का विशिष्ट प्रदान है और सभी आश्रम अन्योन्य से सम्बन्धित होने के साथ-साथ ब्रह्मावर्त एवं नैमिषारण्य के विविधधामो से सम्बन्धित थे। वैदिक एव उत्तर वैदिक काल मे 'धर्म' ही सर्वेसर्वा माना जाता था। सारे भारतवर्ष से ब्राह्मण गिरिनार, आनर्तपुर, प्रभास एव चन्द्रतीर्थ (चाणोद) की ओर आकर्षित हुए।[1] आबु के समीप वसिष्ठ के, सिद्धपुर के समीप कपिल के, नर्मदा के तीर पर भृगु के एव पयोष्णी के तीर पर मार्कंडेय ऋषि के आश्रम थे।[2] गुजरात मे आनेवाली जातियो मे आभीर उल्लेखनीय है। आभीरो की उपभाषा पर ही अपभ्रंश की रचना हुई है। आभीर लोग म्लेच्छ ही माने जाते थे। इन्होंने महाभारत के युद्ध में भाग लिया था तथा श्रीकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् यादवो को सौराष्ट्र मे से भगा दिया था। मनुस्मृति के आधार पर आभीर लोग ब्राह्मणो एव पतित स्त्रियो के सयोग से पैदा हुए थे। कुछ भी हो, ई० स० १ के पहले सामाजिक लघुता का अनुभव किये बिना ही आभीर लोग रहते थे।

सौ वर्ष तक गुजरात गुप्त साम्राज्य का भाग रहा।[3] गुप्त वंश के दरम्यान ही महाभारत इसके आधुनिक रूप मे दिखाई दिया। वायुपुराण, हरिवंश पुराण, मत्स्य पुराण, मार्कंडेय पुराण एवं अन्यान्य पुराणो की रचना भी इसी वंश मे हुई। विधि, विज्ञान, तत्त्वज्ञान, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र इत्यादि का विधिवत् अध्ययन होता रहा। इस तरह ज्ञान विज्ञान की प्रत्येक शाखा का विकास होता रहा। संस्कृत सारे भारत मे व्यवहार के लिए प्रयोग मे लाई जाती थी।[4] इस समय गुजरात मे भाषाओ का स्थान निम्न रूप से था :[5]

(क) ई० पू० द्वितीय शताब्दी एव तदनन्तर कई सतियो तक मिडल इण्डो-आर्यन भाषाओ का अस्तित्व था।

(ख) तदनन्तर संस्कृत साहित्यिक एव राजकीय भाषा बन गई। द० गुजरात के कई भागो में कन्नड भाषा का प्रयोग होता था।

(ग) ईसा की चतुर्थ एवं पंचम शताब्दियो में जैन साधुओ द्वारा जैन महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग होता था।

---

1 K. M Munshi, *Gujarta and Its Literature*, p 10
2 *Ibid*, p. 13.
3 *Ibid*. p. 13.
4 [illegible]

(घ) उसी समय सौराष्ट्र में शौरसेनी प्राकृत से निष्पन्न गुर्जर अपभ्रंश का प्रयोग होता था।

(ङ) उत्तर गुजरात या आनर्त की भाषा में भी संभवतः विशिष्ट प्रकार का साहित्य विद्यमान था।

पुराने समय से ही गुजरात में जैन साधुओं का सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व रहा है। गुप्तवंश की अवनति के समय उसी साम्राज्य के विद्रोही सेनापति भट्टारक ने स्वतन्त्रता की घोषणा की तथा सौराष्ट्र और आनर्त के कई प्रदेश का राजा बन बैठा। ईसा की ५५० शताब्दी के लगभग हरिचन्द्र नामक ब्राह्मण ने भिल्लमाल में (आबु के समीप आज के श्रीमाल मे) छोटे से राज्य की स्थापना की और वह आसपास के प्रदेशों पर राज्य करने लगा। उसके राज्य में मारवाड़ का भी थोड़ा भाग था जिसे उस समय 'गुर्जर' या 'गुर्जरदेश' कहते थे।[1] हरिचन्द्र एवं उनके उत्तराधिकारी शीघ्र ही बहुत बलवान हुए और सम्भवतः उनके चतुर्थ पुत्र ने लाट पर चढ़ाई की तथा भील ठाकोर को पराजित करके अपना राज्य नर्मदा की घाटी तक बढ़ाया। इस तरह श्रीमाल के गुर्जर राजाओं ने दक्षिण गुजरात को जीत लिया।

प्रसिद्ध चीनी यात्री हु-एन-चांग ने ६४१ ई० में गुजरात की यात्रा की थी। ये नासिक से भृगुकच्छ (दक्षिणी गुजरात) तक गये थे।[2] यहाँ ये गुजरात के अन्य भागों मे भी गये थे। इनके अनुसार उस समय वल्लभीपुर सत्ता, धन एवं संस्कृति का केन्द्र था।[3] पवित्र एवं धार्मिक ग्रन्थों का विशाल पुस्तकालय यहाँ था। स्थिरमति एवं गुणमति यहाँ के प्रसिद्ध एवं ज्ञानी भिक्षु आचार्य थे जिनका यश भारतवर्ष के बाहर भी था। लोग सुखी एवं सम्पन्न थे और व्यापार में बहुत ही निपुण थे। आनन्दपुर आनर्त की राजधानी थी।[4] यहाँ से चीनी यात्री गुजरात की राजधानी भिल्लमाल (या श्रीमाल) की ओर बढा। भिल्लमाल विद्या एवं संस्कृति का केन्द्र था। पौराणिक आधार पर कहा जा सकता है कि २० से २० मील तक इस नगर का विस्तार था। ११ हजार शिवलिंग एवं ४००० मठ थे जहाँ ज्ञान की सभी शाखाओं का अध्ययन-अध्यापन होता रहता था। स्वाभाविक रूप से ही ७वी शताब्दी में भिल्लमाल आर्य संस्कृति एवं विद्या का महान् केन्द्र था।

---

1 K. M. Munshi, *Gujarat and Its Literature*, p. 25.
2 *Ibid.*, p. 26.
3 *Ibid.*
4 *Ibid.* p. 17.

सारे गुजरात मे पर्याप्त जनसंख्या थी। भिल्लमाल, वेरावल, वलभी इत्यादि बडे-बडे नगर थे तो उज्जयिनी, भृगुकच्छ, आशापल्ली, खेटक, आनन्दपुर मालवा इत्यादि बडे नगरो की तुलना मे छोटे थे। ये सभी विद्या के केन्द्र थे। साबरमती की घाटी मे भी पर्याप्त जनसख्या थी। जम्बूसर, अक्रूरेश्वर (अकलेश्वर) श्रीभावन (सरभोण) एव नवसारिका (नवसारी) प्रमुख शहर थे।

जब गुर्जर राजाओ ने कान्यकुब्ज को जीत लिया तथा साम्राज्य की स्थापना की तब अरब यात्री इन्हे जुभ्रू या गुज्जर नाम से जानते थे।[1] इस साम्राज्य के विस्तार मे पजाब, राजस्थान एव मध्य प्रदेश तथा गुजरात के प्रदेश थे। आज के जोधपुर, जयपुर तथा आबु का कई भाग दशवी शताब्दी तक गुर्जरराष्ट्र या गुजरात नाम से सुशोभित था। इस प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे जाने वाले लोग भी गुर्जर कहलाते थे। ई० स० ६६० में इन गुर्जरो ने अलवर के थोडे से प्रदेश पर प्रभुत्व प्राप्त किया। काश्मीर एव हिन्दुकुश के 'गुर्जर' जाति के लोग मेवाती तथा मारवाड़ी के समान भाषा बोलते हैं।

कई विद्वानो के आधार पर गुर्जर विदेश से भारत मे चौथी तथा पाँचवी शती के दरम्यान आने वाली विदेशी जाति थी। बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक इन्होने भारतीय संस्कृति को अपनाया, गुर्जरराज के राज्य की स्थापना की, हिन्दू वर्ण व्यवस्था को स्वीकार किया, सातवी सदी मे आनर्त एव लाट को जीत लिया। ई० स० ७५० मे वलभी राजाओ को पराजित किया और ई० स० ६५३ मे भिल्लमाल को छोड़कर आनर्त मे बस गये तथा अपने सरदार मूलराज को अणहिलवाड पाट्टण का राजा बनाया।[2]

पाँचवी शती से पूर्व गुर्जर शब्द नहीं पाया जाता है। भाषा विषयक एव साहित्यिक मान्यताओ मे ई० स० ५५० से ई० स० ११६६ तक क्रमश. विकास होता गया। अलाउद्दीन खिलजी ने जब गुर्जरदेश के तृतीय साम्राज्य—चालुक्य राज्य—को पराजित किया तभी यह विकास रुका।[3]

कनौज की प्रेरणा से गुजरात मे गुर्जरो ने कला एव ज्ञान के उच्च सोपान सिद्ध किये। मोढेरा का सूर्य मन्दिर इसका दृष्टान्त है।

मालवा के राजा भोज के ई० स० १०५४ मे मृत्यु के पश्चात् इसके साम्राज्य के टुकडे हो गये। अणहिलवाड का राजा भीम चालुक्य स्वतन्त्र हो

---

1 Elliot and Daroso, *History of India as told by Its own Historians*, p 413.

2 K. M. Munshi. *Gujarat and Its Literature*, p. 28.

3 *Ibid*, p. 29.

गया और शीघ्र ही सौराष्ट्र, सारस्वत मण्डल, सत्यपुर मंडल, कच्छ, आनर्त, खेटक मंडल तथा मही घाटी का मालिक बन बैठा। इस तरह अणहिलवाड के काल में गुजरात के अलग राज्य की नींव डाली गई।[1]

भीम के पुत्र कर्ण (ई० स० १०६४–१०६४) ने कर्णवती (आज के अहमदाबाद) की स्थापना की। इस विषय में 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के लेखक मेरुतुङ्ग ने लिखा है—

"कर्ण सागरतडागालंकृतां कर्णावतीपुर निवेश्य स्वय तत्र राज्य चकार।"
—प्र० मू० ५५, प्रबन्ध चिन्तामणि

कर्ण के राज्यकाल में काश्मीरी पं० बिल्हण ने 'कर्णसुन्दरी' नामक सस्कृत भाषा में नाटक लिखा था। गुजरात में लिखा हुआ यह सर्वप्रथम नाटक है ऐसा प्रतीत होता है। कर्ण के पश्चात् उनका पुत्र जयसिह सिद्धराज (ई० स० १०७४ ११४३) राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ। जीवन के प्रारम्भ में कई विपत्तियों का सामना करने के बाद ई० स० १११४ मे इन्होने सौराष्ट्र को जीत लिया था। ई० स० ११२७ तक इन्होने राजस्थान एवं मालवा के कई प्रदेशो को जीत लिया था।

जयसिह सिद्धराज ने अणहिलवाड़ पाटण को अपने राज्य का केन्द्र बनाया। सिद्धराज ज्ञान एवं कला का भी महान् आश्रयदाता था। इन्होने सिद्धपुर के रुद्रमहालय का पुनरुद्धार कराया तथा पाटन में सहस्रलिंग सरोवर बनवाया। सारे राज्य में इन्होंने मन्दिर बनवाये, तालाब खुदवाये और उज्जयिनी एवं धारानगरी के धन, कला, एवं साहित्य को पाटन में लाने की भरसक कोशिश की।

पाटन एक महान् विश्वविद्यालय तथा सभी विद्या एवं कला के ग्रह के रूप में परिणत हो गया। सिद्धराज ने मालवा के परमार राजाओं के गुरु भाव बृहस्पति को गुजरात मे आकर रहने का निमन्त्रण दिया। ये भोज के पुस्तकालय को पाटण मे लाये एव हेमचन्द्राचार्य को व्याकरण लिखने की प्रेरणा दी। हेमचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध व्याकरण का प्रणयन किया तथा सिद्धराज और अपना नाम इस ग्रन्थ के साथ जोड़कर इसका 'सिद्ध हेमचन्द्र' नाम रखा। सिद्धराज ने इसकी कई प्रतियाँ बनवाकर सारे भारतवर्ष मे भेजी। इसकी २० प्रतियाँ काश्मीर भेजी गई थीं जो उस समय विद्या देवी सरस्वती का गृह माना जाता

---

[1] K. M. Munshi, *Gujarat and Its Literature*, p. 69.

था। इससे सारे भारतवर्ष मे इनकी कीर्ति फैली। सिद्धराज ने हेमचन्द्राचाय को राजकवि बनाया। हेमचन्द्र ने 'द्वयाश्रय' नामक महाकाव्य लिखा जिसके प्रत्येक श्लोक में सस्कृत व्याकरण के नियमो को समझाने के साथ-साथ ही सिद्धराज की यशोगाथा के गुणगानो का भी वर्णन है। इन दो ग्रन्थो के अतिरिक्त भी हेमचन्द्र ने विद्या के कई क्षेत्रो म सुन्दर ग्रन्थो का प्रणयन किया है जिसके फलस्वरूप वे 'कलिकाल सर्वज्ञ' के अभिधान से सुप्रसिद्ध हैं। इनके कई शिष्यो ने भी साहित्य एव सस्कृति को महत्त्वपूण ग्रन्थ प्रदान किय है। सिद्धराज, वीरधवल जैसे राजा तथा विमल, वस्तुपाल एव तेजपाल जैस मन्त्रियो के हाथो गुजरात के स्थापत्य और साहित्य को विकसित होने का पर्याप्त अवसर मिला था। देलवाडा, शत्रु जय और गिरनार के सुशोभनीय मन्दिर और हेमचन्द्राचाय के दोहे इस युग के ऐश्वर्य, गौरव और स्वदेशाभिमान के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

गुजरात का यह गौरव अधिक समय तक न रह सका। ई० सन् १२९७ में अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात के राजा करण वाघेला को हराकर पाटण हस्तगत कर लिया। लगभग सत्तर वर्ष तक गुजरात दिल्ली के खिलजी और तुगलक शासको के अधीन रहा। ईसा की १५ वी और १६ वी शताब्दी मे गुजरातियो को स्वधर्म की रक्षा के लिए अनेक कठिनाइयो एव अत्याचारो का सामना करना पडा। ई० स० १५७२ में मुगल सम्राट् अकबर ने पुन गुजरात मे शान्ति स्थापित कर दी। औरगजेब के राज्य काल तक गुजरात का यह शान्त वातावरण थोडा बहुत बना रहा। पूर्णत सानुकूल न होते हुए भी गुजराती भाषा और साहित्य को इन परिस्थितियो मे विकसित होने का अवसर मिला।

औरगजेब की मृत्यु के बाद सरदारो, सूबेदारो और मराठो की स्वेच्छाचारिता के कारण गुजरात का शान्त वातावरण फिर क्षुब्ध हो उठा। ई० सन् १७३२ मे बडौदा मे गायकवाड का राज्य स्थापित हुआ। पर औरगजेब स लेकर १९ वी शताब्दी के प्रथम चरण—अग्रेजो के शासनारूढ होने तक गुजरात मे अशान्ति का वातावरण बना रहा। अत इस काल का लोक जीवन और साहित्य कुण्ठित सा प्रतीत होता है। अग्रेजो के आगमन के बाद गुजरात म पूर्णतया सुख शान्ति स्थापित हुई। आज गुजराती भाषा बोलने वाले गुजरातियो का भारतवर्ष के अन्तर्गत अलग राज्य है और उसका सर्वाङ्गीण विकास तीव्रगति से हो रहा है।

गुजराती भाषा उत्पत्ति एव विकास

गुजराती भाषा का मूल सस्कृत भाषा है। मराठी, बगाली, हिन्दी एव

अन्य कई भारतीय भाषाओं की तरह गुजराती भी इण्डो-आर्यन भाषा है। संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति हुई और प्राकृत से गुर्जर अपभ्रंश की उत्पत्ति हुई[1]।
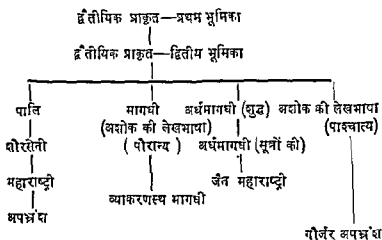
साहित्यिक महाराष्ट्री में से अपभ्रंश द्वारा गुजराती पैदा हुई है। इसका सीधा सम्बंध जैन महाराष्ट्री से है। भाषा के जिस स्वरूप को हम आज गुजराती कहते हैं, वह वास्तव में ५०० वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। इसीलिए सामान्यतः नरसिंह मेहता (जन्म १५०० ई०) गुजराती के आदि कवि माने जाते हैं। किन्तु जूनी गुजराती (प्राचीन गुजराती) और गुर्जर अपभ्रंश का समावेश गुजराती के अंतर्गत करने पर गुजराती के विकास का इतिहास पिछले ८०० वर्षों का इतिहास हो जाता है।

गुजराती भाषा की उत्पत्ति १२ वीं शती में हेमचन्द्र के समय से निर्विवाद मानी जा सकती है। हेमचन्द्र गुजराती भाषा के जन्मदाता हैं। व्याकरण की दृष्टि से वे गुजराती के पाणिनि और साहित्य की दृष्टि से वे गुजराती के वाल्मीकि हैं।[2]

हेमचन्द्र से नरसिंह मेहता (ई० १६ वीं शती) तक की भाषा को साधारणतया गुजराती कहा जा सकता है।

नरसिंह मेहता के समय तक गुजरात और राजस्थान के बहुत से भागों में एक सामान्य भाषा प्रचलित थी जिसे डॉ० टेसीटरी ने प्राचीन मारवाड़ी या

---

1 आपणा कविओ, खंड १, (प्रथम आवृत्ति)—के० का० शास्त्री, पृ० २८।
2 गुजराती भाषानी उत्क्रांति—पं० बेचरदास दोशी, पृ० २।

प्राचीन गुजराती नाम न देकर प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी नाम दिया है। डॉ० टेसीटरी ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि शौरसेनी अपभ्रंश से ई० १० वीं से १२ वीं शताब्दी में उत्पन्न इस सामान्य भाषा से ही आगे चलकर १६ वीं शती के बाद आधुनिक मारवाड़ी और गुजराती भाषाओं का विकास हुआ है।[1]

१६ वीं शती से पूर्व की गुजराती भाषा राजस्थानी और प्राचीन हिन्दी के कितनी निकट है और धीरे-धीरे इन भाषाओं से दूर हटती गई है यह बताने के लिए १२ वीं से १८ वीं शती तक की गुजराती भाषा के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :

ई० १२ वीं शती की गुजराती

जइ हिमगिरिहि चडेविणु निवडइ
अह पयाय-सरहि वि इक्कमणु।
निक्कइअवें विणु समयाचारेण
विणु मण-सुद्धिए लहइ न सिवु जणु॥
—हेम चन्द्राचार्य

ई० १३ वीं शती की गुजराती[2]

परमेसर तित्थेसरह पचपकय पणमेवि।
भणिसु रासु रेवंतगिरे अविकदेवि सुमरेवि॥१॥
गामा-गर-पुर वण-गहण-सारि-सरवरि सुपएसु।
देवभूमि दिसि पच्छिमह मणहरु सोरठ देसु॥२॥
—रेवंतगिरिरासु में विजयसेनसूरि

---

1 "In western India like Saurasena Apabhransha was succedeed by that form of language which I have chosen to call old Western Rajasthani and other old Gujarati. This was in use over like whole of Gujarat and Western Rajputana and flourished till about like end of 16th century A. D. when it finally developed into two distinct vernaculars, modern Gujarati and modern Marwari"—Dr. L. P. Tessitori's article on 'Old Gujarati and Old Western Rajasthani', *Report of the V Gujarati Sahitya Parishad.*

2 गुजराती भाषानो उत्क्रान्ति, बेचरदास—पृ० ४६६।

ई० १४ वीं शती की गुजराती[1]

अहे सोहग सुन्दुर रूपवंतु गुणमणि भंडारो।
कचण जिस झलकंतकंति संजम सिरिहारो।
थूलिभद्दमुणिराउ जाम महिचलि बोहंतउ।
नयरराय पाडलियमाहि पहुतउ विहरंतउ ॥२॥

ई० १५ वीं शती की गुजराती

भणता दोप दरिद्र तनि टलि भणि असाईत अफला फलि।
भणि भणावि नित गुणि नवनधि आवि अंगणि ॥१०॥
संवत १४ चऊ चंद्रमुनि शंप वछहंसवर चरित असंप।
बावन वीरकथा रस लीउ एह पवाडु सुसाईत कहिउ ॥१८॥

—असाईत कृत हंसाउली

ई० १६ वीं शती की गुजराती[2]

भारति भगवति मनि धरी गुरुपय नमीय पवित्र।
बोलिसु बुद्धह आगलउं बोहातणउं चरित्र ॥१॥
जस जसवाय अछइ घणउ जयु ति जसभद्र सूरि।
त्रीजउं कहीइ किन्ह रसि नांभइं दुरिया दूरि ॥

—लावण्यसमय कृत खिमऋषिरास

१७ वीं शती की गुजराती[3]

प्रभात काल हवो सहु चाल्या करवा माहा संग्राम।
दुर्योधन पांडव जीत्यानी करी हृदि धूं राम ॥७॥
त्यारि कर्ण किहि माहारी वीघानुं सकल कार्ण देपाडुं।
कि पांडव मुर्झनि मारि कि हु तेहनि नाश पमा डुं ॥८॥

—विष्णुदास कृत महाभारत

१८ वीं शती की गुजराती[4]

पास घणा वही चाल्या तोहे अर्जुन नाव्या गाम्य।
घोर रूप अपशुकन देखता घमारोय ते ठाम्य ॥५॥
कालतणी गति घोर निहाली अवला ऋतुना धर्म।
क्रोध लोभ अनृत आकुल नर करता पातक कर्म ॥

---

[1] गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति—बेचरदास दोशी, पृ० ५१८।
[2] वही, ५६३।
[3] वही, पृ० ५९२।
[4] वही, पृ० ६११।

इन उदाहरणो से हम जान सकते हैं कि हिन्दी एव गुजराती के विकास और स्वरूप मे कितना साम्य है।

हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी का विकास शौरसेनी के नागर अपभ्रंश से हुआ है।[1] १६वी शती तक इन तीनो भाषाओ मे साधारण से प्रादेशिक भेद को छोड़कर अधिक भेद दृष्टिगोचर नही होता। बाद मे राजनीतिक कारणों से गुजराती का हिन्दी तथा राजस्थानी से सम्बन्ध विच्छेद हो गया और स्वतन्त्र रूप से उसका विकास होता गया। गुजराती भाषा के विकास हो जाने पर भी गुजरात के कवि अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दी (अपभ्रंश, डिंगल, व्रज और खडीबोली) मे लिखते रहे।

गुजरात मे हिन्दी की लोकप्रियता

अन्य प्रदेशो की अपेक्षा गुजरात मे हिन्दी बहुत ही लोकप्रिय रही है क्योंकि गुजरात हिन्दी भाषी प्रदेशों से बहुत ही निकट है। सास्कृतिक दृष्टि से सारा भारतवर्ष एक है। भारतवर्ष के तीर्थों ने जाति, धर्म और प्रदेशो के लोगो को अन्योन्य के निकट लाने मे सबसे अधिक सहायता दी है। भारत के निवासी तीर्थयात्रा को अपने जीवन का आवश्यक दायित्व समझते हैं। इस तरह की तीर्थयात्राओ से भी हिन्दी सभी प्रदेशो मे और विशेषरूप से गुजरात मे अधिक लोकप्रिय रही।

धार्मिक कारणो से भी हिन्दी गुजरात मे अधिक लोकप्रिय रही। हिन्दी को निर्गुण सतमत और वैष्णव धर्म के आन्दोलन से अधिक बल मिला है। निर्गुण सन्तो ने जानबूझकर सस्कृत इत्यादि भाषाओ का त्याग किया था। इन सन्तो ने खडीबोली को अपना लिया और ये अपना उपदेश इसी भाषा में देते थे। प्रारम्भ मे ही खडी बोली बहुत ही व्यापक थी। इसीलिए अहिन्दी प्रदेशो मे घूमने वाले साधु भी इसी भाषा का प्रयोग करते थे और उनके सम्पर्क से अहिन्दी प्रदेशो मे भी हिन्दी बोली व समझी जाती थी। गुजरात, महाराष्ट्र एव अन्यान्य अहिन्दी प्रदेशों मे फकीरो तथा सतो के घूमने-फिरने

---

[1] इन (अपभ्रंशो) के नाम नागर, उपनागर और व्राचड थे। इनमे नागर अपभ्रंश मुख्य थी और यह उस भाग मे बोली जाती थी जहाँ आजकल नागर बसते हैं। नागर विद्यानुराग के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इन्हीं के नाम से कदाचित नागरी अक्षरों का नाम पडा। नागर अपभ्रंश के व्याकरण के लेखक हेमचन्द्र (१२ वीं शताब्दी) गुजराती ही थे।

—हिन्दी भाषा का इतिहास।

से और उपदेश देने से हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ती गई। निर्गुण सन्तों के अतिरिक्त वैष्णव धर्म के प्रचारको की वजह से हिन्दी अहिन्दी प्रदेशों में लोकप्रिय रही। हिन्दी को व्यापक बनाने में वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायियों का प्रमुख हाथ रहा है। वल्लभाचार्य जी और उनके अनुयायियों ने कृष्ण भक्ति और ब्रजभाषा के प्रचार मे अभूतपूर्व योग दिया है। 'रामचरितमानस' जैसे तुलसीदास भक्ति के उत्कृष्ट ग्रन्थों ने भी हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में अपना योगदान दिया है।

ई० सन् ११९१ में मुहम्मद गोरी ने पानीपत मे पृथ्वीराज को पराजित किया और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इसके एक साल बाद जयचद राठौर भी पराजित हुआ और इस तरह दूसरा हिन्दू राज्य कन्नौज भी तुर्कों के अधीन हो गया। जयचन्द की हार के पांच-सात साल बाद अन्तिम हिन्दू-राज्य महोबा भी हिन्दुओं के हाथ से जाता रहा। इन तीनों राज्यों ने हिन्दी को जन्म दिया था। पर विजेताओं की मातृभाषा तुर्की थी तथा दरबारो में फारसी का प्रभुत्व था। इस तरह हिन्दी को अपनी शैशवावस्था में बहुत ही कष्ट झेलने पड़े। तुर्कों के बाद आये हुए मुगल बादशाह तुर्कों की तुलना में अधिक उदार थे। मुगल बादशाह भारतवर्ष की संस्कृति, धर्म एवं भाषा का आदर करते थे। कई मुगल बादशाहों ने भी स्वयं हिन्दी मे रचनाएँ की हैं। बादशाहों के हिन्दी प्रेम को देखकर प्रजा ने भी हिन्दी भाषा को स्नेह से अपनाया। मुस्लिम बादशाहों को हिन्दी को अपनाते देखकर हिन्दू राजा भी अपने दरबारो मे हिन्दी के कवियों को अपनाने लगे। गुजरात, महाराष्ट्र एवं अन्यान्य अहिन्दी भाषी प्रदेशों के राजाओं ने भी हिन्दी को आश्रय दिया था। कच्छ (गुजरात) मे ब्रजभाषा की सुप्रसिद्ध पाठशाला थी और इसमें राजस्थान तथा अन्य हिन्दी बोलने वाले प्रदेशों से भी कवि यशःप्रार्थी ब्रजभाषा और पिंगल का अध्ययन करने के लिए आते थे। इस तरह हिन्दी काव्य साहित्य को गुजरात का अपूर्व योगदान प्राप्त हुआ है।

हिन्दी भी गुजराती, मराठी एवं भारत की अन्य भाषाओं की तरह संस्कृत से पुष्ट हुई है। अतः इन सभी भाषाओं में लिपि एवं शब्दकोष की दृष्टि से बहुत साम्य है। भारत की प्रायः सभी भाषाओं मे ७० प्रतिशत से भी अधिक शब्द संस्कृत भाषा के ही या संस्कृत से बने हुए तद्भव हैं। गुजराती एव हिन्दी में तो बहुत ही साम्य है। इस साम्य से प्रारम्भ से लेकर आज तक बहुत से कवि हिन्दी भाषा की ओर आकर्षित हुए तथा अपनी मातृभाषा गुजराती के अतिरिक्त खड़ीबोली, ब्रजभाषा या अवधी मे काव्य रचना करने लगे।

महाराजा सयाजी राव गायकवाड़, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, काका

कालेलकर एवं अन्यान्य महापुरुषों के प्रयास से गुजरात मे ही नही, अपितु सारे भारतवर्ष मे हिन्दी का प्रचार एव प्रसार बढा। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन एवं अन्यान्य हिन्दी प्रेमी राष्ट्र के उन्नायको के प्रयास से हिन्दी राष्ट्रभाषा के साथ-साथ राजभाषा भी हो गई है। अतः अन्तर्प्रान्तीय विनिमय के लिए भी इसी का प्रयोग होता है या होना चाहिए। इस तरह सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक, राष्ट्रीय एव अन्यान्य कारणो से हिन्दी गुजरात मे लोकप्रिय रही है और अब भी है।

प्रकरण २

गुजरात के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय और इनका साहित्य पर प्रभाव

गुजरात में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, पारसी, जैन इत्यादि सभी धर्म के लोग रहते हैं। मध्यकाल तक गुजरात में मुख्यतः हिन्दू, मुस्लिम एवं जैन धर्म का पालन करने वाले ही रहते थे। इन धर्मों एवं इनके सम्प्रदायों का भी गुजरात के साहित्य पर बहुत प्रभाव रहा। गुजरात में रहकर गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी भाषा मे भी साहित्य सर्जन करने वाले महानुभाव भी इनसे अछूते नही रह सके।

गुजरात में वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव बहुत ही है। प्राचीनकाल से ही भागवत गुजरात में बहुत लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध था। १४ वी शती तक प्रसिद्ध कवि जयदेव का गीत-गोविन्द भी गुजरात मे प्रचलित हो गया था।

गुजरात के कवियों ने भागवत, रामायण और महाभारत से प्रेरित होकर ग्रंथो का प्रणयन आध्यात्मिक दृष्टि से ही किया है। वैष्णव-सम्प्रदाय पर बहुत ही प्रकाशित सामग्री मिलती है और सारे भारतवर्ष में सामान्य लोग भी इससे परिचित हैं। अतः इस सम्प्रदाय पर अधिक पिष्टपेषण अनावश्यक है। उसी तरह निर्गुण भक्ति को लेकर भी कई कवियों ने उत्तम कविताओ का सर्जन किया है।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय

स्वामी नारायण सम्प्रदाय वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय है और इसके सस्थापक श्री स्वामी नारायण के नाम से अभिहित किये जाते हैं। श्री स्वामी नारायण— श्री सहजानन्द स्वामी (ई० स० १७८१-१८३०) उत्तर-प्रदेश के अयोध्या समीप छपैया गाँव मे ब्राह्मण के घर पैदा हुए थे। बाल्यावस्था मे इनका नाम घनश्याम था। बारह वर्ष की अवस्था मे घर छोडकर तपश्चर्या एव योग साधना करते-करते देश में नीलकठ ब्रह्मचारी के नाम से सात वर्ष तक परिभ्रमण करते हुए ई० स० १८०० मे सौराष्ट्र म आकर मागरोल के समीप भोज मे उद्धव का अवतार माने जाने वाले स्वामी रामानन्द से उद्धव सम्प्रदाय की दीक्षा लेकर स्वामी सहजानन्द बने। स्वामी रामानन्द ने उनकी योग्यता को देखते हुए अपनी मृत्यु से पहले ही उनको युवावस्था में ही आचार्यत्व प्रदान किया।[1]

श्री सहजानन्द स्वामी ने गुजरात एव सौराष्ट्र मे कई जगह मन्दिर बनवाये एव जगह-जगह पर घूमकर लोगो ज्ञान एव वैराग्य का उपदेश दिया। गुजरात मे वडताल, अहमदाबाद, गढ्डा एव मूली मे इनके प्रसिद्ध मन्दिर हैं। उन्होंने यज्ञ मे से हिंसा दूर की। चोरी एव डकैती करने वाली काठी एव कोली जाति को शात, प्रामाणिक एवं धर्मनिष्ठ बनाया। उन्होंने सामाजिक क्षेत्र मे कई सुधार किये।

देहातो मे एव निम्न वर्ण की श्रमजीवी जातियो में फैलकर गुजरात की सस्कार सेवा करने वाले इस स्वामी नारायण सम्प्रदाय ने गुजराती साहित्य के साथ-साथ ही हिन्दी साहित्य की भी अमर एव चिरजीवी सेवा की है। गोपालानन्द, नित्यानन्द, शुकानन्द, वासुदेवानन्द जैसे साधुओ ने एव दीनानाथ शास्त्री ने कई सस्कृत ग्रन्थ लिखकर इस सम्प्रदाय की सेवा की है। मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द, निष्कुलानन्द, प्रेमानन्द और देवानन्द ने गुजराती में सहस्रा पद लिखे हैं। गुजराती के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के बहुत से साधुओ ने हिन्दी मे भी काव्य सर्जन किया है। सयम एव वैराग्य पर जोर देने वाली इस वैष्णव भक्ति मार्गी सम्प्रदाय के स्तम्भो की कविता वैराग्य और भक्ति की ही कविता बने यह स्वाभाविक ही था। गुरु एव ईश्वर के अवतार माने जाने वाले सहजानन्द स्वामी पर भी सम्प्रदाय के साधु-कविओ ने कविता लिखी हैं।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय का उल्लेखनीय ग्रन्थ 'वचनामृत' है। इसमें श्री सहजानन्द स्वामी के उपदेशो का सग्रह है।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय के कवियों में से मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द, निष्कुलानन्द, मूलानन्द, देवानन्द, मंजुकेशानन्द एवं दयानन्द की हिन्दी रचनाएँ भी मिलती हैं।

प्रणामी पन्थ

इस पन्थ के अन्य नाम खीजड़ा या धामी पन्थ भी हैं। सौराष्ट्र एवं पन्ना में इसका बहुत ही प्रचार है। बहुत से विद्वान् ऐसे सगुण भक्ति की एक शाखा मानते हैं। पर ऐसा लगता है कि प्राणनाथ के गुरु स्वामी निजानन्द या देवचन्द प्रारम्भ में पुष्टिमार्गी थे पर आगे चलकर उनका झुकाव भी निर्गुण सन्तमत की ओर हो गया था।[1] निजानन्द स्वामी की मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य प्राणनाथ (ई० स० १६१८-१६७५) ने इस सम्प्रदाय को व्यवस्थित करके इसे प्रणामी पन्थ नाम दिया।

इस पन्थ की विशेषता यह है कि वह सर्व-धर्म में समन्वय मानता है। हिन्दू और मुस्लिम दोनों इस सम्प्रदाय के शिष्य हो सकते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी प्राणनाथ द्वारा रचित काज में शरीफ की भक्ति भाव से पूजा करते हैं। इस ग्रन्थ के कुल १४ भाग है जिनमे ४ गुजराती मे, १ सिंधी मे और ९ हिन्दी में हैं। प्राणनाथ का जन्मस्थान जामनगर इस सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र है जहाँ इस पन्थ का एक मन्दिर भी है। गुजरात मे सामान्यतः पाटीदार, कायस्थ, बनिया, राजपूत, बढ़ई, दरजी, कोली इत्यादि जातियो में इस सम्प्रदाय का अधिक प्रचार है।

रवि पन्थ

'रविराम' और रविदास शब्द से पदों मे अपना नामोल्लेख करने वाले रवि साहब (जन्म ई० १७५०) ने बड़ौदा मे इस पन्थ की स्थापना की थी। ये कबीरपन्थी सन्त थे। लोहाणा, बढ़ई, चारण इत्यादि जातियों में इस सम्प्रदाय का अधिक प्रचार है।

रामानन्दी पन्थ

सौराष्ट्र मे इस पन्थ का अधिक प्रचार है। सौराष्ट्र के प्रत्येक देहात में रामानन्दी मन्दिर सामान्यतः होता है। पाटीदार, लुहार, बढ़ई जैसी जातियों में इस सम्प्रदाय का अधिक प्रचार है। इन पन्थों के अलावा दादू, निरांत, राधास्वामी, रामसनेही और उदासी पन्थों का भी गुजरात में थोड़ा बहुत प्रचलन है।

---

[1] उत्तर भारत की सन्त परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ५३१।

निर्गुण सम्प्रदाय पर हिन्दी में बहुत लिखा गया है। विशेषतः डॉ० पीताम्बरदास बड़थ्वाल एवं श्री परशुराम चतुर्वेदी के ग्रन्थ बहुत ही माननीय हैं। कबीरदास गुजरात में भी आये थे और भृगुकच्छ के तट पर ठहरे थे।[१] ये गुजरात मे सम्वत् १५६४ (ई० स० १५०८) मे आये थे। इनका भी गुजरात के नरसिंह मेहता, अखो एवं अन्याय कवियों पर बहुत ही प्रभाव पड़ा है। गुजरात मे निर्गुण भक्ति के प्रचार मे कबीर का प्रमुख हाथ रहा। नरसिंह मेहता से लेकर रंग अवधूत महाराज तक की यह निर्गुण भक्ति की पुनीत जाह्नवी हमेशा के लिए वृद्धिगत होती आ रही है। गुजरात मे विशेष रूप से सगुण भक्ति पर कविता लिखने वालो का अधिक महत्त्व रहा। फिर भी निर्गुण भक्ति एव निर्गुण भक्ति की कविता लिखने वालों का काम भी अवश्य उल्लेखनीय एवं उच्च कोटि का है। इन सब सम्प्रदायों के अतिरिक्त जैन साधुओं एवं सूफी मत के फकीरों तथा कवियों ने उत्तम प्रकार के साहित्य की रचना की है।

जैन धर्म

जैन धर्म हिन्दू एवं बुद्ध धर्म की तरह भारतवर्ष का प्राचीन धर्म है। इस धर्म के २४ वें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी ईसा मसीह से पाँच शताब्दी पहले हुए थे। भगवान बुद्ध के समकालीन महावीर के समय में समाज की स्थिति बहुत दयनीय थी। यज्ञयोगादि मे हिंसा बहुत ही प्रचलित थी। कर्मकांडों में ब्राह्मणो का बहुत ही जोर था। इन सब को देखकर महावीर ने अहिंसा को मुख्य स्थान देकर सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य पर जोर दिया और जाति-पांति, यज्ञलोकाचार आदि की व्यर्थता सिद्ध की। जैन धर्म के मूल सिद्धान्त यही हैं।

प्राचीन काल से ही गुजरात में जैन धर्म का प्रचार एवं प्रसार रहा है। जैनो के २१ वें तीर्थंकर नेमिनाथ ने (कृष्ण के पैतृक भाई ने) गिरिनार पर समाधि लेने, ई० स० ५ वी शती में मुनि सुव्रत तीर्थंकर के शकुनि का विहार नामक आश्रम के भृगुकच्छ मे होने और ई० सन् ५ वी शताब्दी में वल्लभी के राजा शिलादित्य और वृद्धपुर (वड़नगर) के राजा ध्रुवसेन के जैन धर्मावलंबी होने का उल्लेख मिलता है।[२] तदनंतर १३ वी शती मे वनराज चावड़ा और शिलादित्य जैसे सोलंकी वंश के राजाओं तथा वस्तुपाल और तेजपाल जैसे महामन्त्रियों के हाथों गुजरात में जैन धर्म को बहुत ही प्रोत्साहन मिला।

---

१ कबीर सम्प्रदाय, पृ० १४१ और १५५।

२ मध्यकालीन गुजराती साहित्य—क० मा० मुंशी, पृ० ७२।

प्राचीन भाषा और साहित्य के ग्रन्थों की समुचित रक्षा कर जैन धर्मियों ने समाज एवं संस्कृति की अविस्मरणीय सेवा की है। भाषा के अतिरिक्त विषय की दृष्टि से भी गुजराती या जैन साहित्य महत्वपूर्ण है। श्वेताम्बर जैन कवियों में पौराणिक चरित्रों के अलावा राजाओं, गुरुओं और ऐतिहासिक व्यक्तियों के चरित्र देने की भी प्रथा रही है। भोज प्रबन्ध, कुमारपाल चरित्र, मूता नेणसीरोख्यान एवं अन्यान्य रचनाएँ ऐतिहासिक जैन-ग्रन्थों के उदाहरण हैं। जैन धर्मियों ने साहित्य के अतिरिक्त तत्त्वज्ञान, अध्यात्म ज्ञान, व्याकरण जैसे विषयों पर भी सुन्दर ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

सूफी मत

सूफी शब्द वस्तुतः अरबी 'सूफ' से बना है, जिसका अर्थ ऊन (परम, ऊँट की ऊन तथा बालों का कपड़ा) होता है।[1] इसलिए सूफी का अर्थ हुआ ऊनी अथवा बालों का कपड़ा धारण करने वाला। कई विद्वानों के अभिमत से यह शब्द यूनानी शब्द 'सोफस' (साधु) से सम्बन्धित है।[2] अब इस शब्द का प्रयोग मुस्लिम साधु के लिए किया जाता है जिसका विमल हृदय संसार से विरक्त हो।[3] परन्तु शरीयत (इस्लामी विधि-निषेध) का पाबन्द हो।

सूफी के लिए 'सालिक' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। 'सालिक' का अर्थ है अध्यात्म-पथ की ओर अग्रसर होने वाला। जब सूफी ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त कर लेता है—मारिफत का अभ्यस्त हो जाता है, तब वह 'आरिफ' कहलाता है। विशेष पहुँचे हुए सूफी पीर को 'वली' (बहुवचन औलिया) कह कर सम्बोधित करते हैं। सभी साधुओं के लिए सामान्यतः 'फकीर' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

यों तो सूफी मत बहुत कुछ ईरान का ही प्रसाद है और वहीं के साहित्य से उसके अंग, प्रत्यंग पुष्ट हुए हैं। परन्तु अपने प्रकृत रूप में यह प्रेम-मार्ग है। जीव ईश्वर का ही अंश है। वह उस अनन्त से डरता नहीं है, सत्कार भी नहीं करता, पूजा भी नहीं करता, केवल प्रेम करता है और चाहता है उसका सामीप्य, सानिध्य, 'दीदार'। चाहें तो भारतीय दार्शनिक बोली में इस पद्धति को माधुर्य अथवा मादन भाव की भक्ति कह सकते हैं। सूफी बाह्याचार पसन्द नहीं करता। वह किसी धार्मिक ग्रन्थ अथवा रीति का भी कायल नहीं है, वह सबको एक दृष्टि से देखता है, सबसे सहानुभूति रखता है। अब्दुल हसन

---

१ नूरुल्लुगात (चतुर्थ भाग), पृ० ४६७।

२ इंगलिश एन्साइक्लोपीडिया में 'सूफी' पर लेख।

३ कश्फ-अल-महजूब, पृ० ३८।

मुहम्मदइन अहमद-अल फारसी के अनुसार सूफी के दस व्रत हैं—सम्बन्ध विच्छेद, श्रवण शक्ति की यथार्थता, मैत्री, पूर्व व्यवस्था की सुविधा, स्वेच्छा का परिहार, भावोन्माद की प्रचुरता, विचारो का रहस्योद्घाटन, पर्यटन प्रियता, भावावेश का प्रस्फुटन तथा परिग्रह वृत्ति[१] का निरोध, परन्तु वह स्वभावत धार्मिक प्रतिबन्धो का बागी होता है। कुछ विद्वानो का तो निष्कर्ष है कि 'सूफीमत इस्लामी विधानो' की प्रतिक्रिया का परिणाम है।[२] ईश्वर के वियोग मे वह दिन रात तडपता है, उसको प्रत्येक वस्तु उसी के वियोग मे जलती हुई दिखाई देती है। अतएव वह उस समय की बडी लालसा स प्रतीक्षा करता है जब 'प्रियतम' का दीदार नसीब होगा—वह मृत्यु के आलिंगन को सदैव उतावला रहता है।[३]

सूफी मत पर अधिक जानकारी के लिए 'उत्तर भारत की सन्त परम्परा' एव डा० जयदेव कृत 'सूफी महाकवि जायसी' विशेष रूप से देख सकते हैं।

मुस्लिम आक्रमको के साथ मुस्लिमो की भाषा—फारसी एव उर्दू—भी गुजरात मे आई। गुजरात मे मुस्लिमो के अतिरिक्त कई उच्च वर्ण के हिन्दू भी फारसी मे बहुत कुशलता प्राप्त करके शासन की व्यवस्था में योगदान देते थे। फारसी के साथ सूफी मत भी गुजरात मे आया और गुजरात के कई सूफी कवियो ने भी हिन्दी में पद रचना की। साहित्य की दृष्टि से इन कवियो का अधिक मूल्य न होने पर भी गुजरात के सूफी कवियो की कविता कम महत्त्व की नही है। उर्दू के विद्वानो ने गुजरात के इन सूफीमत के कवियो की भाषा को उर्दू का प्रारम्भिक रूप माना है। पर वस्तुत इन कवियो की भाषा खडी बोली (हिन्दी) की परम्परा की एक कडी है। शेख बहाउद्दीन बाजन, काजी महमूद दरियायी, शाह अलीजी नामधनी, हजरत मुहम्मद चिश्ती आदि गुजरात के प्रमुख कवि हैं जिन्होंने सूफी मत पर हिन्दी भाषा (खडी बोली) मे काव्यो का प्रणयन किया है।

इन सब सम्प्रदायो के कवियो के अतिरिक्त गुजरात के कई राजा-महाराजाओ ने स्वय हिन्दी मे कविता लिखकर या हिन्दी मे कविता लिखने वाले कवि, भाट एव चारणो को आश्रय देकर हिन्दी की महती सेवा की है। अब हम गुजरात के हिन्दी कवियो की कृतियो की विस्तृत समीक्षा बाद के प्रकरणो मे विस्तार से करेंगे।

---

१ *Doctrine of the Sufism*, p 78

२ ऐनसाइक्लोपीडिया ... ऐथरीमेन्स एन्साइक्लोपीडिया, भाग १२, पृ० ५४।

३ डा० जयदेव सूफी महाकवि जायसी, पृ० २६६।

प्रकरण ३

गुजरात के १५वीं शती के कवियों की हिंदी काव्य साहित्य को देन

१४ वी शती तक गुजरात, राजस्थान एव उत्तर प्रदेश की भाषा समान थी। १४ वीं शती से ही आधुनिक भारतीय भाषाओ का उदय माना जाता है। अतः इस शती से पूर्व हेमचन्द्राचार्य आदि अपभ्रंश के जो गुजराती कवि हुए हैं, इनके विषय मे इस प्रबन्ध में चर्चा नहीं की है। १४ वीं शती के पश्चात् ही हिन्दी एवं गुजराती मे अन्तर बढ़ता गया।

इस प्रकरण में नरसिंह मेहता, भालण, केशवदास, कृष्णदास शाह अली मुहम्मद आमधनी एवं काजी महमूद दरियायी के विषय में चर्चा की गई है। नरसिंह मेहता को तो गुजराती के आदि कवि का पद मिला हुआ ही है। पर कालान्तर से इनकी भाषा में बहुत ही परिवर्तन होते आये हैं। अतः इनकी भाषा आधुनिक भाषा जैसी ही प्रतीत होती है। यह नरसिंह मेहता की लोकप्रियता का प्रतीक है। भालण को नरसिंह जितनी प्रसिद्धि न मिलने के कारण से इनके ग्रन्थों की भाषा पहले के जैसी ही देख सकते हैं। भालण पर समकालीन व्रजभाषा के कवियों का प्रभाव था। केशवदास एवं कृष्णदास ने इसी शतक मे महत्वपूर्ण हिन्दी कविताएँ लिखी हैं जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है। शाह मुहम्मद आमधनी सूफीमत के प्रसिद्ध कवि हैं। वे सदैव अपनी भाषा को गुजरी कहते थे। अब इन सभी कवियो की विस्तृत समीक्षा करें।

नरसिंह मेहता (ई० स० १४१५–१४८१)[1]

नरसिह मेहता जूनागढ के नागर ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम कृष्णदास और माता का नाम दयाकोर था। भावनगर के समीप तलाजा मे उनका जन्म हुआ था और वहाँ से करीब बीस साल बाद वे जूनागढ गये थे। बाल्यावस्था मे माता-पिता की मृत्यु हो जाने से अपने चचेरे भाई एव भाभी के साथ रहते थे। जाति से शैव होने पर भी बाल्यकाल से ही वह कृष्ण भक्ति मे तन्मय हो रहा था।[2] नगर मे आये हुए साधुओ के समूह मे ही वह पाया जाता था और कभी-कभी व्रज की गोपी का वेश धारण करते हुए नाचता और गाता भी था। ऐसे कई कारणो से उसके भाई-भाभी एव उनके जातिजन उससे असन्तुष्ट रहते थे। भाभी के कठोर वचन सुनकर वह अपने भाई का घर छोडकर गोपनाथ महादेव मे चला गया और 'अपनी इच्छा पूर्ण नही करोगे तब तक मैं वापस घर जाने वाला नही हूँ' ऐसी प्रतिज्ञा करके शिवजी की पूजा करने लगा।[3] उनकी भक्ति एव तप से शिव प्रसन्न हो गये और उन्हे द्वारिका ले जाकर कृष्ण-राधा की रासलीला बताई। इससे श्री कृष्ण के विशिष्ट प्रसाद प्राप्त किए हुए भक्त के रूप मे उनके भविष्य का निर्माण हुआ। तदनन्तर वे घर आकर अपने भाई-भाभी से अलग वह रहने लगे। उनके पुत्र का नाम शामल एव पुत्री का नाम कुँवरबाई था। उनका समय भजन गाने एव नाचने मे ही व्यतीत होता था। उनकी पत्नी माणेकबाई उन्हें ताने सुनाती और कभी-कभी तो अपने मायके भी चली जाती पर इसका कोई प्रभाव नरसिंह मेहता पर नही पडा। बच्चे बडे होने पर भी इस निर्धन कृष्ण भक्त ने केवल कृष्ण को ही आधार माना और कहा जाता है कि कृष्ण परमात्मा ने ही उनके बच्चो की शादी के प्रसगो मे सहायता की।[4] तदनन्तर उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई और

---

[1] नरसिह मेहता के समय एव मृत्यु के वर्ष के विषय मे बहुत मतभेद है। स्व० अम्बालाल जानी, स्व० डा० आनन्द शंकर ध्रुव, श्री मुन्शी, श्री दुर्गाशङ्कर शास्त्री, श्री नटवरलाल देसाई इत्यादि विद्वानो के इस विषय में विभिन्न अभिमत हैं। बम्बई विश्वविद्यालय की ठक्कर व्याख्यानमाला (ई० स० १९३२) मे श्री नरसिह राव दीवेटी आने (पृ० ४२-४७) इन सबकी समालोचना की है। श्री दीवेटीआ डा० आनन्द शकर ध्रुव की तरह मानते हैं कि नरसिह मेहता का समय ई० स० १४८० के बाद का होना चाहिए। —हरिलीला षोडशकला उपोद्घात- पृ० ७८-८५।

[2] गु० सा० ना० मार्गसूचक स्तंभो (द्वितीय आवृत्ति)—कृ० मो० झवेरी, पृ० ३८।

[3] वही, पृ० ३९।

[4] वही, पृ० ४१।

शीघ्र ही उनके पुत्र की भी मृत्यु हो गई और पुत्री सुसराल चली गई। अतः एक तरह से तो उनके संसार की समाप्ति हो गई। प्रेमानन्द में उनके मुख से कहलाया हुआ वाक्य—

"भलुं थयुं भागी जंजाल,
सुखे भजीशुं श्रीगोपाल"

(अच्छा हुआ कि चिन्ता दूर हो गई, अब तो सुख से भगवान का भजन करेंगे) गुजराती भाषा में लोकोक्ति के रूप में रूढ़ हो गया है और संसार भार से मुक्त हुए मनुष्य की गोपाल को भजने की मनोवृति प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त होता है।[१] उनके जीवन मे कई चमत्कारिक घटनाएँ घटी थी। आज भी जूनागढ़ में मजेवड़ी दरवाजे 'नरसिंह महेतानो चोरो' विद्यमान है।[२] वहाँ उनके इष्टदेव की मूर्ति है और यह स्थान कवि का स्मारक माना जाता है।

ये ऊँच-नीच या ब्राह्मण हरिजन के भेद को नही मानते थे। उनके विचारों के कारण अपने जाति बन्धुओ से एव जूनागढ़ के तत्कालीन राजा रा मांडलिक से बहुत सहन करना पड़ा था। पर अन्त मे नागर लोगों ने एवं रा मांडलिक ने नरसिंह महेता के विचारों को स्वीकार किया ही था।

उन्होने निम्नलिखित ग्रन्थ गुजराती मे लिखे हैं—हारमाला, सुदामा चरित्र, चातुरी षोडशी, चातुरी छत्रीसी, सामलदास नो विवाह, दानलीला, गोविन्दगमन, भक्ति एवं शृङ्गार विषयक लगभग दो हजार पद तथा सुरत संग्राम।[3]

उनके ग्रन्थ सामान्यतः दो प्रकार के हैं—शृङ्गार के, एवं भक्ति के। उनका शृङ्गार अन्त में तो भक्ति मे ही बदल जाता है।[४] नरसिंह प्रेम लक्षणा भक्ति को मानते हैं।[५] प्रेम की प्रबलता एवं तन्मयता की बात ही बार-बार उनके पदो मे मिलती है। कनककुण्डल का उदाहरण देकर नरसिंह हमारे सामने अविकृत परिणामवाद की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।[६] उन्होंने राधाकृष्ण की शृङ्गारिक लीला तन्मयता से गाई है।

---

१ गु० सा० ना मार्गसूचक स्तम्भो (द्वितीय आवृत्ति)—कृ० मो० झवेरी, पृ० ४२।
२ वही, पृ० ४४।
३ वही, पृ० ४५।
४ वही, पृ० ४६।
५ के० का शास्त्री, कविचरित, भाग १-२, पृ० ५४।
६ वही, पृ० ५७।

कुंज समीपे ते आविया, कुंवरी ने तेडी कुमार,
एकान्त स्थाने रची शयया, गली करे रे विहार।
मूधरे ते भीडी हृदेशु चुंबन लीधु गाल,
रसीओ ते रस प्रीते पीए, कंदर्प रूप रसाल ॥

(राधा को लेकर कृष्ण कुंज के पास आ गये। एकान्त मे शय्या बनाकर वे विहार करते हैं। कृष्ण भगवान ने उसे आलिंगन दिया एवं गाल पर चुम्बन किया। कामदेव के समान कृष्ण आनन्द से रसपान कर रहे हैं)

नरसिंह मेहता के कुछ पद मारवाडी एवं ब्रज मे भी प्राप्त हैं।[1] उन्होंने ब्रजभाषा की लोक प्रचलित काव्य परम्परा में कई पद रचे हो ऐसा माना जा सकता है।

भालण

भालण एवं नरसिंह के समय से गुजरातियों द्वारा रचित ब्रजभाषा की कविता मिलती है पर अभी तक दोनो के जीवन काल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। कन्हैयालाल मुन्शी उसका समय १४२६ से १५०० तक मानते हैं।[2] पर रामलाल मोदी उसका समय ई० स० १४०५ से १४८९ तक मानते हैं।[3] अतः इन अभिमतो के अनुसार भालण को नरसिंह मेहता का समकालीन कह सकते हैं।[4] नरसिंह मेहता वृद्ध होंगे तब तक भालण युवावस्था में होगा ऐसा प्रथम मानने वाले श्री के० का० शास्त्री जो भालण के दशम स्कन्ध के ब्रज के पदो का कर्तृत्व उनका ही मानकर उन पर सूरदास के प्रभाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि भालण १६ वें शतक का कवि है। यदि इसको स्वीकार करें तो भालण को नरसिंह का समकालीन न मानकर अनुगामी मानना पडेगा।[5]

भालण पाटन (उ० गुजरात) का मोढ ब्राह्मण था। प्रारम्भ मे वह शाक्त था और उत्तरावस्था में वह रामभक्त हो गया था यह उनके कई काव्यों मे आनी पंक्ति 'भालण प्रभु रघुनाथ' से प्रतीत होता है।[6]

---

[1] 'नरसिंह महेतानां पदोनो मारवाडमां प्रचार—गु० सा० सम्मेलन १२वें अधिवेशन की रिपोर्ट—डा० मजुलाल मजमुदार।

[2] गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर, के० एम० मुंशी, पृ० १६८।

[3] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० १०२।

[4] वही, पृ० १०२।

[5] वही, पृ० १०२।

[6] वही पृ० १०३।

उसके विष्णुदास एवं उद्धव नामक दो पुत्र थे। इन पुत्रों ने भी अच्छे आख्यान लिखे हैं।

भालण की प्रसिद्ध कृति संस्कृत में लिखित बाणभट्ट की कादम्बरी का भाषान्तर है। इस गद्य-काव्य के भाषान्तर में हम उनकी कुशलता देख सकते हैं। कथा रचना मूल ग्रन्थ जैसी ही है और वर्णनों में भी अनुकरण करने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने दो नलाख्यान लिखे हैं एवं सप्तशती का भाषान्तर किया है। उन्होंने राम की बाल-लीला के पद भी लिखे हैं। श्रीराम की बाल क्रीड़ा, कौशल्या की चिन्ता इत्यादि के उत्कृष्ट वर्णन भालण ने दिए हैं। शिव-भीलड़ी सम्वाद, मृगी आख्यान, ध्रुवाख्यान, दुर्वासाख्यान के अतिरिक्त भालण ने दशमस्कन्ध भी लिखा है। दशमस्कन्ध में ही ब्रजभाषा में लिखे हुए पाँच पद पाये जाते हैं।[1] इस ग्रन्थ की सबसे प्राचीन प्रति सम्वत् १७५५ की है। इसमें कुल ४४१ पद हैं। ई० स० १५२६ तक वल्लभाचार्य गुजरात में चार बार आ गये थे और इस समय तक उनका शिष्यत्व ग्रहण करने वाले सूरदास के ब्रजभाषा के पदों से गुजरात परिचित हुआ होगा यह माना जाय तो ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि ब्रजभाषा के उस समकालीन वैष्णव सन्तकवि का थोड़ा प्रभाव भालण पर पड़ा होगा। श्री के० का० शास्त्री जी ने ऐसा अनुमान किया भी है।[2] भालण यदि सचमुच नरसिंह का समकालीन ठहरता है तो उसे ही 'ब्रजभाषा का आदि कवि' मानना पड़ेगा और भालण ने ही ये पद लिखे है ऐसा सिद्ध न होने पर उसे ब्रजभाषा का कवि कह ही नही कह सकते हैं। यह भी उतना ही सत्य है।[3] गुजराती साहित्य की रूपरेखा के विद्वान लेखक श्री विजयराय वैद्य उन्हे 'संस्कृत के व्युत्पन्न पंडित' कहकर उनके संस्कृत ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

दशमस्कन्ध की सम्वत् १७५५ की प्रति में निम्नलिखित पाँच पद ब्रजभाषा में हैं—

१. मैया मोरे भावे दधि भात ॥२१२॥
२. ब्रज को सुख समरत ही श्याम ॥२१४॥
३. कहो मैया कैसे सुख पाऊँ ॥२१५॥
४. अब पढवे को आयो दिन ॥२१६॥
५. सुत मैं सुनी लोक में बात ॥२१६॥

---

[1] गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—देरासरी।
[2] गुजराती साहित्यनुं रेखादर्शन, खण्ड १—के० का० शास्त्री, पृ० ८६, ६२।
[3] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० १०४।

इसके बाद की प्रतियों मे व्रजभाषा का एक पद और मिलता है—

६. कौन तप कीनोरी नन्द घुराणी ॥७२॥[1]

इन सभी पदों के अन्तिम चरण मे भालण का नाम आता है। अतः दृढता से यह कहा जा सकता है कि ये पद भालण के ही हैं।

केशवदास

केशवदास जाति के कायस्थ थे और प्रमाय पाटन मे रहते थे।[2] इनके पिता का नाम हृदयराम था। उन्होने भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर श्री कृष्ण लीला काव्य की गुजराती मे रचना की है। उसके १४ वें और १६वें सर्ग मे व्रजभाषा की फुटकर रचनाएँ मिलती हैं।

श्री के० का० शास्त्री जी इस ग्रन्थ का रचना काल सम्वत् १५६२ मानते हैं।[3]

कृष्णदास

कृष्णदास का जीवन वृतान्त मूल 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' स० ८१ मे और 'अष्टसखान की वार्ता' स० ४ में दिया हुआ है।[4] नाभाजी कृत 'भक्तमाल' मे कृष्णदास नाम के कई भक्तो का उल्लेख मिलता है, किन्तु इसके छप्पय सं० ८१ मे एक कृष्णदास का वृत्तान्त इस प्रकार दिया गया है[5] :

श्री वल्लभ गुरु दत्त, भजन-सागर गुन-आगर।
कवित नोख निरदोष, नाथ-सेवा में नागर॥
बानी वंदित विदुष, सुजस गोपाल अलंकृत।
व्रज-रज अति आराध्य, वहै धारी सर्वस चित॥
सांनिध्य सदा हरिदास वर्य, गौर-स्याम दृढ़ व्रत लियौ।
गिरिधरन रीझि कृष्नदास को, नाम मांझ साझौ कियौ॥

---

[1] दशमस्कन्ध की छपी हुई प्रति में इन पदों के नम्बर क्रमशः २५१, २५३, २५४, २५५ २६५ एवं ७८ हैं।

[2] गु० स० ना मार्गसूचक स्तम्भो (दूसरी आवृत्ति)—कृ० मो० झवेरी, पृ० ५८।

[3] गु० सा० नुं रेखादर्शन—के० का० शास्त्री, पृ० ८८।

[4] अष्टछाप परिचय (दूसरा संस्करण)—प्रभूदयाल मीतल, पृ० २०५। अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—दीनदयालु गुप्त, पृ० २४५। 'सो ये कृष्णदास गुजरात में एक चिलोतरा गाँव है तहाँ एक कुनबी के घर जन्मे (अष्टछाप, कांकरोली पृ० ११७ तथा लेखक के पास की हरिरायकृत भाव प्रकाश वाली ८४ वार्ता)।

[5] अष्टछाप-परिचय (द्वितीय संस्करण)—प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०५।

उपर्युक्त वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि यह अष्टछाप के कृष्णदास से सम्बन्धित है। इसमे उनकी भक्ति और काव्य रचना विषयक महत्त्व की चर्चा की गई है, किन्तु उनके भौतिक चरित्र पर कुछ भी प्रकाश नही डाला गया है। प्रियादास ने उक्त छप्पय की टीका मे उनके चरित्र की कतिपय बातों का भी उल्लेख किया है, किन्तु उन्होने उनके आरभिक जीवन-वृत्तान्त के विषय में कुछ भी नही बताया है। ध्रुवदास कृत 'भक्तनामावली' मे भी उनके भौतिक चरित्र के सम्बन्ध मे कुछ नहीं लिखा गया है। उसके एक छन्द मे कुंभनदास के साथ कृष्णदास के भक्ति भाव और उनके कीर्तन की प्रशंसा की गयी है। इस प्रकार पुष्टि सम्प्रदाय के वार्ता साहित्य के अतिरिक्त अन्य साधनों से कृष्णदास के भौतिक जीवन पर कुछ भी प्रकाश नही पडता है।[1]

'भाव प्रकाश' से ज्ञात होता है कि कृष्णदास का जन्म गुजरात में वर्तमान अहमदाबाद जिले के 'चिलोतरा' नामक ग्राम मे हुआ था। वे कुनबी पटेल थे, जिनकी वार्ता मे शूद्रवर्ण का लिखा गया है। कृष्णदास का पिता चिलोतरा ग्राम का मुखिया था।[2]

अपने पिता के साथ वैमनस्य होने से वे घर छोड़कर तीर्थयात्रा करते हुए ब्रज आ गये। 'बल्लभ-दिग्विजय' के अनुसार मथुरा के विश्रामघाट पर और हरिरायजी कृत 'भाव प्रकाश' के अनुसार गोवर्धन मे बल्लभाचार्य जी ने कृष्णदास को शरण मे ले लिया था।[3]

उनकी शिक्षा इनके बाल्यकाल मे चिलोतरा गाँव में ही हुई होगी और वह शिक्षा गुजराती भाषा के माध्यम से हुई होगी, क्योकि ये श्रीनाथजी के मन्दिर के अधिकारी होने के बाद वहाँ का हिसाब गुजराती भाषा मे ही करते थे।[4] साधु-संगति की ओर इनका विशेष ध्यान था। इसलिए लौकिक शिक्षा के अतिरिक्त उपदेशात्मक शिक्षा उन्हे बाल्यकाल से साधु महात्माओं के संग से ही मिली। वार्ता मे लिखा है कि जब ये पाँच वर्ष के थे तभी जहाँ कथा-वार्ता होती, वहाँ जाते थे, यद्यपि इनके माता-पिता इन्हे बहुत रोकते थे।[5] बल्लभ सम्प्रदाय मे आने के बाद तो इन्होंने बहुत योग्यता का प्राप्त कर ली

---

[1] अष्टछाप-परिचय (द्वितीय संस्करण)—प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०५।

[2] वही पृ० २०७।

[3] वही पृ० २१६।

[4] अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय—दीनदयालु गुप्त, पृ० २४६।

[5] अष्टछाप, कांकरोली, पृ० १७७।

था। ब्रजभाषा के ये इतने बड़े पंडित हो गये कि भक्त नाभादास ने इनकी ब्रजभाषा की कविता को निर्दोष और पंडितों द्वारा आदृत कहा है।[1] सं० १५५२ वि० के लगभग का समय कृष्णदास के जन्म का आता है।[2] कृष्णदास जी ने गुसाईं विट्ठलनाथ जी के सातों पुत्रों की बधाई मनाई है। इस हिसाब से उनका सम्वत १६३१ तक जीवित रहना सिद्ध होता है।[3]

कृष्णदास अधिकारी के नाम पर दी जाने वाली रचनाएँ निम्नलिखित विभागों में डा० दीनदयालु गुप्त के विचार से हैं[4] :

कवि की प्रामाणिक रचना—वल्लभ सम्प्रदाय केन्द्रों में हस्तलिखित तथा छपे कीर्तन रूप में पाये जाने वाले पद-संग्रह

सन्दिग्ध रचनाएँ—१. भ्रमर-गीत
२. प्रेम-सत्व-निरूप
३. वैष्णव-वन्दन

लम्बे पद अथवा पद-संग्रह के ही नामान्तर वाली रचना जो स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं कही जा सकतीं।
१. प्रेम रसराज
२. कृष्णदास की बानी

अप्रामाणिक रचनाएँ—१. जुगलमान चरित्र
२. भक्तमाल टीका
३. भागवत भाषानुवाद

कृष्णदास के जीवन एवं साहित्य के बारे में हिन्दी में बहुत लिखा गया है। विशेष सामग्री के लिए प्रभुदयाल मीतल का 'अष्टछाप-परिचय' तथा डा० दीनदयालु गुप्त का 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' एवं अन्यान्य ग्रन्थ देखे जा सकते हैं।

शाह अली मुहम्मद आमधनी

ये सैयद अहमद कबीर रिफाहकी के वंशज थे। इनका इन्तकाल १५१५ ई० में हुआ। इनका मजार अहमदाबाद में रायखड में है। इनका

---

[1] भक्तमाल, भक्तिसुधा-स्वाद—तिलक, छन्द नं० ८१, पृ० ५८१।

[2] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० २५४।

[3] वही, पृ० २५४।

[4] वही, पृ० ३२४।

दीवान जवाहिरे इसरारुल्लाह के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी कविता में सूफियों के प्रेम की पीर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने हमेशा अपने आपको प्रेमी (आशिक) मानकर परमात्मा को प्रेमिका (माशूक) के रूप में देखा है। आपकी वाणी प्रेम के रंग से घुली हुई है। इनका तर्जेकलाम हिन्दी दोरा का सा है।[१] उन्होने सदैव अपनी भाषा को गुजरी कहा है।

काजी महमूद दरियायी

ये बीरपुर (गुजरात) के रहनेवाले थे। इनकी मृत्यु सन् १५२१ में ६७ वर्ष की उम्र में हुई। इनके पिता काजी हमीद या शाह चलन्दाभी पहुँचे हुए फकीर थे। दरिया के मुसाफिरों के वली होने के कारण शाहचलन्दा दरियायी कहे जाते थे। आगे चलकर इनके पुत्र और मुरीद काजी महमूद भी दरियायी कहे जाने लगे। इन्होंने हिन्दी में कुछ उपदेश दिए। मौ० अब्दुलहक ने इस विषय में कहा है कि इनकी जबान हिन्दी है जिसमे कहीं-कहीं गुजराती और अरबी लफज भी आ जाते हैं। कलाम का तर्ज भी हिन्दी है।[२]

---

[१] उर्दू की इबतदाई नश्व व नुमा में सूफिया ए इकराम का काम, पृ० ५८।
[२] वही, पृ० ५६।

प्रकरण ४

गुजरात के १६वीं शती कें कवियों की हिन्दी काव्य-साहित्य को देन

१६वी शती के गुजरात के हिन्दी कवियो मे दादूदयाल, मीराबाई, साया झुला, ईसर बारोट, हजरत खूब मोहम्मद साहब चिश्ती एव सैयद शाह हाशिम मुख्य हैं। दादूदयाल एव मीराबाई से तो हिन्दी साहित्य के प्रेमी पूर्ण-रूपेण परिचित हैं ही। दादूदयाल गुजरात के होते हुए भी इनकी रचनाएँ गुजराती मे नही पाई जाती हैं जबकि मीराबाई जन्म से राजस्थानी होते हुए भी इनकी रचनाएँ गुजराती मे पाई जाती हैं क्योंकि गुजरात के विद्वानो के अभिमतानुसार मीराबाई जीवन के अतिम वर्षों मे द्वारिका (गुजरात) मे रहकर गोविन्द गोपाल की पूजा मे तन्मय रहती थी। आज भी सारे गुजरात मे नरसिंह मेहता के पदो की ही तरह मीराबाई के गुजराती पद भी बहुत ही लोकप्रिय हैं। मीराबाई के पदो को भाषा की दृष्टि से तीन विभागो में बाँट सकते हैं .

१. केवल राजस्थानी (हिन्दी) भाषा के पद

२. केवल गुजराती भाषा के पद

३. ऐसे पद जो दोनो (हिन्दी एव गुजराती) भाषाओ मे पाये जाते हैं। यहाँ मीराबाई के केवल हिन्दी पदो पर ही. विचार किया जाएगा। साया झुला एव ईसर बारोट हिन्दी साहित्य के मनीषियो के लिए नये एव महत्त्वपूर्ण कवि हैं। हजरत खूब मोहम्मद साहब चिश्ती एव सैयद शाह-हाशिम इस शती के सूफीमत के प्रसिद्ध कवियो मे से हैं। अब इन सभी कवियो की कृतियो की सम्यक् आलोचना करें।

दीवान जवाहिरे इसरारुल्लाह के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी कविता में सूफियों के प्रेम की पीर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने हमेशा अपने आपको प्रेमी (आशिक) मानकर परमात्मा को प्रेमिका (माशूक) के रूप में देखा है। आपकी वाणी प्रेम के रंग से धुली हुई है। इनका तर्जेकलाम हिन्दी शोरा का सा है।[१] उन्होंने सदैव अपनी भाषा को गुजरी कहा है।

काजी महमूद दरियायी

ये वीरपुर (गुजरात) के रहनेवाले थे। इनकी मृत्यु सन् १५२१ में ६७ वर्ष की उम्र में हुई। इनके पिता काजी हमीद या शाह चलन्दाभी पहुँचे हुए फकीर थे। दरिया के मुसाफिरों के वली होने के कारण शाहचलन्दा दरियायी कहे जाते थे। आगे चलकर इनके पुत्र और मुरीद काजी महमूद भी दरियायी कहे जाने लगे। इन्होंने हिन्दी मे कुछ उपदेश दिए। मौ० अब्दुलहक ने इस विषय में कहा है कि इनकी जवान हिन्दी है जिसमे कहीं-कहीं गुजराती और अरबी लफज भी आ जाते हैं। कलाम का तर्ज भी हिन्दी है।[२]

---

१ उर्दू की इबतदाई नश्व व नुमा में सूफिया ए इकराम का काम, पृ० ५८।
२ वही, पृ० ५६।

प्रकरण ४

गुजरात के १६वीं शती के कवियों की हिन्दी काव्य-साहित्य को देन

१६वी शती के गुजरात के हिन्दी कवियो मे दादूदयाल, मीराबाई, सांया झुला, ईसर बारोट, हजरत खूब मोहम्मद साहब चिश्ती एव सैयद शाह हाशिम मुख्य हैं। दादूदयाल एव मीराबाई से तो हिन्दी साहित्य के प्रेमी पूर्ण-रूपेण परिचित हैं ही। दादूदयाल गुजरात के होते हुए भी इनकी रचनाएँ गुजराती मे नही पाई जाती हैं जबकि मीराबाई जन्म से राजस्थानी होते हुए भी इनकी रचनाएं गुजराती मे पाई जाती हैं क्योकि गुजरात के विद्वानो के अभिमतानुसार मीराबाई जीवन के अंतिम वर्षों मे द्वारिका (गुजरात) मे रहकर गोविन्द गोपाल की पूजा मे तन्मय रहती थीं। आज भी सारे गुजरात मे नरसिंह मेहता के पदों की ही तरह मीराबाई के गुजराती पद भी बहुत ही लोकप्रिय हैं। मीराबाई के पदो को भाषा की दृष्टि से तीन विभागों में बाँट सकते हैं :

१. केवल राजस्थानी (हिन्दी) भाषा के पद

२. केवल गुजराती भाषा के पद

३. ऐसे पद जो दोनो (हिन्दी एवं गुजराती) भाषाओं मे पाये जाते हैं।

यहाँ मीराबाई के केवल हिन्दी पदों पर ही विचार किया जाएगा। सांया झुला एवं ईसर बारोट हिन्दी साहित्य के मनीषियो के लिए नये एवं महत्त्वपूर्ण कवि हैं। हजरत खूब मोहम्मद साहब चिश्ती एवं सैयद शाह-हाशिम इस शती के सूफीमत के प्रसिद्ध कवियो मे से हैं। अब इन सभी कवियो की कृतियो की सम्यक् आलोचना करें।

दादूदयाल

दादू पन्थी लोग इनका जन्म सम्वत् १६०१ में गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान में मानते है।[१] पर डा० रामकुमार वर्मा के अभिमतानुसार इनका जन्म सम्वत् १६५८ में हुआ था।[२] इनकी जाति के सम्बन्ध में भी मतभेद है। अहमदाबाद के लोदी राम नामक नागर ब्राह्मण को वाद्या नदी में एक बहते सन्दूक मे एक बालक मिला, जिसे इन्होंने पाला। यह बालक ११ वर्ष की अवस्था मे विरक्त होकर देशाटन को निकला पर मातापिता ने पुनः घर लाकर विवाह करा दिया। वे निर्वाह के लिए रुई धुनने का काम करने लगे। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थी।[३]

ये अकबर के समकालीन थे। दादू के शिष्य जनगोपाल ने लिखा है कि अकबर और दादू में धार्मिक वार्तालाप भी हुआ करता था। गार्साद तासी के अनुसार दादू रामानन्द की शिष्य परम्परा में छठे शिष्य थे। इनका जन्म तो अहमदाबाद मे हुआ था पर इन्होंने अपने जीवन का विशेष समय राजस्थान के नराना एवं भराना नामक स्थानों में व्यतीत किया। दादू इतने अधिक दयालु थे कि लोग इन्हें दादूदयाल के नाम से पुकारने लगे। इन्होंने एक अलग पन्थ का निर्माण किया जो दादूपन्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने कबीर की भाँति हिन्दू-मुसलमान का एक्य करना चाहा। कबीर के दृष्टिकोण के अनुसार ही इनकी रचना के अंग हैं। इनकी कविता बड़ी प्रभावोत्पादिनी है। वह सरलता से हृदयंगम हो जाती है और एक आध्यात्मिक वातावरण छोड़ जाती है।[४]

दादू ने लगभग ५००० पद्य लिखे हैं जिनमें बहुप् से ग्रन्थों में नहीं पाये जाते। वे केवल साधु-सन्तो की स्मृति में हैं। दादू ने धर्म के प्रायः सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। मूर्तिपूजा, जाति, आचार, तीर्थ व्रत, अवतार आदि पर दादू कबीर के पूर्णतः अनुयायी हैं। डा० ताराचन्द के अनुसार दादू ने सूफीमत की व्याख्या अधिक सफलता के साथ की है। उसका कारण यह है कि वे कमाल के शिष्य थे। दादू ने गुरु की महिमा की बहुत प्रशंसा की है। इनके अनुसार गुरु के बिना आत्मा वश में नही आती। इनके शिष्य जनगोपाल ने

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ८५।

२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—राम कुमार वर्मा, पृ० २६७।

३ खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास—(दूसरा संस्करण)
—ब्रजरत्नदास, पृ० ८३।

४ वही, पृ० २६६।

दादू की एक जीवनी 'जीवन परचा' के नाम से लिखी है।[1] जनगोपाल के अतिरिक्त दादू के अन्य शिष्य रज्जब ने इनके जीवन पर प्रकाश डाला है।[2]

इनके चलाये सम्प्रदाय में निरञ्जन निराकार ब्रह्म की सत्ता मानी जाती है और हिन्दू धर्म की बहुत सी बातों को ये आडम्बर या ढोंग समझकर नहीं मानते जैसे मूर्ति-पूजन, तिलक आदि। इनके यहाँ परोपकार, अहिंसा, दैन्य, वैराग्य, ज्ञान आदि में तल्लीनता ही का उपदेश है। साधु के लिए किसी प्रकार बाह्य आडम्बर रखना ये निस्सार समझते हैं। तप, योग तथा भक्ति में तत्पर रहना ही आवश्यक कर्म है। पर अब बहुत से साधु भगवा रङ्ग के वस्त्र पहनते हैं, जो विरक्त हैं। नागा साधु श्वेत वस्त्र पहनते हैं और कुछ टोपा-चादर भी धारण करते हैं। राजस्थान, पंजाब, एवं उत्तर प्रदेश में इस दादूपंथ के अनुयायी अधिक हैं।[3] हिन्दी में दादूदयाल पर बहुत ही सामग्री मिलती है। अतः यहाँ अधिक पिष्टपेषण अनावश्यक है।

मीराबाई (ई० स० १४९९-१५४७)

नरसिंह मेहता की तरह मीराबाई का नाम भी गुजरात के बाहर भी आदर के साथ लिया जाता है। जन्म से राजस्थानी मीरा जीवन के अंतिम वर्षों में गुजरात में द्वारिका में आई थी। इस प्रकार की मान्यता गुजराती साहित्य के इतिहासकार रखते हैं। उनके काव्य हिन्दी एवं गुजराती दोनों भाषाओं में पाये जाते हैं। उस समय तक गुजरात एवं राजस्थान की भाषा में बहुत ही साम्य था। सुप्रसिद्ध भाषाविद् डा० टेसिटोरी[4] ने उसी भाषा का नाम पुरानी पश्चिमी हिन्दी (Old Wesrern Rajasthani) रखा था। इसी को ही गुजरात के विद्वान् पुरानी गुजराती (Old Gujarati) कहते हैं।

उनके जीवन में भी कई चमत्कारिक घटनाएँ घटी थी ऐसा कहा जाता है। मीराबाई के सम्बन्ध में हिन्दी में भी विपुल साहित्य होने से अधिक पिष्ट-

---

[1] दादू—श्री क्षिति मोहन सेन, विश्व भारती, कलकत्ता, पृ० २३-२४।

[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—रामकुमार वर्मा, पृ० २७०।

[3] खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास (दूसरा संस्करण)—ब्रजरत्नदास, पृ० ८३।

[4] "In … was succeeded … osen to call O … s in use over the whole of Gujarat and Western Rajasthan and flourished till about the end of 16th century A. D, when it finally developed into two distinct vernaculars, modern Gu … and modern Malwari"—Dr. L. P. Tessitori's Report of the fifth Guj. S. Parishad.

पेषण करना उचित नहीं। गुजराती एवं हिन्दी दोनों भाषाओं की प्रतिभा-सम्पन्न कवयित्री बनने का परम सौभाग्य मीराबाई को मिला था।

उनका जन्म मेड़ता (राजस्थान) में हुआ था। पिता का परिवार वैष्णव भक्ति में बहुत ही श्रद्धा रखता था। मीराबाई की शादी चित्तौड़ के राणा कुंभाजी के पुत्र भोजराज से हुई थी। थोड़े समय में ही पति की मृत्यु होने से मीराबाई अपने पिता के घर गईं और वहां उनका जीवन अधिक भक्तिमय होता गया। मेड़ता का विनाश होने के बाद वे पुनः चित्तौड़ गईं वहां उनके भक्तिमय जीवन की अत्यन्त कटु आलोचना होती देखकर वे द्वारिका (गुजरात आईं और कृष्ण भगवान की भक्ति करते-करते ही इनकी मृत्यु ई० स० १५४७ के आस-पास ही हुई हो ऐसा माना जाता है।[१]

पहले माना जाता था कि मीराबाई का समय ई० स० १४०३ से लेकर ई० स० १४७० तक है और वह मेवाड के राणा कुंभाजी की पत्नी थीं। पर आधुनिक अनुसन्धानों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मीराबाई मेड़ता के विष्णुभक्त राठौर राव दुदाजी की पौत्री थी और ई० स० १४९९ में इनका जन्म हुआ था। वह मेड़ता के राणा संग्राम सिंह या सग के (शादी के बाद थोड़े ही समय के उपरान्त स्वर्गस्थ होने वाले) युवराज भोजराज की बाल-विधवा थीं।[२]

नरसिंह की तरह मीराबाई के भी कई पद आत्मचरित्रात्मक हैं। 'गोविन्दो प्राण हमारो रे', 'अब नहीं मानूं राणा थोंरी मैं वर पायो गिरधारी' और अन्यान्य पद मीरा के जीवन प्रसङ्गों को अभिव्यक्त करते हैं।[३] 'तेरा कोई नहिं रोकन हार मगन होई मीरा चली रे', 'मैं तो हरिगुण गावत नाचुंगी', 'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई', 'बाई मैंने गोविन्द लीनो मो' एवं अन्यान्य पदों मे उनकी भक्ति भावना के हमे दर्शन होते है।[४]

प्रभु मिलन के एव प्रभु विरह के भावो को अभिव्यक्त करने वाले उनके काव्य भी बहुत सुन्दर हैं। मीरा के विषय में हिन्दी साहित्य में बहुत कुछ लिखा हुआ है। अतः अधिक पिष्टपेषण समीचीन नही है।

सामां भुला

ये ईडर के निकटवर्ती गांव फुवावा के निवासी थे। उन्होने नागदमण नामक एक अत्यन्त सरस और सुन्दर ग्रन्थ की रचना की है। पालनपुर के श्री

१ गुजरात साहित्य (मध्यकालीन) अनन्तराय रावल—पृ० १११।
२ वही, पृ० १११
३ वही, पृ० ११३
४ गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अन्तराय रावल, पृ० ११३।

हमीरदान ने इस काव्य को प्रकाशित किया है। श्री हमीरदान के अभिमतानुसार इसका रचना काल सम्वत १६३२ (सन् १५७६) है।

'नागदमण' मे कवि ने शृङ्गार, करुण, वात्सल्य एवं भक्ति विषयक मनोहारी चित्र प्रस्तुत किये हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में कृष्ण के जीवन के विभिन्न प्रसगो पर भावोत्पादक शैली मे कविता की गई है। 'नागदमण' के अतिरिक्त उन्होंने रुक्मिणी हरण एवं अगदविष्टि भी लिखे हैं जो पर्याप्त महत्त्व के हैं।[1]

ईसर बारोट

ईसरदास या ईसर बारोट भद्रेस नामक गाँव (मारवाड़) मे ई० स० १५३६ मे पैदा हुए थे। बड़े होने पर ये सौराष्ट्र के राजाओ के आश्रय मे चले आये। इन्होने अपनी कवित्व शक्ति के बल पर नवानगर के रावल जाम के दरबार में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। राजस्थान से आकर गुजरात मे बसने वाले यह प्रथम चारण थे ऐसा कहा जाता है। उनके गुजरात मे आने के विषय मे एक कहानी प्रसिद्ध है :

ईसर मारवाड से नवानगर के रावल जाम की सभा मे आया। अपनी कवित्व शक्ति से उन्होने सभी को प्रभावित कर दिया। बहुत ही खुश होकर जाम साहब ने ईसर को सम्मानित करने के लिए राजपडित पीताम्बर की सम्मति माँगी पर प० पीताम्बर ने सम्मति नही दी। उसी रात ईसर ने पं० पीताम्बर से इसका बदला लेने का निश्चय किया और कटार लेकर राजपण्डित के घर पहुँच गये। पर वहाँ की बात सुनकर उनके हृदय का परिवर्तन हो गया। राजपण्डित अपनी पत्नी से कह रहे थे : "राजा ईसर का सम्मान करना चाहते थे पर मैंने सोचा शब्द ब्रह्म की ऐसी अप्रतिम शक्ति का साधक राजाश्रय प्राप्त करके प्राकृत जन का गुणगान करने लगेगा, अत: मैंने सम्मति नही दी।"

यह सुनते ही ईसर का सारा क्रोध जाता रहा और कटार फेंककर वे राजपण्डित के चरणो मे गिर पड़े। उसी प्रसग से प्रेरणा प्राप्त करके उन्होने 'हरिरस' काव्य लिखा ऐसा कहा जाता है।

उन्होने हरिरस, देवीयाण, छोटा हरिरस, बाल लीला एव अनेक स्फुट पदों की रचना की है।

हजरत खूब मोहम्मद साहब चिश्ती

आप अहमदाबाद के रहने वाले थे। आपका जन्म ई० सन् १५३६ मे

---

[1] बुद्धिप्रकाश, १८६६, पृ० १६८।

तथा देहान्त ई० सन् १६१४ में हुआ। आपने खूब तरंग नामक एक मसनवी लिखी है। इस मसनवी में आपने अपनी भाषा को अरबी-फारसी आमेज गुजराती कहा है पर यह मसनवी हिन्दी भाषा से ही अधिक समीप है।

सैयद शाह हाशिम

आप अहमदाबाद के सूफी संत थे। आपकी मृत्यु ई० सन् १६४६ में अहमदाबाद में हुई। आपकी वाणी हिन्दी में मिलती है।

प्रकरण ५

गुजरात के १७वां शती के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन

सत्रहवी शती के हिन्दी सेवी कवियो मे रामचन्द्र नागर, पुहकर, आनन्दघन, ज्ञानानन्द, यशोविजय, विनय विजय, प्राणनाथ, इन्द्रामती, भगवान, मुकुन्द, अखो, शामल भट्ट, शम्सवली उल्लाह, एव शुजाउद्दीन नूरी मुख्य हैं। इन सभी कवियो ने महत्त्वपूर्ण कृतियो की रचना करते हुए हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने मे अपना योग दिया है। रामचन्द्र नागर, पुहकर एव भगवान ने भक्तिरस प्रधान पदो की रचना की है। मुकुन्द, अखो एव शामल भट्ट ऐसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं जिनकी रचनाएँ गुजराती एव हिन्दी दोनो भाषाओ मे काफी प्रसिद्ध एव महत्त्वपूर्ण है। अखोजी एव कबीर में बहुत साम्य है। अखोजी ने भी कबीर की ही तरह समाज पर प्रहार किए हैं। सामान्य जनो के लिए इनकी भाषा कठिन है पर श्री नरसिंह राव दीवेटिआ ने इनके बारे में सर्वथा उचित ही कहा है कि "Where Akho is simple, he is sublime" मुकुन्द एव शामल भट्ट की भाषा मधुर एव सरल है। आनन्दघन, ज्ञानानन्द, यशोविजय जैन धर्मी कवि हैं, फिर भी इनकी कविता मे साम्प्रदायिकता नही है। शम्सवली उल्लाह एव शुजाउद्दीन नूरी सूफी मत के कवि है जिनके काव्यो का हिन्दी एव उर्दू साहित्य मे उच्च स्थान है। अब इन कवियो एव इनकी कृतियो की विस्तृत जानकारी प्राप्त करें।

रामचन्द्र नागर

रामचन्द्र नामक गुजराती नागर कवि ने सम्वत् १७०० के करीब 'गीत गोविन्दादर्श' एवं 'लीलावती' नामक दो ग्रन्थों की रचना की है।[१] इन ग्रन्थों की रचना कवि ने विभिन्न छन्दों में की है जिसे देखने से इनके पांडित्य का पता चलता है।[२] शिवसिंह सरोज एवं मिश्रबन्धु विनोद[३] में भी इनकी चर्चा है, पर कवि का नाम रामचन्द्र न लिखकर रायचन्द लिखा गया है। रचनाओं के समान नाम होने से स्पष्ट होता है कि ये एक ही व्यक्ति की रचनाएँ हैं।

पुहकर

पुहकर मोहनदास के पुत्र थे। जाति से ये कायस्थ थे। ये प्रतापपुर (मैनपुरी) के निवासी थे और जहाँगीर के समकालीन थे। इनका आविर्भाव-काल सम्वत् १६७५ माना गया है।[४] इनके पूर्वज श्रीनिवास जी सोमतीर्थ के पास प्रतापपुर में महाराज रुद्रप्रताप के यहाँ रहते थे, पर इनके प्रपितामह दुर्गादास जी अकबर के दरबार में चले आये थे।

मिश्रबन्धुओं[५] ने तथा डाह्याभाई देरासरी ने[६] भी पुहकर को भूमिगाँव सोमनाथ (गुजरात) का ही निवासी माना है और किसी कारण से आगरे में सम्वत् १६८१ में कैद हो जाने का उल्लेख किया है। कारागार में इन्होंने 'रसरतन' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ रचा। इस पर प्रसन्न होकर जहाँगीरशाह ने इन्हें कारागार से मुक्त कर दिया था ऐसा कहा जाता है।[७] खोज में यह ग्रन्थ सम्वत् १६७३ का होना पाया जाता है।

'रसरतन' ग्रन्थ में सूरसेन की बड़ी लम्बी कथा वर्णित है। इसमें स्थान-स्थान पर नीति, शृङ्गार और काव्य के अनेक अंगों का वर्णन है। इसमें

---

१ गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ११।

२ शिवसिंह सरोज—शिवसिंह, पृ० ४४२।

३ मिश्रबन्धु विनोदः द्वितीय भाग (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० ४२५।

४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—रामकुमार वर्मा, पृ० ३३१।

५ मिश्रबन्धु विनोदः द्वितीय भाग (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० ४०७।

६ गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ६।

७ मिश्रबन्धु विनोद : द्वितीय भाग (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० ४०७।

प्रेमाख्यानक शैली का सम्पूर्णत. अनुसरण किया गया है और प्रत्येक बात का वर्णन विस्तारपूर्वक है।[१] प्रेमाख्यानक कवियो एव ग्रन्थो मे पुहकर तथा 'रस-रतन' का स्थान मूर्धन्य एव महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ की रचना अवधी, ब्रज एव डिंगल मे की गई है। कही-कही प्राकृत मिश्रित भाषा का प्रयोग है। छद बहुत प्रकार के हैं, परन्तु दोहा एव चौपाइयो की प्रधानता है। कुल २७६६ छन्दो व ५५६ पृष्ठो मे ग्रन्थ समाप्त हुआ है। कविता अच्छी है। हम इनको छत्र की श्रेणी मे रखते हैं। खोज (१९०३) से इनके एक और ग्रन्थ 'नखशिख' का पता चलता है।[२]

उदाहरण :

चले मत्त मैमन्त झुमन्त मत्ता, मनो बद्दला स्याम माथै चलन्ता।
बनी वागरी रूप राजन्त दन्ता, मनो बग्ग आषाढ पाँतें उदन्ता।
लसैं पीत लालै सुढालै ढलक्कैं, मनौं चचला चौंधि छाया छलक्कैं।

कवित्त

चन्द की उजारी प्यारी नैन न निहारी परैं,
चन्द की कला मे दुति दूनी दरसाति है,
ललित लतानि मे लतासी गहि सुकुमारि,
मालती-सी फूलैं जब मृदु मुसकाति है।
पुहकर कहै जित देखिए बिराजैं तित,
परम विचित्र चारु चित्र मिलि जाति है,
आवैं मनमाहि तब रहै मन ही मैं गडि,
नैननि विलोकै बाल बैननि समाति है।[३]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अभिमतानुसार पुहकर की कविता सरस और भाषा प्रौढ है। इस कवि के और ग्रन्थ नही मिले हैं पर प्राप्त ग्रन्थ को देखने से ये एक अच्छे कवि जान पडते हैं।[४]

भगवान

मिश्रबन्धुओ ने[५] चतुर्थ भाग मे इनका उल्लेख किया है। ये सूरत

---

[१] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—रामकुमार वर्मा, पृ० ३३१।

[२] मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० ४०७।

[३] वही।

[४] हिन्दी साहित्य का इतिहास (ग्यारहवाँ सस्करण)—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २११।

[५] मिश्रबन्धु विनोद (चतुर्थ भाग)—मिश्रबन्धु, पृ० ६३।

शहर के निवासी थे। उनका जन्मकाल सं० १७७० है और शृंगारसिन्धु इनकी रचना है। उनका कविता काल १८०७ है। ये जाति के पाटीदार थे और कृष्णदास के वंशज थे। उनके काव्य के उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद देखिए—

चलि गयो चंद औ तरैयां रहीं भोर कीसी,
ससि को सरूप गयो छाले रहे आन जू।
मुकाहल गयो पार सीप को समूह फैल्यो,
माखन गयो है रह्यो मक्खन में पान जू॥
भरमि सुकवि सत्य सरदाक बानि कहे,
कृष्णदास जू के कुल अथै गयो भान जू।
दरन को कलस फूटो कवि को तिलक छूटो,
गुन को जहाज लूटो गयो 'भगवान' जू॥[1]

आनन्द घन

आनन्द घन का दूसरा नाम लाभानन्द भी है। ये १७वी शती के जैन कवि हैं। इनके सम्बन्ध मे कोई निश्चित जानकारी नही मिलती, केवल इतना सुना जाता है कि ये गुजरात मे पर्याप्त समय तक रहे और मेड़ता (राजस्थान) मे इन्होने समाधि ली। इनका पहला ग्रन्थ आनन्द घन चौबीसी गुजराती में है। अतः हम अनुमान कर सकते हैं कि आनन्द घन या तो गुजराती होंगे या गुजरात में पर्याप्त समय तक रहे होंगे। देश के विभिन्न प्रदेशों में भ्रमण करने से इन्होंने मारवाड़ी और ब्रज में भी पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर ली थी। आनन्द घन ने हिन्दी में अनेक मधुर, भाववाही तथा प्रासादिक पदों की रचना की है। बहुत से अन्य सन्त कवियों की तरह ये भी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति वाले आध्यात्मिक पुरुष थे। इन्होने जैन आगमों का ठोस अध्ययन किया था। जैन होने पर भी इन्होंने कविता में साम्प्रदायिक विचारों को प्रकट नही किया है। इनकी कृतियों मे से आनन्द घन चौबीसी और आनन्द घन बहोत्तरी विशेष प्रसिद्ध हैं। दूसरी रचना के बहुत से पद हिन्दी में हैं। इन मधुर एवं भाववाही पदों मे असाम्प्रदायिक भाव से इन्होंने ज्ञान और वैराग्य का उपदेश दिया है।

ज्ञानानन्द

इनके जन्म और निवासस्थान के सम्बन्ध में निश्चित इतिवृत्त नही मिलता। अनुमानतः ये सन् १७वी शती में वर्तमान थे। इनकी भाषा पर

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद (चतुर्थ भाग)—मिश्रबन्धु, पृ० ६३।

गुजराती का प्रभाव देखकर हम अनुमान कर सकते हैं कि ये या तो गुजराती होंगे या गुजरात मे कई वर्षों तक रहे होंगे। इनके नाम की छाप वाले बहुत से पद एव भजन मिलते हैं। इन्होंने निधि चरित नाम को आदर सहित पदो में बार-बार दोहराया है। अत अनुमान होता है कि निधि चरित इनके गुरु थे।

इनकी कविता बहुत ही मार्मिक एव हृदयस्पर्शी है। आनन्द घन की तरह ज्ञानानन्द ने भी जैन होते हुए भी असाम्प्रदायिक स्वतन्त्र और शाश्वत तथ्यो का ही वर्णन कविता मे किया है। इनकी वाणी मे हमे सन्त कवियो की परम्परा मिलती है। भाषा की सरलता एव सजीवता, गम्भीर विचारो एव शाश्वत सत्यो की अभिव्यक्ति, ऐक्य का समर्थन और ससार की असारता तथा अज्ञानता का परिचय कराने के लिए सत-साहित्य के बहुपरिचित शब्द और प्रतीक इनकी कविता मे भी प्रयुक्त हुए हैं। राम रहीम, अल्ला-जोगी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, महल, मन्दिर, दशद्वार, भस्म, विभूति, सुमन, पिया, प्यारी, अलख निरजन, ज्ञानी, गुरु, साधु, सतगुरु, अजर, अमर इत्यादि शब्द भारत-व्यापी सत-परम्परा के ही प्रतीक हैं। इनकी कविता को साम्प्रदायिकता ने स्पर्श तक नही किया है।

यशोविजय

इनका जन्म पाटण के समीप गाँव कानहेडु मे एक वैश्य परिवार मे हुआ था। ये आनन्द घन के समकालीन थे। इनके पिता का नाम नारायण व्यवहारी और माता का नाम सौभाग्यवती था। इनके गुरु का नाम नयविजय वाचक था।

यशोविजय सुप्रसिद्ध कवि होने के साथ साथ उच्च कोटि के विद्वान भी थे। इनकी शिक्षा दीक्षा आगरे तथा वाराणसी म हुई थी। इन्होने व्याकरण और अलकार शास्त्र का ठोस अभ्यास किया था। कहा जाता है कि काशी की विद्वत्सभा म विजेता होकर इन्होने न्याय विशारद की उपाधि प्राप्त की थी। वहाँ से अहमदाबाद पहुँचने पर गुजरात के तत्कालीन सुलतान महोबतखा ने इनका भव्य स्वागत किया। इनका स्वर्गवास बडोदा के समीप एक गाँव मे हुआ था। इस गाँव मे इनकी समाधि भी है।

इनकी विद्वत्ता, प्रतिभा और ठोस अध्ययन को देखते हुए कई लोग इन्हे जैन समाज का दूसरा हेमचन्द्राचार्य कहते हैं। इन्होने गूढ दार्शनिक विचारो को बहुत ही सरल वाणी मे व्यक्त किया है। इनके ३७ के लगभग हिन्दी एव गुजराती ग्रन्थ अब तक प्रकाश म आ चुके हैं। इन्होने प्रासादिक एव मधुर शैली मे सगीतात्मक पद, भजन एव रास भी लिखे हैं।

विनय विजय

गुजरात के निवासी जैन कवि विनय विजय ई० सन् १७ वीं शती में वर्तमान थे।[1] इनके पिता का नाम तेजपाल और माता का नाम राजश्री था। कीर्तिविजय उपाध्याय इनके गुरु थे। ये संस्कृत, हिन्दी एवं जैन आगमों के प्रकांड पंडित थे। भाषा (हिन्दी) में इन्होंने अनेक स्तुतियां बनाई हैं। जिस प्रकार जयदेव ने श्रृंगार रस के अद्भुत ग्रन्थ गीत-गोविन्द का प्रणयन किया है उसी प्रकार विनय विजय ने शांतरस के एक संस्कृत ग्रंथ शांत सुधारस का प्रणयन किया है।

प्रारम्भ में ये जैन मत की ओर प्रवृत्त हुए। पर धीरे-धीरे ये अन्य संत कवियों की तरह ही अंतर्मुखी हो गये थे और इनकी भाषा की कविता देखने से प्रतीत होता है कि इनका संकुचित दृष्टिकोण विस्तृत हो गया था और ये समदर्शी तथा सर्वधर्मसमन्वयी हो गये थे।

प्राणनाथ

प्रणामी सम्प्रदाय के द्वितीय प्रसिद्ध गुरु प्राणनाथ ने काठियावाड़ प्रदेश के जामनगर नामक स्थान के एक धनी क्षत्रिय परिवार मे ई० सन् १६१८ में जन्म लिया था[2] और इनकी मृत्यु सन् १६९५ में हुई। इनके पिता क्षेमजी जामनगर के जमीदार थे। बहुत छोटी उम्र में ही विरक्त होकर आप घर से निकल पड़े और देश-भ्रमण एवं सत्संग से जल्दी ही अरबी, फारसी, हिन्दी तथा संस्कृत मे बहुत ही निपुणता प्राप्त कर ली। सभी भाषाओं के धर्मज्ञान प्राप्त करके अपने ज्ञान का विकास किया।

सिंध, गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र एव मालवा में इन्होने बहुत भ्रमण किया। इनके गुरु के बारे मे निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इन्हें अमरकोट के देवचन्द नामक साधु से धर्म विषयक प्रेरणा मिली थी ऐसा कहा जाता है। प्राणनाथ अरब भी गये थे। तदनंतर वहां से वापस आकर वे थोड़े समय के लिए घिरोल (धौलपुर) के राजा के दिवान भी रहे थे। पर गुरु की आज्ञा से तुरन्त ही इस पद को छोड़ दिया था। अपने गुरु के निधन के पश्चात ये गद्दी के अधिकारी हुए। पोरबंदर, कच्छ, सिंध आदि प्रदेशों मे भ्रमण करते हुए अंत मे ये सूरत जाकर ठहरे। यहां आपने गुजराती में कलश नामक पुस्तक लिखी। यहां से चलकर इन्होंने अनेक राजा-महाराजाओं को अपना शिष्य बनाया। महाराज छत्रसाल इनके प्रधान शिष्य थे।

---

[1] भजनसंग्रह धर्मामृत—सं० पं० बेचरदास।

[2] महाराजा छत्रसाल बुन्देला—डा० भगवानदास गुप्त, पृ० १०४।

इनकी रचनाओ की संख्या लगभग १४ बताई जाती है।[1] सभी रचनाएँ पद्य में हैं। इनके ग्रन्थो मे 'कलज मे शरीफ' नामक ग्रन्थ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।[2] यह ग्रन्थ धामी पन्थ का प्रधान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की भाषा मे गुजराती, सिन्धी, उर्दू एवं हिन्दी का सम्मिश्रण है। अधिकाश रचनाएँ हिन्दी मे हैं। उनकी दृष्टि सर्वधर्मसमन्वय की ओर गई थी। ये बडे ही अच्छे साधु थे। इन्होंने बुन्देलखण्ड मे जातीयता जाग्रत की थी। इनकी स्फुट कविता बहुत सुन्दर जोरदार और भक्तिपूर्ण है।[3]

इन्द्रामती

प्राणनाथ की पत्नी इन्द्रामती ने भी कई रचनाएँ की हैं। पर दोनो की रचनाएँ संयुक्त हैं। अतः यह नही कहा जा सकता कि कौन किसकी रचना है।[4] ये रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से सामान्य कोटि की हैं। कविता में सिद्धान्तो की चर्चा ही विशेष रूप से है। अतः काव्य मे सरसता नही है। (३५४।१) द्वि० त्रै० रि० मे प्राणनाथ की पदावली प्राप्त हुई है जिसमे इनकी स्त्री इन्द्रामती बाई की भी कविता है। हिन्दी मे लिखने वाली यह दूसरी स्त्री कवि है।[5]

अखो

अखो अहमदाबाद के निकटवर्ती जेतलपुर गाँव का निवासी था। तदनन्तर वह अहमदाबाद आकर रहा था। वह परजिया सुनार जाति का था एवं अपने व्यवसाय मे बहुत ही प्रसिद्ध था। दक्ष एव विश्वास मनुष्य को ही सौंपा जा सके ऐसा टकसाल का कार्य उन्हें सौंपा गया था। प्रामाणिक होने पर भी उस पर कई आरोप लगाये गये। अतः ससार पर से उसकी प्रीति कम होती चली। अपनी एक धर्मभगिनी ने भी उसको एक गहना बनाने के लिए दिया था। अखो ने अपनी ओर से सोना जोडकर वह गहना बनाया। फिर भी उसकी धर्मभगिनी को उस पर अविश्वास ही हुआ। ससार के ऐसे कटु अनुभवों से वह विरक्त हो गया। इन दोनो प्रसगो का वर्णन श्री कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी ने 'माइल स्टोन्स इन गुजराती लिट्रेचर' मे एव श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने 'गुजरात एण्ड इट्स लिट्रेचर मे दिया है। पर 'गुजराती

---

[1] उत्तर भारत की सन्त परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ५२८।
[2] महाराजा छत्रसाल बुन्देला—डा० भगवानदास गुप्त, पृ० १०७।
[3] मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० १३६।
[4] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ—डा० सावित्री सिन्हा, पृ० ८३।
[5] मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० ४४०।

साहित्य जी रूपरेखा' के लेखक श्री विजयराय वैद्य एवं 'अखो : एक अध्ययन' के लेखक श्री उमाशंकर जोषी इन प्रसंगों को प्रमाणित नहीं मानते।

श्री उमाशंकर जोषी ठोस अध्ययन के आधार पर इसके काल को ई० स० १५९१-१६५६ तक मानते हैं एवं उसके काव्य रचना का समय स० १६४१ से स० १६४६ तक होगा ऐसे निष्कर्ष पर आते हैं।[1]

अखोजी ने गोकुल जाकर गोकुलनाथ को अपना गुरु बनाया। फिर भी उनके मन का समाधान नहीं हुआ। ऐसी लोककथा प्रचलित है कि सच्चे गुरु की खोज मे वे काशी गये थे और वहाँ ब्रह्मानन्द नामक साधु से ज्ञान प्राप्ति की। अखो की कविता मे कई वार 'ब्रह्मानन्द' शब्द आता है और कई विद्वानों के अभिमत से यह शब्द उनके गुरु के लिए ही प्रयुक्त किया गया है। पर वस्तुतः यह गलत है।[2]

अद्वैत तत्त्वज्ञान को अभिव्यक्ति करने वाले निम्नलिखित काव्य ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं—अखेगीता, चित्त विचार संवाद, पंची करण। ये ग्रन्थ गुजराती मे है।[3] कैवल्यगीता, 'कक्को, वार, महीने, कुंडलियाँ, छप्पय, साखो, दूहे एवं कृष्णउद्धव सम्वाद में उनकी प्रकीर्ण कविताओं का संग्रह है। ये रचनाएँ भी गुजराती मे ही हैं। इनके अतिरिक्त 'संतप्रिया' एवं 'ब्रह्मलीला' हिन्दी रचनाएँ हैं। उन्होंने कई साखी एवं पद भी हिन्दी मे लिखे हैं।[4]

इन सब रचनाओं का प्रधान रस एक ही है और वह है ब्रह्मरस। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः'। यह एक ही पंक्ति उनकी कवित्व-प्रवृत्ति का लक्ष्य हो और अखो के लिए कविता इसे व्यक्त करने का एक साधन ही हो ऐसा प्रतीत होता है।[5]

'अनुभव बिन्दु', 'अखेगीता', 'पद' एवं छप्पै साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्त्व के हैं। 'अनुभव बिन्दु' नाम से प्रतीत होता है कि अखो बिन्दु नाम से अभिहित उपनिषद एव 'सिद्धान्त बिन्दु' जैसे वेदान्तग्रन्थ से परिचित होगा। ४० छप्पे मे परब्रह्म के स्वरूप एवं विस्तार विलास, काल, माया एवं उसे दूर करने के उपाय, माया का प्राबल्य, कैवल्य ईश्वर एवं जीव का अन्तिम

---

[1] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० १२६।
[2] वही, पृ० १३०।
[3] गुजरात एण्ड इट्स लिट्रेचर—के० एम० मुंशी, पृ० २३१।
[4] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० १३०।
[5] वही, पृ० १३१।

अभेद, उस 'महापद' के 'अनुभव' के साधन इत्यादि का वर्णन साहित्यिक शैली में एवं समुचित अलकारो का प्रयोग करके किया गया है।

'अखेगीता' उनकी परिणत प्रज्ञा का फल है। अविद्यावश जीव की दुर्दशा, माया की लीला, भक्त जीवन मुक्त ज्ञान एवं विदेही के लक्षण, ब्रह्मवस्तु निरूपण, माया का स्वरूप एवं उससे ब्रह्मांड की उत्पत्ति, शून्यवाद एवं अन्य दर्शनो की न्यूनताएँ, सत्संग एवं सद्‌गुरु का माहात्म्य, परमतत्व का अद्वैत स्वरूप, ब्रह्मानुभूति का आनन्द—इस विषय सूची से ही प्रतीत होता है कि इस कृति में अपने पूरे तत्त्वज्ञान को भरने की अखो ने कोशिश की है। 'अखेगीता' मध्यकालीन गुजराती ज्ञानाश्रयी कविता का एक उच्च शिखर उल्लेखनीय सिद्धि है। 'अखेगीता' मे तत्वज्ञान स्वय काव्य अथवा काव्य स्वयं तत्त्वज्ञान हो गया है।[1]

अखोजी की कविता का सच्चा विलास उनके पदो मे देखा जा सकता है। इन पदो मे भावो की उत्कटता एवं भाषा का वैभव विशेष उल्लेखनीय है। 'आज आनन्द मारा अंगमा ऊपज्यो परिब्रह्मनी मुने भाल लागी,' 'शा शां रूप वखाणु संतो शा शां रूप वखाणु,' 'हरिकु हेरता रे सखि मे रे हेराणी,' 'आली सब सखियन मे कवन शाम,' 'आली सघन कुंज में खेलन जाहे,' 'लाजू लाज न रहीए' इत्यादि पदो से प्रतीत होता है कि उसके केवलाद्वैत ने उसके वैष्णवी संसार को नही मिटा दिया था।[2] गुजराती एवं हिन्दी मे लिखे गये बहुत से पद उत्तर हिन्द के कबीर आदि के भजन साहित्य के परिचय का एवं अखो के काशी निवास का फल होगा। अखो ने 'सतप्रिया', 'ब्रह्मलीला' तथा कुंडलिया एव भूलण हिन्दी मे ही लिखे हैं। भालण-मीरा के समय से दलपतराम तक गुजराती कवियो ने हिन्दी मे भी काव्य रचना की है। अतः अखो की हिन्दी रचनाओं से हमे आश्चर्य नही होना चाहिए।[3] अखो का उल्लेख मिश्रबन्धु विनोद (चतुर्थ भाग) मे भी मिलता है।[4] मिश्रबन्धुओं के अभिमत से इनकी कविता सात्विक हुआ करती थी।

सन्तप्रिया—सन्तप्रिया मे कवि अजन्मा ब्रह्म को अपने काव्य का विषय बनाकर कहते हैं:

---

[1] अखो : एक अध्ययन—उमाशंकर जोशी, पृ० २४१।

[2] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० १३३।

[3] वही, पृ० १३४।

[4] मिश्रबन्धु विनोद (चतुर्थ भाग)—मिश्रबन्धु, पृ० ३४।

आद्य निरंजन आप अज, त्यां किनो अध्यारोप।
अर्ध मात्रा अखो कहे, कीनो प्रगट गोप॥
ताही को विस्तार सच, भाषा कवित करके कहुँ।
हे चिद् अरणव अगाध, हुँ चीडी चंच भरी के कहुँ॥[1]

उसी काव्य मे गुरु की महिमा बताते हुए कवि कहते हैं :

गुरु गोविन्द गोविन्द सोही गुरु, गुरु गोविन्द गने नहि न्यारा॥[2]

सन्तप्रिया में धन, तन, स्त्री एवं माया में लुब्ध पुरुष का सुन्दर चित्र भी खिचा है :

घन-तन त्रियासु ऐसे जडयो मन, जैसे पडयो मीन के मन पानी।
घन, तन, त्रिया सों छांड़ जात है, मन की प्रीति न होय पुरानी॥
एही अविद्या घेर्यो दशोदश, ज्यु जल डूबत नाव भरानी।
अब कर करतार शब्द को सेवा, जो लों सोनारा भीने की भान न जानी॥[3]

उसी काव्य में तन, धन एवं जोबन की व्यर्थता बताते हुए कवि मन को उपदेश देते हैं :

रे मन ! राम रटे न पहेचान्यो, तु कवन निन्द सोयो रे गुमानी।
ओसको नीर यह तन धर जोबन, ज्यु धन में बिजली मुसकानी॥
ताही में मोती हुँ पोई ले प्यारे, सई से सद्गुरु सन्त ज्ञानी।
हन्सकला गुरु देवे सोनारा, न्यारा रहे दूध पानी का पानी॥[4]

सन्तप्रिया मे ही ब्रह्मज्ञान का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं :

ब्रह्म ज्ञान बिना सुख की सीहीर नपाये, ज्ञान बिना संसे नही छूटे।
ज्ञान बिना देह को अपराधी, ज्ञान विना नित्य ये सब लूटे॥
ज्ञान बिना श्वान शुकर जे सो, ज्ञान आयो भ्रम को भांड फूटे।
ज्ञान सो गोविन्द गोविन्द सो ही ज्ञान, ऐसे अखो कहे माया से टूटे।[5]

इस तरह दोहरे एवं कवित्तों का प्रयोग करके कवि ने अपनी विशिष्ट

---

[1] अखानी वाणी (चतुर्थ आवृत्ति), प्र० सस्तु० साहित्य, अहमदाबाद, पृ० २६६।

[2] वही, पृ० २६७।

[3] वही, पृ० २६६।

[4] अखानी वाणी (चतुर्थ आवृत्ति)—प्र० सस्तु० साहित्य, अहमदाबाद, पृ० २६६।

[5] वही, पृ० २७१।

शैली में तत्वज्ञान की विभिन्न उलझनो को सुलझाया है। उनकी भाषा एव शैली किसी भी हिन्दी कवि से टक्कर ले सकती है।

ब्रह्मलीला—ब्रह्मलीला काव्य मे चोखरा एव छन्द का प्रयोग किया गया है। इस काव्य में प्रारम्भ मे ब्रह्म को प्रणाम करते हुए वे कहते हैं :

ॐ नमो आदि निरन्जन राया, जहाँ नहि काल कर्म अरु माया।
जहाँ नहि शब्द उच्चार न जन्ता, आपे आप रहे उर तन्ता ॥[१]

इस छोटे काव्य में ब्रह्म, माया; अध्यास एव प्रकृति पुरुष के विविध विलासो का कवि ने वर्णन किया है :

ऐसो रमन चाल्यो नित्य रासा, प्रकृति पुरुष को विविध विलासा।
जैसें भांत रची चित्रशाला, नाना रूप लखे ज्यो विशाला ॥[२]

ब्रह्म लीला का गान करने वाला भाग्यवान है और अपने हृदय मे ही वह हरि को प्राप्त करेगा यह कहते हुए कवि ब्रह्मलीला की अन्तिम पक्तियो मे कहते हैं :

रज्जु लगी सो भुजग भ्रम हैं, बिन रज्जु केसो अहि।
प्रोछीवे को प्रताप बड है, जान ही बिरला जन ॥
आगें पाछै ओर नाही, आप बिलस्या आपना।
कहे अखा ए ब्रह्मलीला, बडभागी जन गाय गो।
हरि हीरा अपने हृदय में, अनायास सो धायगो ॥[३]

'ब्रह्मलीला' काव्य भी साहित्यिक दृष्टि से सर्वाङ्ग सुन्दर है। इन दो काव्यो के अतिरिक्त कई भजन भी उन्होने हिन्दी मे लिखे हैं जिनमें 'अक्ल कला खेलत नर ज्ञानी' बहुत ही प्रसिद्ध है और इस भजन ने 'आश्रम—भजनावलि स० नारायण मोरेश्वर, खरे) में भी स्थान प्राप्त कर लिया है।[४] उनके कई पदो एव भजनो की हस्तलिखित प्रतियाँ गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद मे मौजूद हैं।

अखो गुजराती का एक ही तत्वज्ञ कवि है। सारे भारत मे भी उसकी कक्षा का कवि, बारबार या जगह-जगह पर नही मिलता। हाँ एक कबीर की

---

१ अखानी वाणी (चतुर्थ आवृत्ति)—सस्तु० साहित्य, अहमदाबाद, पृ० २६२।

२ वही, पृ० २६४।

३ वही, पृ० २६७।

४ आश्रम-भजनावलि (आवृत्ति १६वीं), पृ० ११६।

बात अलग है। पर कबीर जैसे तो—हमारे देश में ही क्यों—सारी दुनिया में भी कितने हुए होंगे यह कह नहीं सकते।[1]

अखो तो सम्प्रदाय में नहीं मानता था।[2] फिर भी भड़ोच के जम्बुसर तहसील के कहानवा गाम में उनके नाम का सम्प्रदाय चल रहा है। श्री सागर जी ने इनकी कविता संशोधित की है और गुजरात विद्या सभा ने प्रकाशित की है। अखो समन्वयदर्शी कवि है। वैसे तो प्रत्येक संत कवि समन्वय के लिए ही कोशिश करता है। अखो एक ऐसा मध्यकालीन कवि है, जो गुजराती साहित्य में ही नहीं, पर सारे देश की साहित्य परम्परा मे महत्त्व के स्थान का अधिकारी है।[3]

शामल भट्ट

शामल भट्ट प्रेमानन्द के पुत्र वल्लभ का समकालीन एवं प्रतिस्पर्धी था। वह अहमदावाद के बेगणपुर (आज का गोमतीपुर) का श्रीगौड़ मालवी ब्राह्मण था। उसके पिता का नाम वीरेश्वर, माता का नाम आनन्दी बाई एवं गुरु का नाम नाना भट्ट था।[4] उस काल के शिक्षित वर्ग की तरह उसने संस्कृत एवं व्रजभाषा का अच्छा अभ्यास किया था। उस समय अहमदावाद मे मुगल बादशाहों का प्रभुत्व होने से दरबार की भाषा फारसी थी। अतः फारसी भाषा का अभ्यास भी उन्होंने किया था। कवि पद्मनाभ के बाद उनके ग्रन्थों मे ही फारसी भाषा के शब्द पाये जाते हैं।[5]

उनके नन्दबत्रीसी, पचदड, विद्याविलासिनी जैसी कथाओ से प्रतीत होता है कि उन्होने जैन कवि रचित कथाओं एवं प्रबन्धो का भी अच्छा अभ्यास किया होगा।

खेड़ा जिले के मातर तहसील के सुंज गाँव के निवासी रखीदास पटेल उनके आश्रयदाता थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होने लगभग २४ ग्रन्थ गुजराती भाषा में लिखे हैं :

---

1 अखानी वाणी (चतुर्थ आवृत्ति), 'गरवो ज्ञानंनो बडलो' में उमाशंकर जोषी, पृ० २२।

2 गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो (द्वितीय संस्करण)—कृष्णलाल झवेरी, पृ० ६७।

3 अखानी वाणी (चतुर्थ आवृत्ति), 'गरवो ज्ञानंनो बडलो' में उमाशंकर जोषी, पृ० ८।

4 गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० १७३।

5 गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तंभो (द्वितीय संस्करण)—कृष्णलाल झवेरी, पृ० ११३।

१. बत्रीस पूतलीनी वार्ता, २. सुडा बहोतेरी ३. शिवपुराण—प्रश्नोत्तर खण्ड ४. रेवाखण्ड ५ बोडाणाख्यान, ६ अंगदविष्टि, ७. पद्मावती, ८. नन्द बत्रीसी ९. रावण मन्दोदरी, १०. उद्यमकर्म सम्वाद, ११. शामल रत्नमाला, १२. बिनेचटनी वार्ता, १३. अभराम कुलीना शलोको या रुस्तम बहादुर नो पवाडो, १४. बरास कस्तुरी, १५. चन्द्र चन्द्रावती, १६. काली माहात्म्य, १७. शुकदेव आख्यान, १८. सुन्दर का मदार, १९. द्रोपदी वस्त्र हरण (कर्तृत्व शंकास्पद), २०. भोज कथा, २१. पद्‌मी विद्या, २२. रखीदास चरित्र, २३. विश्वेश्वराख्यान २४. मदनमोहना।[1] इनमे से प्रथम सात ग्रन्थ तो रखीदास के आश्रय मे लिखे थे।

उनके कई ग्रन्थ वर्णनात्मक एव कथात्मक हैं तो कई ग्रन्थ बोधात्मक[2]। 'अगदविष्ट' मे राम और अगद एव रावण और अगद के बीच के सम्वाद *उन्होंने हिन्दी के करवाये हैं। नरसिह मेहता, प्रेमानन्द, एव दयाराम की तरह* ही शामल भट्ट गुजराती साहित्य की परम प्राज्ज्वल प्रतिभा है।

विश्वनाथ जानी

विश्वनाथ जानी के चार काव्य 'मोसाला चरित्र', 'सगालशा चरित्र', 'प्रेमपचीसी' एव 'चातुरी चालीसी' मिलते हैं। 'सगालशा चरित्र के अन्त मे रचना का वर्ष सम्वत् १७०८ मिलता है, अत कवि सम्वत् १७०८ में विद्यमान था यह निश्चित होता है।[3] मोसाला चरित्र के—

'गोविन्द कृपाए ग्रन्थ बान्ध्यो प्रेम पाटण देश'

इस उल्लेख से वह पाटण का निवासी था ऐसा प्रतीत होता है। 'सगालशाचरित्र' एवं 'चातुरी चालीशी' की केवल एक-एक प्रतिलिपि पाटण मे से ही प्राप्त हुई है। इस पर से उसका निवासस्थान पाटण होने का मत दृढ़ होता है।[4] प्रेम पचीशी का १८ वा पद ब्रजभाषा मे है। 'प्रेम पचीशी' मे *भागवत के अभिमतानुसार कवि ने उद्धवसन्देश दिया है।*

मुकुन्द

मुकुन्द द्वारका का गुगली ब्राह्मण था। उसने 'भक्तमाल' नामक उत्तम

---

[1] गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तभो (दूसरा संस्करण)—कृष्णलाल मो० झवेरी, पृ० ११७।

[2] वही, पृ० ११७।

[3] सत्तरमा शतकनां प्राचीन गुर्जर काव्य—डा० भोगीलाल ज० साडेसरा, पृ० ३१।

[4] वही, पृ० ३१।

ग्रन्थ ई० स० १६६५ में लिखा था।[१] हिन्दू-मुसलमान दोनों के पूजनीय कबीर और गोरख के चरित्र उसने लिखे हैं। उनके जीवन के बारे में भी उसमें विशदता से चर्चा की गई है। 'कबीर चरित्र' एवं 'गोरखचरित्र' से उनके उच्च कोटि के ज्ञान से हम परिचित होते हैं। 'कबीर-चरित्र' में कबीर विषयक सभी लोककथाओं का प्रयोग करके काव्य को सरस बनाया है। गुजराती में से हिन्दी में और हिन्दी में से गुजराती में वह आसानी से चला जाता है। इससे इसके हिन्दी भाषा के प्रभुत्व से हम परिचित होते हैं। 'कबीर चरित्र' मे हिन्दी का अधिक उपयोग हुआ है। हिन्दी के व्यासंग से मुकुन्द ने शब्दालंकारों का ठीक ठीक प्रयोग किया है।[२]

शम्सवली उल्लाह (१६६८-१७४४ ई०)

आप उर्दू के आदि कवि माने जाते हैं। उनके वतन के सम्बन्ध मे उर्दू के इतिहासकारो मे काफी मतभेद है। कुछ लोग इन्हें औरंगाबाद का रहने वाला बताते हैं। परन्तु डार साहब के अभिमत से ये गुजराती थे :

बली ने अपनी उम्र का एक बड़ा हिस्सा सैजे सियाहत में गुजारा है और उसी सियाहत के दौरान मे वे बरसों औरंगाबाद में भी रहे हैं। इसी बिना पर उनके मुतल्लिक झगड़ा शुरू हो गया। दक्खनी कहते है कि बली दक्खनी हैं। इसके खिलाफ गुजरातियों का दावा है कि वे बहुत हद तक इस बात में कामयाब रहे हैं कि आप वली को शाह वजी उद्दीन के खानदान का एक फर्द साबित कर दिखायें। वली का इन्तकाल स० हि० १११८ मे अहमदाबाद मे हुआ और इन्ही के खानदानी कब्रस्तान में जो नीली गुम्बद के नाम से मशहूर है, दफन भी किये गये।[३]

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने भी वली की मृत्यु सन् १७४४ में अहमदाबाद में मानी है और लिखा है कि उन्हें गुजरात अधिक प्रिय था।[४]

---

[१] गु० साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो (दूसरा संस्करण)—कृष्णलाल मो० झवेरी, पृ १३२।

[२] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) (द्वितीय संस्करण)—अनन्तराय रावल, पृ० १४३।

[३] प्राणलाल किरपाराम देसाई सन्मान अंक में जनाब डार साहब का लेख, पृ० १४३।

[४] कविता कौमुदी, भाग ४ (चौथा संस्करण), पृ० १२६।

वली की कविता की भाषा में भी इधर-उधर गुजराती देशज शब्द मिल जाते हैं। इससे भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे गुजराती हो होंगे या गुजरात मे लम्बे अरसे के लिए रहे होंगे।

शुजाउद्दीन नूरी

शुजाउद्दीन नूरी गुजराती का पहिला कवि माना जाता है, जो फैजी का मित्र और अकबर का समकालीन था।[१] यह सुलतान अबुल हसन कुतुबशाह गोलकुण्डा वाले के वजीर के पुत्र का शिक्षक था। इसके कुछ शैर 'कायम' के तजकिरे मे मिलते हैं। अब यह विचारणीय है कि वास्तव मे नूरी प्रथम कवि हैं या नही। अबुलहसन कुतुबशाह सन् १६७२ ई० मे गद्दी पर बैठा। इसका प्रथम वजीर सैयद मुजफ्फर केवल एक वर्ष तक इस पद पर रहा। दूसरा वजीर मदन पडित था, जो इस पद पर बारह वर्ष तक रहा। इस वजीर के मारे जाने के एक वर्ष के भीतर ही गोलकुण्डा राज्य का अन्त हो गया। '' ' अब नूरी इन्ही वजीरो मे से किसी के पुत्र के शिक्षक माने जा सकते हैं। मुहम्मद कुली कुतुबशाह सन् १५८० ई० मे गद्दी पर बैठा तथा सन् १६११ ई० मे मरा था। इसने एक दीवान लिखा है। नूरी इसके पहिले के कवि माने जाते हैं।[२] यदि ये इनके समवयस्क भी रहे हो तो अबुलहसन के समय इनकी अवस्था लगभग एक सौ बीस वर्ष के होती है। ऐसा असम्भव न होते हुए भी एक कवि को, जिसके कुछ ही शैर प्राप्त हैं, पहिला स्थान देना और जिसका समग्र दीवान प्राप्त है तथा जिसकी मृत्यु के बाद भी पहिला भाग लगभग पचहत्तर वर्ष के जीवित रहा हो, उचित नही जान पडता। 'नूरी' कवि के जीवन की प्राप्त सामग्री बहुत ही कम तथा भ्रमोत्पादक है। फैजी की मृत्यु सन् १५९४ ई० में हुई थी, जिसके यह मित्र कहे जाते हैं और जिसकी मृत्यु के लगभग ९० वर्ष बाद तक जीवित बतलाए जाते हैं। इस विवेचना से यही स्पष्ट जान पडता है कि 'नूरी' के जीवन पर विशेष प्रकाश न पडने तक उसे प्रथम कवि मानना मुहम्मद कुली कुतुबशाह के साथ अन्याय करना मात्र है।[3]

---

१ उर्दू साहित्य का इतिहास (तृतीय संस्करण)—ब्रजरत्नदास, पृ० ३०।
२ वही, पृ० ३१।
3 वही, पृ० ३१।

प्रकरण ६

गुजरात के १८वीं शती के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन

इस शताब्दी के हिन्दी सेवी कवियों में महेरामणसिंह, राजा साहब अमरसिंहजी, महाराव लखपतिजी, दुर्गेश्वर, चांदण शासन, गोरीबाई, जसुराम, कवीश्वर, दलपतिराय और बन्सीधर, केवलराम, धीरो, प्रीतमदास, खुमान बाई, भोजा भगत, मुक्तानन्द, निष्कुलानन्द, सहजानन्द स्वामी, ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द स्वामी (प्रेम सखी), गंजन, दयाराम, गिरिधर, सच्चिदानन्द, किशनदास, हर्षदास या हरखजी मेहता मुख्य हैं। इनमें से महेरामणसिंह, जसुराम, दलपतिराय एवं बन्सीधर, दुर्गेश्वर, चांदण शासन, गंजन एवं दयाराम से हिन्दी के विद्वान् थोड़े-बहुत परिचित हैं ही। पर इस प्रबन्ध मे प्रथम बार ही इनकी कृतियों की सम्यक् एव विस्तृत आलोचना की गई है। इन कवियों के अतिरिक्त जिन कवियों की यहाँ समीक्षा की गई है, वे हिन्दी जगत के लिए बिल्कुल नये ही हैं, क्योंकि इनकी रचनाएँ हिन्दी भाषी प्रदेश से काफी दूर होने से तथा गुजराती लिपि मे छपी होने से हिन्दी के विद्वानों ने इनकी हमेशा के लिए उपेक्षा ही की। महात्मा गान्धी जी ने जब 'आश्रमभजनावलि' प्रकट कराई तब इसमे गुजरात के हिन्दी कवियों की काफी रचनाएँ थी। इस तरह प्रथम बार ही हिन्दी के विद्वानों को प्रतीत हुआ कि गुजरात के कई कवियो ने भी हिन्दी काव्य साहित्य को अपनी विशिष्ट देन दी है।

इन कवियो में से महेरामणसिंह, राजा साहब अमरसिंहजी, महाराव लखपतिजी, राजा ये जिन्होंने हिन्दी मे काव्य रचना करने के साथ-साथ ही अपने दरबार मे कई भाट एवं चारणो को आश्रय दिया था और ये भी डिंगल में तथा हिन्दी मे हास्य, रौद्र, करुण, शृङ्गार इत्यादि रसो से युक्त रचना करने में प्रवीण थे। चादण शासन राज्याश्रित कवि थे। धीरो, प्रीतमदास, खुमान-बाई, भोजाभगत सन्तमत के कवि हैं जिन्होने गुजराती भाषा के साथ-साथ ही हिन्दी काव्य साहित्य की भी भक्ति के उन्मेष मे महती सेवा की है। इन कवियो की भाषा मे कभी-कभी गुजराती भाषा एव गुजराती लोकोक्ति तथा मुहावरे का प्रयोग पाया जाता है, फिर भी इनकी कविता बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है क्योंकि इनकी कविता में हृदय के सर्वोच्च भावो के दर्शन होते हैं।

दयाराम तो गुजरात के हिन्दी कवियो मे अवश्यमेव मूर्धन्य हैं और हिन्दी के आलोचको एव इतिहासकारो ने उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की है। यही उनकी महत्ता का द्योतक है। अब इन सभी कवियो की कविता का विस्तृत समीक्षा द्रष्टव्य है।

महेरामण सिंह

राजकोट के जाडेजा राजकुमार महेरामण सिंह ने 'प्रवीण सागर' नामक एक वृहद् महाकाव्य की हिन्दी मे रचना की हैं। हिन्दी के बहुत से इतिहासकारो ने गोविन्द गिल्लाभाई की कृतियो मे प्रवीणसागर का नाम भी लिख दिया है[1] पर ये तो प्रवीण-सागर के सग्रहकर्त्ता, सम्पादक और टीकाकार ही हैं। इस ग्रन्थ का उल्लेख मिश्र बन्धुओ ने निम्न प्रकार से किया है :

नाम—(१०३३) महेवा प्रवीन या कला प्रवीन[1]
ग्रन्थ—प्रवीन सागर
कविता काल— १८३७
और
नाम—(२४१५/१)—महरामण जी[2]
ग्रन्थ—प्रवीण-सागर

विवरण—राजकोट निवासी। यह ग्रन्थ पूर्ण होने के पहले ही आपकी मृत्यु हो गई। अत सम्वत् १६४५ में गोविन्द गिल्लाभाई ने इसे पूर्ण किया।

इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के इतिहासो मे इस ग्रन्थ का उल्लेख नही मिलता। मिश्र बन्धुओ ने शायद इस ग्रन्थ को नही देखा होगा। सभवत.

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग (द्वितीय आवृत्ति)—मिश्रबन्धु, पृ० ८२०।

[2] मिश्रबन्धु विनोद, तृतीय भाग—मिश्रबन्धु, पृ० ५२५।

इसीलिए इन्होने एक ही ग्रन्थ का उल्लेख अलग-अलग कवियों के नाम से किया है।

महेरामण सिंह ने अपने छः मित्रों की सहायता से इस ग्रन्थ को रचा था। निम्नलिखित छन्द से इस बात की पुष्टि होती है—

मित्र सात मिल कें रच्यो, प्रवीन सागर ग्रंथ।
तिन में दरसायो भलो, प्रेम नेम को पंथ॥

—लहर ८४, छंद १४

इन सात में एक तो महेरामण सिंह स्वय थे। शेष छः मित्रों के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती है। जनश्रुति के आधार पर छः मित्रों की नामावलि ये है[1] :

१. देवीदान कवि—राजकोट के साधु और कवि
२. जो सो लांगा बदरो—राजकोट के दरबार का चारण
३. जीवन विजय पूज्य—कवि
४. पुरोहित अदागरजी—विनोदी
५. लालजी सुनार—उत्तर भारत के निवासी, संगीतज्ञ
६. शेख रहीम—सिंध निवासी घोड़ों का सौदागर, उर्दू फारसी का जानकार

इन सात मित्रों के अतिरिक्त प्रवीण सागर की रचना में लोबड़ी की राजकुमारी सुजानबा का भी नाम लिया जाता है। जिन छंदों में सागर को संबोधित किया है वे सुजानबा के लिखे माने जाते हैं।

साथ ही इस ग्रंथ की रचना में गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि दलपतराम डाह्याभाई और गोविन्द भाईं गिल्लाभाई का भी हाथ है। इन दोनो ने अलग-अलग इस रचना का सटीक संपादन किया है और अंतिम १२ लहरों (सर्गों) में जहाँ कही आवश्यकता हुई वहाँ अपने-अपने ढंग से मौलिक रचनाएँ करके इस अपूर्ण ग्रन्थ को पूरा किया है।

प्रवीण सागर की कथा—इस ग्रन्थ की कथा संक्षेप में इस प्रकार है— शंकर भगवान की आज्ञा से एक बार कैलास मे शिवरात्रि के दिन महोत्सव हुआ। देवता, यक्ष, किन्नर, गंधर्व इत्यादि इसमे भाग लेने के लिए एकत्रित हुए। इस महोत्सव मे विचित्रानंद नामक एक शिवगण अपनी पत्नी चित्रकला के प्रेम में रत होने के कारण आ न सका। इसकी अनुपस्थिति भगवान शंकर को

[1] गुजराती प्रेस द्वारा प्रकाशित प्रवीणसागर की पुरयणी (परिशिष्ट)।

अवज्ञा मानी गई। विकटानद नामक एक शिवगण ने इस अवज्ञा की ओर शंकर भगवान का ध्यान खीचा तो इन्होंने क्रुद्ध होकर दपती को शाप दिया। अतः दीर्घकाल तक विरह-वेदना सहन करने के लिए इस दपती को मृत्युलोक में जन्म लेना पडा। विचित्रानद के साथ इनके छ अतरग मित्रो ने भी मृत्युलोक मे जन्म लिया और चित्रकला तथा उसकी सखी पुष्पावती ने भी मर्त्य लोक मे जन्म लिया। विचित्रानन्द का जन्म नेहनगर के राजा प्रदीप के घर हुआ। चित्रकला मछापुरी के राजा नीतिपाल के घर पैदा हुई। इस जन्म मे राजकुमार का नाम सागर और राजकुमारी का नाम प्रवीण रखा गया था। सागर बहुत ही सुन्दर और सर्वगुण सपन्न था। सभी कलाओ में वह प्रवीण था। इसी तरह राजकुमारी प्रवीण भी अत्यत सुन्दर और सर्वगुण सपन्न थी। सागर की तरह वह भी सभी कलाओ मे निपुण थी। इन दोनो का यश दूर-दूर तक फैला हुआ था।

प्रवीण के रूप-गुण की चर्चा सुनकर सिंध देश के कुरावाद नामक नगर के तरण तेज नामक राजा ने अपने पुत्र रगराव की सगाई का प्रस्ताव प्रवीण के पिता के पास भेजा। घर और वर दोनो अच्छे हैं यह समझ कर राजकुमारी के पिता ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और प्रवीण की रगराव के साथ सगाई हो गई। राजकुमार सागर शिकार खेलने का बहुत शौकीन था। एक बार सजधज कर अपने मित्रो एवं सैन्य के साथ वह शिकार खेलने निकला। मछापुरी के राजा नीतिपाल ने सोचा कि कोई शत्रु राज्य पर चढ आया है। इसलिए वह भी अपनी सेना के साथ लड़ने के लिए आया। पर अपनी शका दूर होते ही वह राजकुमार को आदर के साथ अपने नगर मे ले गया। मछापुरी मे राजकुमार ने राजकुमारी प्रवीण को राजमहल के झरोखे मे चिक की ओट मे खडे देखा और उसी क्षण इसके अलौकिक रूप पर आसक्त हो गया। राजकुमारी भी इस पराक्रमी और सुन्दर राजकुमार को देखकर मोहित हो गई। कुछ समय वहाँ रहने के बाद राजकुमार अपने साथियो के साथ अपने देश नेहनगर चला गया।

थोडे समय के बाद मारवाड के मुदितपुर नामक नगर के राजा सग्राम सेन की कन्या से सागर का विवाह हो गया। नई रानी के साथ विलास मे कुछ ही समय व्यतीत हुआ था कि एक दिन कई नर्तकियाँ नेहनगर मे आई। राजकुमार सागर के सामने इन्होने अपनी कला का प्रदर्शन किया और अंत मे प्रवीण के बनाए हुए पद गाये—

प्रेम बान दे गयो, न जाने किते गयो।
सुपथी मन ले गयो झरोखे दृग लायके॥

इन पदों को सुनते ही राजकुमार की खोई हुई स्मृतियाँ जाग्रत हो गईं। वे अब राजकुमारी प्रवीण की स्मृति में पागल से रहने लगे। यह देखकर इनके मित्रो ने राजकुमारी को एक पत्र लिखने की सलाह दी। मित्रो की सलाह से सागर ने प्रवीण को एक प्रेमपत्र लिखा और गुप्त रूप से इस पत्र को प्रवीण तक पहुँचाने का काम इन्होने अपने अंतरंग मित्र कवि भारतीनन्द को सौंपा। मंछापुरी जाकर भारतीनंद एक संन्यासी का वेश बनाकर रहने लगे। संयोग से उनका परिचय राजकुमारी प्रवीण की सहेली कुसुमावली से हो गया। इस तरह कुसुमावली के द्वारा भारतीनन्द ने सागर का पत्र प्रवीण तक पहुँचा दिया। पत्र पढ़ते ही प्रवीण मूर्च्छित हो गई। एक ओर कुल की मर्यादा और लोकलाज थी तो दूसरी ओर प्रेम था। इस द्वन्द्व मे अंतिम विजय तो प्रेम की ही हुई। प्रवीण ने शिवालय मे जाकर आजीवन कौमार्य-व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा की और किसी अन्य पुरुष का ध्यान न करके सदैव सागर के प्रेम मे रत रहने का निश्चय किया। इस तरह भावी जीवन के प्रति दृढ़ होकर अंत मे प्रवीण ने सागर को आंसुओ से भीगा पत्र भेजा। उसे पढ़ते ही सागर वैद्य का वेश बनाकर प्रवीण से मिलने के लिए चल पड़ा। अपने आयुर्वेद के ज्ञान से सभी को प्रभावित करके उसने जैसे-तैसे अतःपुर में प्रवेश पा लिया और प्रवीण से भेंट की। सागर से मिलकर प्रवीण की दशा सुधर गई। यह देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बहुत ही मान-सम्मान के साथ उनको विदा किया। इस मिलन के बाद राजकुमार तथा प्रवीण का मन पुनः चिर वियोग के भय से भीत हो उठा। उधर भारतीनन्द और कुसुमावली भी अन्योन्य के विरह में दुखी थे। अतः बहुत ही सोचने के बाद नेहनगर और मंछापुरी की सीमा पर नैनतरंग गाँव मे सागर ने एक शिवालय की स्थापना की। शिवालय के उद्घाटन के उपलक्ष मे एक बड़ा समारोह किया गया। इसमे मंछापुरी के राजा नीतिपाल को भी सपरिवार निमन्त्रित किया गया। इस युक्ति को समझ कर प्रवीण और कुसुमावली भी निश्चित दिन शिवालय में पहुँचे। सागर और भारतीनन्द मन्दिर मे सिद्धों का वेश बनाकर बैठ गये थे। अतः पुनः एक बार इन प्रेमी युगलों का मिलन हो सका।

सागर और प्रवीण धीरे-धीरे एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गये। एक क्षण का वियोग भी इन्हे असह्य लगता था। अतः वे एक दूसरे को लम्बे लम्बे पत्र लिखा करते थे। इन पत्रो में विविध ऋतुओं का और प्रेमियों की मनोदशा पर उनके प्रभाव का बहुत ही मार्मिक वर्णन है। प्रवीण ने सागर को लिखा कि वह अपनी सहेलियों के साथ द्वारिका की यात्रा के लिए जाने वाली है। यह पढ़ते ही सागर भी अपने मित्रों के साथ द्वारिका के एक मन्दिर

में व्रजराज गोसाई के नाम से जा बैठे। प्रवीण और कुसुमावली अपनी सहेलियों के साथ दर्शन करने के वहाने मन्दिर में आईं और दीक्षा देने के बहाने व्रजराज गोसाई ने राजकुमारी को निकट बुलाकर उससे बातचीत की। भारतीनन्द और कुसुमावली का भी मिलन हुआ।

ऐसे क्षणिक मिलन और पुनः चिर वियोग के कारण राजकुमार के मन को सदा क्लेश होता रहता था। पुनः एक बार इष्ट साधना के निमित्त अपने मित्रों के साथ सागर घर से निकल पड़े और जोगी का वेश धारण करके मछापुरी मे अलख जगाते हुए बदरिकाश्रम की ओर चले गये। सागर का यह रूप देखकर राजकुमारी प्रवीण को भी बहुत दुख हुआ। उसने भी अमूल्य वस्त्रालकारो को छोड दिया और जोगन वेश धारण करने लगी। वदरिकाश्रम मे राजकुमार की भेंट प्रभानाथ से हुई। सात मित्रो की दृढ निष्ठा से तुष्ट होकर प्रभानाथ ने इनको यम, नियम, आसन, प्राणायाम, षटचक्र, कुभक, महामुद्रा, समाधि और शिवभक्ति की विधि बताई। इन मित्रो की कठोर साधना से प्रभानाथ सिद्ध बहुत ही खुश हुए और उन्होने भगवान शिव से इन विरह व्यथित शिवगणो के उद्धार के लिए निवेदन किया। वे प्रसन्न हुए तथा उन्होंने आदेश दिया कि शिवरात्रि के दिन नैनतरग के शिव मन्दिर मे सब एकत्रित होकर महापूजा करो। सातो मित्र बदरिकाश्रम से मछापुरी होते हुए नैनतरंग के शिवालय मे पहुँचे। प्रवीण तथा उसकी सहेली कुसुमावली को भी शिवजी के आदेश के अनुसार शिवरात्रि के महोत्सव मे उपस्थित रहने की सूचना भेजी गई।

शिवरात्रि के उत्सव मे हजारो की सख्या मे लोग इकट्ठे हुए। प्रवीण भी कुसुमावली के साथ उस महोत्सव मे भाग लेने पहुँची। सातो मित्र सात ऋषियो के समान तेजस्वी दिखते थे और दोनो सखियाँ भी रति-रभा सी सुन्दर दिखती थी। पूजा समाप्त होते ही इन सबकी देह से दिव्य ज्योति प्रकट हुई। सागर तथा प्रवीण का हस्त-मिलाप हुआ। देवलोक से आये हुए विमानो मे से एक मे सागर एव प्रवीण, दूसरे मे भारतीनन्द एव कुसुमावली तथा अन्य विमानो मे शेष मित्र बैठकर शिवपुरी चले गए।

प्रवीण सागर ८४ सर्गों का एक वृहद महाकाव्य है। ई० स० १६११ में गुजराती प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित सटीक प्रवीण सागर मे ८८२ पृष्ठ हैं। इसमे कुल २३३७ छन्द हैं। इस काव्य की सबस पुरानी प्रति ईडर में सुरक्षित है जिसके आधार पर वहाँ के महाराजा ने ई० स० १८६७ मे इसे लियो मे छपवा कर प्रकाशित करवाया। इसमे केवल ६० लहरें (सर्ग) है। इसके बाद इस अपूर्ण ग्रन्थ के शेष अशा का संग्रह गुजरात के भाट चारणो के पास से दलपतराम

डाह्याभाई गौर गोविन्द गिल्लाभाई ने किया। इन दोनों ने ६० से ७२ तक की लहरें खोज निकालीं तथा अन्तिम १२ लहरों की जनश्रुति के आधार पर अलग-अलग ढग से रचना करके इस अपूर्ण ग्रन्थ को पूर्ण किया।

प्रवीण एवं सागर इस ग्रन्थ के नायिका तथा नायक है। इन दोनों के नामों के आधार पर इस ग्रन्थ का नाम प्रवीणसागर रखा गया है।

यह ग्रन्थ कल्पना पर आधारित है या किसी सत्य घटना पर इस विषय मे विभिन्न अभिमत हैं। बहुत से लोगों का अभिमत यही है कि इस ग्रन्थ की रचना एक सत्य घटना के आधार पर हुई है। पर उस घटना का सम्बन्ध सौराष्ट्र के राजघरानों से होने से उन्होंने इसे दबाने की कोशिश की। प्रवीणसागर की मूल प्रतियाँ भी उन्होंने नष्ट करवा दी। राजघरानो के ऐसे प्रयत्नों से लोगों की शंकाएँ निश्चय मे परिवर्तित हो गईं।

संक्षेप में सत्य कथा यह बताई जाती है:

राजकोट के राजकुमार महेरामणसिंह किसी कारणवश कुछ दिनो तक लीमडी के ठाकुर के अतिथि रहे। वहाँ पर ठाकुर की लड़की सुजान से उनका प्रेम हो गया। सर सुजान की सगाई पहले ही कच्छ के राव के कुमार से हो चुकी थी। अतः उनका विवाह नही हो सका। अतः प्रवीण आजन्म अपरिणीत रही और महेरामण से प्रेम करती रही।

इसी प्रेम कथा को प्रवीण सागर मे पात्रो और स्थलों के नाम समानार्थक शब्दों द्वारा बदल कर कहा गया है। महेरामण का नाम सागर, सुजानबा का नाम प्रवीण और उसकी सखी फूल बाई का नाम बदल कर कुसुमावली कर दिया गया है।[१] रचियता के नामो मे ऊपर बताये हुए छः मित्रो के नामों को भी बदल दिया गया है। कथा में उन्ही छः मित्रो के नाम क्रमशः ये हैं[२]—

(१) भारतीनन्द; (२) रविज्योत, (३) वीरभद्र, (४) सत्रसाल (५) रत्न प्रताप, और (६) कुंवर उमराह (दृष्टिकेतु)।

इसके अतिरिक्त राजकोट और लीमडो नगरों के कल्पित नाम नेहनगर और मंछापुरी रखे गये हैं।

प्रवीण सागर में महाकाव्य के सभी लक्षण हैं। इसका नायक धीरोदात्त है। काव्य का रस शृङ्गार है। शृङ्गार के साथ अन्य रस भी विद्यमान हैं।

---

[१] गुजराती अोए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ३३।

[२] सागर मित हितकारी, भारतीनन्द कवि जातं।
बीरभद्र सत्रसालं, रतन प्रतापं कुंवर उमराहं॥ (लहर ८, छन्द ११)

स्थानक प्रसिद्ध न होने पर भी ऐतिहासिक है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे परम्परागत मगलाचरण, तथा अन्य देवी-देवताओ की स्तुतियां हैं। ग्रन्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाला है। ८४ सर्गों के इस महाकाव्य मे प्रातः, मध्यान्ह, सध्या, रात्रि, दिन, वन, पर्वत, सागर, मृगया, सैन्य, युद्ध, स्वर्ग, षटऋतु, सयोग-वियोग आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। अतः महाकाव्य के प्राय. सभी लक्षण प्रवीण-सागर मे विद्यमान हैं ऐसा कह सकते हैं। यह ग्रन्थ ज्योतिष, राजनीति, आयुर्वेद, काव्यशास्त्र, कोकशास्त्र, सगीतशास्त्र, नाट्यशास्त्र, अलकार शास्त्र, छन्द-शास्त्र, नायक-नायिका भेद, शकुनशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, तथा अष्टाग योगादि शास्त्रो के ज्ञान-विज्ञान का ऐसा अतुलित भण्डार है कि यदि इसे ज्ञान मञ्जूषा (Encyclopedia) कहा जाय तो भी उचित ही है। इस ग्रन्थ मे दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त, गाथा, पद्धरी, मुक्तदाम, छप्पय, सवैया, झूलणा, तोटक, मालती, मनहर, भुजग प्रयात, तोमर, नाराच, उपजाति, चामर, हनुकाल, मधुमार, चन्द्रावतली, शखनारी, बिजोह, चपक माला, सरस्वती, महालक्ष्मी, चन्द्रिका, आभीर, निशिपालिका, प्रिया इत्यादि छन्दो का प्रयोग किया गया है। छन्दो की ही भाँति इस ग्रन्थ में विविध भाषाओ और भाषा शैलियो का भी प्रयोग हुआ है। प्रवीण की सखियाँ गुजराती, मराठी, कच्छी, मारवाडी, माथुरी (ब्रज), यावनी (उर्दू), पजाबी एव सस्कृत मे उनसे बातचीत करती हैं। पद कवि ने रचे हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ हिन्दी मे होने पर भी भाषा में स्थिरता और एकरूपता नही है। सारे ग्रन्थ मे डिंगल, ब्रजभाषा एव खडी बोली का प्रयोग किया है। ग्रन्थ की भाषा पर गुजरातीपन की झलक तो अवश्य है ही। इसमे कच्छी और गुजराती भाषा का बहुत ही उपयोग किया गया है जिसका अर्थ कोई भी ब्रजभाषा का विद्वान सस्कृत या ब्रजभाषा के कोश के आधार पर नही कर सकता। अत हम इस ग्रन्थ को यह प्रमाणपत्र नही दे सकते कि यह ग्रन्थ ब्रजभाषा का है।[१]

मेरे नम्र अभिमतानुसार प्रवीणसागर हिन्दी-ब्रजभाषा का महाकाव्य है। ब्रजभाषा के साथ-साथ डिंगल, खड़ी बोली और विभिन्न प्रादेशिक भाषाओ का प्रयोग इस महाकाव्य की विशेषता है।

यह ग्रन्थ गुजराती एव हिन्दी के विद्वानो से बहुत समय तक उपेक्षित रहा। हिन्दी का ग्रन्थ समझ कर गुजराती के विद्वानो ने इसकी ओर ध्यान नही दिया तो गुजराती के अचल मे छिपे इस ग्रन्थ से हिन्दी के विद्वान अनभिज्ञ ही रहे। पर जैसे ही हिन्दी के विद्वान इस ग्रन्थ को ध्यान से देखेंगे,

---

[१] गुजराती ओए हिन्दी साहित्या आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ३४।

तो उन्हें प्रतीत होगा कि एक अहिन्दी भाषी कवि द्वारा लिखित यह प्रवीणसागर महाकाव्य हिन्दी का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। गुजरात के राजकुमार महेरामणसिंह द्वारा यह प्रवीणसागर हिन्दी काव्य साहित्य को महत्त्वपूर्ण देन है।

राजा साहब अमरसिंह जी

उन्होंने ई० स० १८०४ से १८४३ तक ध्रांगध्रा में राज्य किया था। उन्हें साहित्य से बहुत ही प्रेम था। ये प्रायः भक्तिभाव में तल्लीन होकर स्तुति, भजन, पद इत्यादि की गुजराती में रचना करते थे ऐसा कहा जाता है। उन्होंने हिन्दी में भी कई पद लिखे हैं।

महाराव लखपति जी

ये कच्छ के महाराजा थे। इन्होंने ई० सन् १७५२ से १७६१ तक राज्य किया था। इन्होंने लखपति शृङ्गार नामक एक अपूर्व ग्रन्थ हिन्दी में लिखा है।[1] व्रजभाषा पर इनका बहुत ही प्रभुत्व था। ये अत्यन्त प्रजा वत्सल और गुणग्राही महाराजा थे। इन्होंने भुज में एक बड़ी पाठशाला स्थापित की थी। इसमें कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरात के अतिरिक्त राजस्थान तथा अन्य हिन्दी प्रदेशों के कई छात्र काव्य एवं पिंगल की शिक्षा ग्रहण करने आते थे। स्वामी नारायण सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवि ब्रह्मानन्द और कवि दलपतराम डाह्याभाई ने भी इसी पाठशाला में अध्ययन किया था।[2] इस पाठशाला एवं पाठशाला के[3] नियमों तथा अध्ययन-अध्यापन की विधियों के विषय में श्री चन्द्रप्रकाशसिंह (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वड़ोदा विश्वविद्यालय) ने 'सरस्वती' में विस्तार से लिखा है।

दुर्गेश्वर

रचनाकाल—सं० १८१४ ग्रन्थ—साहित्य सिन्धु

आपका निवासस्थान खम्भायतपुर—आज का खम्भात—था। साहित्य

---

[1] गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ५६।

[2] समालोचक १९२३, पृ० १९७।

[3] काव्य-कला की शिक्षा देने के लिए भुज (कच्छ) में एक पाठशाला था। कवियों का सृजन करने वाली यह काव्य-पाठशाला संभवतः सारी दुनिया में अद्वितीय था। अनेक काव्य-रसिक इस संस्था से पढ़कर राज-दरबारों में राजकवि हुए हैं। इस काव्य-शाला में काव्य-शास्त्र सिखाये जाते थे। जिस तरह एक अनुभवी और निपुण माली ऋतुओं की धूप-छाँह, अभिसिंचन, लालन-पालन और फल-फूलों को चुनने-गूंथने की कला का परिचय नए माली को देता है उसी की तरह इस शाला के रसज्ञ और अनुभवी प्राध्यापक रस के उपासकों को नव-रस की वाटिका में घुमाकर काव्य-कला की शिक्षा देते थे। भुज कच्छ के महाराव का सिंहासन है पर भुज की पाठशाला कच्छ के महाराव का कीर्तिमुकुट है।—'कवीश्वर दलपतराम" शीर्षक पुस्तिका में गुजरात के महाकवि श्री न्हानालाल।

सिन्धु की रचना प्रथम गुजरात प्रान्तातर्गत पट्टीदार ग्राम के निवासी बेनीदास कवि ने प्रारम्भ की थी, किन्तु खम्भात के नवाब के साथ युद्ध छिड जाने और उस युद्ध मे इनका शरीरपात हो जाने से ग्रन्थ अपूर्ण रह गया। कहा जाता है कवि बेनीदास की स्त्री ने अपने पति की पवित्र स्मृति के उपलक्ष मे उक्त ग्रन्थ को आपके द्वारा पूर्ण कराया। आप जाति के ब्राह्मण थे। ग्रन्थ बहुत बडा है और सस्कृत ग्रन्थो के आधार पर बनाया गया है। ग्रन्थ मे प्राय एक हजार श्लोको का समावेश किया गया है।[1]

निम्नलिखित छन्द से ग्रन्थ तथा उसके रचयिता का परिचय मिलता है:

खम्भायतपुर वासी दुज दुरगेसर को
मान दे बुलाई ग्रन्थ बनवायो नयो है,
उनें ग्रन्थ रह्यो मौन भयो बेनीदास जू को,
मुकति को देन तहाँ ग्रन्थ चित लायो है।
पीछे गगाजल-सी पवित्र ताको बनिता ने,
पिय सुख देनहित ग्रन्थ यह दयो है।
सवत अठारह चतेरदस चैत मास,
नौमी रविवार ग्रन्थ सम्पूरन भयो है।[2]

चादण शासन (गुजरात प्रान्त)

रचना काल—स० १८०२ ग्रन्थ—१. चारणी पिंगल २. केसर रास

आप पाटण के राणा चन्द्रसेन के आश्रित थे। चारणी भाषा के आप अच्छे ज्ञाता थे। ग्रन्थ मे पाटण के राणा हरपाल मक्वाणा के बडवान राज्य-स्थापन करने वाली शाखा के अजमाल तथा चन्द्रसेन राजा का उल्लेख है। आपका दूसरा ग्रन्थ ऐतिहासिक काव्य है। इसमें वीरमगाम से निकटस्थ पाटडी राज्य के झालावशीय राजाओ के युद्धो तथा उस राज्य के स्थापन के वर्णन हैं। कहा जाता है, स्वय कवि ने अपने आश्रयदाता चन्द्रसेन के साथ युद्ध मे भाग लिया था। इस ग्रन्थ मे वीररस की मुख्यता है।[3]

उदाहरण—

दुदाला श्रीदन्तमाला, उरे अरणे दे श्रणि।
बुहुमताम्बि सुडालास प्रविश्रम्, आननहा सति नमो ईश ॥
सजे दल दखणो सकेजे नजदीणा निशाण।
बड भादस बड भान थी, खडे आप रिसाण ॥

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद (चतुर्थ भाग)—मिश्रबन्धु, पृ० ६५।
[2] वही।
[3] वही, पृ० ६२।

दाभूजी सरदार दले, पुलरू व्रंहि चाले ।
सुवादर भाखै सोन जे, उभु झलराले ।।[1]

गौरीबाई (ई० स० १७५६—१८०६)

गौरीबाई[2] का जन्म ई० सन् १७५६ में डुंगरपुर के एक नागर परिवार में हुआ था। इनका विवाह पाँच वर्ष की उम्र में ही हो गया था और विवाह के केवल एक सप्ताह बाद ही इनके पति का देहान्त हो गया। अतः बड़ी होने पर समझ आने पर इनका मन संसार की अनित्यता और वैराग्य से भर गया। इन्होने बड़ी श्रद्धा से गीता, रामायण, महाभारत एवं अन्यान्य धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन किया। इनकी भक्तिभावना एवं साधुपरायणता की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। ई० स० १८०४ मे ये यात्रा के लिए निकली। डुंगरपुर के महाराजा शिवसिंह जी ने तथा जयपुर इत्यादि रियासतों के महाराजाओं ने इनका बहुत ही आदर-सत्कार किया। गौरीबाई मथुरा, गोकुल, वृन्दावन होती हुई वाराणसी गईं। कई वर्षों तक वाराणसी में निवास करके ई० सन् १८०६ मे इन्होने अपनी इच्छा से ही समाधि लगाकर प्राण त्याग किया। इनका जीवन शान्त और भक्तिभावना से ओतप्रोत था।

अन्य सन्त कवियो की तरह गौरीबाई ने भी नीतिवैराग्य और ब्रह्मज्ञान के पद लिखे हैं। इन्होने गुजराती के साथ-साथ हिन्दी मे भी मधुर एवं प्रासादिक शैली में पद रचना की है।

जसुराम

मिश्रबन्धुओं ने इनका उल्लेख इस प्रकार किया है—

नाम—(८६०।१) जसुराम　　ग्रन्थ—राजनीति
कविता काल—१८१४　　विवरण—गुजराती कवि थे।

इन्होंने सोलंकी जगमाल सुत उदयसिंह की प्रेरणा से राजनीत नामक ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ गुजरात मे बहुत लोकप्रिय है। इसमे १० छप्पय ६६ कवित्त और ६० दोहे (=१३६ छन्द) हैं।

कवीश्वर दलपतिराय और बंशीधर

ये दोनों मित्र अहमदाबाद के निवासी थे। इन दोनों ने साथ मिलकर कविता की है। इन दोनों मे दलपतिराय महाजन और बंशीधर ब्राह्मण थे। दोनो कवियो ने सम्वत् १७९२ मे 'अलकार-रत्नाकर' नामक ग्रन्थ की रचना

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद (चतुर्थ भाग)—मिश्रबन्धु, पृ० ६२।
[2] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २१३।
[3] मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग), द्वितीय संस्करण—मिश्रबन्धु, पृ० ७२१।

की थी।[1] इन्होंने उदयपुर के महाराणा जगतसेन के नाम पर यह ग्रन्थ लिखा है। ये दोनों उदयपुर के नरेश जगतसिंह के आश्रित कवि थे। इन्होंने कुवलयानन्द ग्रन्थ के आधार पर भाषाभूषण की पूर्ति के रूप में इस ग्रन्थ की रचना की है।[2] इस ग्रन्थ में अन्य कवियों की तथा अपनी अपनी कविता में से उदाहरण दिये हैं। ग्रन्थ प्रयोजन इत्यादि कवि के शब्दों में ही देखिए—

नमत सुरासुर मुकुट महिं प्रतिविम्बित अलि माल।
किये रत्न सब नीलमनि सो गनेश प्रतिपाल ॥१॥
उदयापुर सुरपुर मनो सुरपति श्री जगतेश।
जिनकी छाया छत्रबस कीनो ग्रन्थ अशेष ॥२॥
सकल महिपन के राजें सिरताज राज—
पर उपकारी हारी भारी दुःख दन्द के।
देव जगतेस धीर गुरुता गम्भीर धरे—
भजन विपच्छ पुच्छ दुच्छ फौज फन्द के।
प्रभुता प्रकास अति रूप को निवास सो हैं।
प्रगट प्रकास मेटैं जग दुख बृन्द के।
मेघ से समुन्दर से पारथ पुरन्दर से।
राते पति सुन्दर समान सूर चन्द के ॥ ३ ॥
जदपि नार सुन्दर सुघर दिपत न भूखन हीन।
त्यों न अलकृति विनु लसैं कविता सरस प्रवीन ॥ ४ ॥
कीने रसमय रसिक कवि सरस बढ़ाय विवेक।
छाया लहि गिरिबान की भाषा ग्रन्थ अनेक ॥ ५ ॥
तदपि अलक्रति ग्रन्थ को काहू कवि नहि कीन।
भाषा भूखन है जउ कहूँक लच्छन हीन ॥ ६ ॥
यातैं ताहि सुधारिकैं देखै कुवलयानन्द।
अलकार रत्नाकर सु किय कवि आनन्द कन्द ॥ ७ ॥
कहुँ कहुँ पहिले धरे उदाहरन सरसाय।
कहुँ नये करि कैं धरे लच्छन लच्छ जताय ॥ ८ ॥
अरथ कुवलयानन्द को काढ्यो दलपतिराय।
बन्सीधर कवि पैं धरें कहुँ कहुँ कवित बनाय ॥ ९ ॥

---

[1] गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० १४।

[2] वही।

मेदपाठ श्रीमाल कुल विप्र महाजन काय।
बासी अमदावाद के बन्शी दलपति राय ॥ १० ॥
—अलंकार रत्नाकर

इन पक्तियों को देखने से प्रतीत होता है कि दोनों उच्च कोटि के कवि थे। दोनों की छन्द और अलंकार-योजना उत्कृष्ट है। मिश्रबन्धुओ ने इन्हें पद्माकर की कक्षा का कवि मानकर इनकी कविता की भूरि-भूरि प्रशसा की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अभिमतानुसार भी ये दोनों अच्छे कवि थे। पद्य-रचना की निपुणता के अतिरिक्त इनमे भावुकता और बुद्धिवैभव दोनों हैं।

केवलराम (ई० सन् १७००—१७८०)

कवीश्वर केवलराम जी का जन्म ई० स० १७०० में हुआ था। ये बीसनगरा नागर थे। इनके पिता का नाम केशवराम था। इन्होने संस्कृत एवं व्रजभाषा का अभ्यास किया था।

केवलराम ने 'बाबी विलास' नामक ऐतिहासिक काव्य लिखा है। ये अहमदावाद के गोमतीपुर के समीप राजपुर मे तुलसी की गली मे रहते थे। इनको लुणावाड़ा के राजा का भी अच्छा आश्रय था।[१] लुणावाड़ा नरेश की उदारता के कई कवित्त भी इन्होने लिखे हैं।

इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके कनिष्ट पुत्र आदितराम ने भी अच्छी कविता की है। आदितराम मानाजी गायकवाड़ के आश्रित थे। आदितराम के पश्चात इनके भाई शोभाराम के पुत्र नरोत्तमराम एवं इनके पुत्र उत्तमराम ने भी कविता का अभ्यास किया था। बाबी नवाबों के दिये हुए वर्षासन कवि उत्तमरामजी को मिलते और ये बाबीविलास में बाबीवंश की नई घटनाओं के विषय मे लिखते जाते। उत्तमराम के बाद केवलराम के वंश मे किसी ने कविता का अभ्यास नहीं किया है।

धीरो (ई० स० १७५३—१८२५)

गुजरात के सन्त कवियों में धीरा का अपना विशिष्ट स्थान है। ये बड़ोदा जिले की सावली तहसील के गोठड़ा गाँव के ब्रह्मभट्ट (भाट) थे। आरम्भ मे ये वैष्णव थे पर बाद मे उन्होंने वैराग्य ले लिया था। फिर भी कभी कभी ये वैष्णव मन्दिरों में जाते थे। हरिभक्ति एवं वेदान्त तो मानों उनको विरासत मे मिला था। कई शास्त्रियों के पास बैठकर उन्होंने ज्ञान

[१] गुजराती अेए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० २६।

सस्कार प्राप्त किये थे। साधुओ के सपर्क से इन्होंने बहुत कुछ पाया था। इनकी 'अवल वाणी' (ताने) कबीर, सुन्दर एव अखा के समान ही हैं।[1] गुरु होना इन्हे अच्छा नही लगता था। फिर भी उनको कई शिष्य करने पडे थे।

इनकी स्त्री जतनबा तामसी प्रकृति की थी। इनकी आर्थिक स्थिति सतोषकारक थी। किशोरावस्था मे इनको शिक्षा नही मिली थी। पर तेरह चौदह वर्ष की आयु में ये एक सस्कार सपन्न साधु के सम्पर्क मे आये थे। अपने कई पदो मे इन्होने गुरु शिष्या के धर्म विस्तार स लिखे हैं। ये सस्कृत नही जानते थे। इनका हिन्दी भाषा का ज्ञान भी साधारण ही था। ये योग से ज्ञान को अधिक महत्त्व देते थे।[2]

ब्रह्मज्ञानी और वेदाती होते हुए भी धीरो अखा की भांति अस्पष्ट नही है। इनकी कविता साधारण पढने वाला भी समझ सकता है। इनकी कविता वाणी प्रभावोत्पादक और सरस है।

धीरा ने हिन्दी सेवी अन्य गुजराती कवियो की तरह हिन्दी मे भी पद एव कुण्डलियां लिखी हैं। हिन्दी और गुजराती रचनाओ मे विषय तो एक ही है—भक्ति ज्ञान एव वैराग्य। इनकी हिन्दी म गुजराती क अतिरिक्त कभी कभी पजाबी के भी शब्द आ जाते हैं। धीरा की हिन्दी कविता भाव की दृष्टि से तो बहुत ही सुन्दर है। पर भाषा म इनकी कविता को हम बहुत सुन्दर नही कह सकते। बृहत्काव्यदोहन एव प्राचीन काव्यमाला मे इनके हिन्दी पद एव कुण्डलियां भी सगृहीत हैं। इनके कई शिष्य थे, जिनमे बापुसाहेब गायकवाड मुख्य हैं।

प्रीतमदास

प्रीतमदास बावला गाँव का भाट था। बारह पन्द्रह वर्ष की उम्र मे वे रामानन्दी साधु की एक जमात मे शामिल हो गय। जमात के महन्त भाईदास ने उन्हे मन्त्र दिया। महन्त क साथ वे चूडाराणपुर गये। थोडे समय रहने के पश्चात व सदेसर आये और वहीं भजन कीर्त्तन करते हुये रहे। उनके काव्या मे जो ज्ञान एव वर्णन मिलते हैं, उस पर से निश्चित होता है कि उन्होंने बहुत ही अध्ययन किया होगा।[3] भाईदास के अतिरिक्त बापूजी से तथा गोविन्दराम से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था।

---

[1] गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो (दूसरा सस्करण)—कृष्णलाल झवेरी, पृ० १८८।

[2] वही, पृ० १८६।

[3] साहित्य प्रवेशिका—हिम्मतलाल ग० अजरिया, पृ० ८१।

प्रीतमदास अठारहवीं शताब्दी का भूषण है। इनकी मृत्यु ई० स० १७९८ में हुई थी। ऐसा माना जाता है कि वे ७२ या इससे अधिक वर्षों तक जीवित रहे थे। अतः इनका जन्म ई० स० १७२० से ई० स० १७२५ के बीच के समय में हुआ हो ऐसा मान सकते हैं।[1]

स्व० ईच्छाराम के अभिमतानुसार प्रीतमदास के पिता का नाम रघुनाथ दास था और धनवान होने से अपने इकलौते पुत्र का विवाह कम अवस्था में ही कर दिया था। पर प्रीतमदास के मन्दिर की पुरानी लिखित बहियाँ देखने से प्रतीत हुआ कि इनके पिता का नाम प्रतापसिंह तथा माता का नाम केकुंवर बा था। प्रीतमदास जन्म से नहीं तो बाल्यकाल से चक्षु रहित हो गये थे इस बात के कई आधार मिलते हैं।[2]

ये अपने पास चार भक्तों को अपने पद लिख देने के लिए रखते थे। प्रीतम के पद लिख लेने वाले ये भक्त इनके उच्चारों को ठीक तरह से न समझ सकें और जैसे समझ लें वैसे ही देहाती भाषा में लिख लें यह तो स्वाभाविक ही है। अन्धे न होने पर, प्रीतमदास ऐसी अशुद्धियों को अवश्य दूर कर देते। इनके कई काव्यो में जो शुद्धि एवं संस्कारिता के दर्शन होते हैं इसे देखते हुए यह संभव नहीं है कि वे ऐसा अशुद्ध बोलें या लिखावें।

इनके निधन के पश्चात् कृष्णलीला के पदों के संग्रह के अतिरिक्त प्रायः इनकी सभी कविता की नकल एक ही प्रति मे इनके शिष्य नारणदास ने अपने हाथ से की है। गुजराती साहित्य के उच्च कोटि के विद्वान् श्री ईच्छाराम देसाई एवं श्री कृष्णलाल झवेरी के अभिमतानुसार प्रीतमदास ने दो बार शादी की थी। पर जन्म से अन्ध एवं बाल्यकाल में ही दीक्षित होने वाले प्रीतमदास ने ब्याह ही नही किया था। तो पुत्र तथा पत्नियों के बारे में क्या चर्चा हो सकती है? मूलं नास्ति कुतः शाखा।[3]

श्री ईच्छाराम देसाई एवं श्री कृष्णलाल झवेरी के अभिमत से गोविन्द राम प्रीतमदास के गुरु थे। पर प्रीतम के गुरु तो बापुजी थे इस बात की प्रतीति अग्रलिखित पंक्तियों से होगी :

---

[1] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० १८९।

[2] श्री प्रीतमदासनी वाणी (दूसरा संस्करण)—महात्मा प्रीतमदास, सस्तु० साहित्य, अहमदाबाद, पृ० ३६।

[3] वही पृ० ८७।

धन्य संगत्य धन्य रामजी, धन्य सीवदत्त गोविन्दराम।
धन्य स्वामी जानराय ठाकोर, धन्य सदेसर गाम॥
गुरु बापु जी करी क्रिपा, स्वामी आतमाराम।
संत समागम प्रीतम पाम्या, हरि चर्ण कमल सुख धाम॥[1]

इनके जीवन मे कई चमत्कारिक घटनाएँ घटी थी। इन सबका वृत्तान्त सस्तु० साहित्य, अहमदाबाद से प्रकाशित 'प्रीतमनी वाणी' ग्रन्थ मे मिलता है। महात्मा रविदास प्रीतम के समकालीन ही थे। इन्होने पद्य मे प्रीतमदास को एक पत्र लिखा था। इससे पता चलता है कि प्रीतमदास उच्च कोटि के सत थे।

अब तक प्रीतमदास के निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं— 'सरसगीता', 'ज्ञानकक्को', 'सोरठ रागना महिना', 'ज्ञान गीता' 'धरमगीता', 'साखी-ग्रन्थ', 'एकादशस्कंध', 'ज्ञान प्रकाश', 'ब्रह्मलीला', 'प्रेमप्रकाश', 'विनयदीनता', 'भगवद्गीता।'

इन सबके अतिरिक्त भी उन्होने 'सत्यभामानो गरवो', 'गुरु महिमा', 'भक्त नामावलि', 'नाम महिमा', 'कृष्णाष्टक', महिना, तिथि, वार, छप्पय, चौपाई, पद, घोल इत्यादि लिखे हैं। स्वर्गस्थ श्री ईच्छाराम देसाई के अभिमतानुसार उनके पदो की सख्या १५०० है। इनके पद दो प्रकार के हैं:—

१. ज्ञान, भक्ति, वैराग्य इत्यादि के पद;
२. शृङ्गार के पद।

श्री ईच्छाराम देसाई के अभिमतानुसार इन्होने अध्यात्मरामायण भी लिखी है एव काव्य मे श्रीमद्भागवत की रचना की है, ऐसा सुना है, पर ये ग्रन्थ देखने मे नही आये।

प्रीतमदास ने हिन्दी में साखियाँ लिखी हैं। शेष सब ग्रन्थ गुजराती मे हैं। अपनी साखियो के आधार पर ये हिन्दी के अच्छे कवि प्रमाणित होते हैं। प्रीतमदास की साखियाँ निम्नलिखित २४ अगो मे विभक्त हैं—

(१) खल, (२) नाम माहात्म्य, (३) संत माहात्म्य, (४) गुरु महिमा, (५) विचार, (६) जोग, (७) ज्ञान, (८) भक्ति, (९) प्रेम, (१०) वैराग्य, (११) अनन्य, (१२) ब्रेह, (१३) तृष्णा, (१४) मन, (१५) स्मरण, (१६) माया, (१७) तत्त्वसाख्य, (१८) ब्रह्मस्वरूप, (१९) काम, (२०) नारीनिन्दा, (२१) भाव, (२२) जीवन्मुक्त, (२३) सज्जन, एवं (२४) सहज।

---

[1] श्री प्रीतमदासनी वाणी (द्वितीय संस्करण)—महात्मा प्रीतमदास, सस्तु० साहित्य, अहमदाबाद, पृ० ३७।
[2] वही, पृ० ३५०।

इन साखियों की भाषा देखकर प्रतीत होता है कि इनकी वाणी बहुत ही प्रभावोत्पादक है।

सन्तों की प्रशंसा करते हुए कवि संतमाहात्म्य के अंग में कहते हैं[1]—

संत दीसा सें होत है, स्वांगे संत न होय।
कहे प्रीतम सोनामुखी, कुन्दन कहे न कोय॥ २०॥
संत विषय थी वर्जिता, नाही लोभ लगार।
कहे प्रीतम परमारथी, प्रेमे पर उपकार॥ २१॥

भक्ति अंग मे कवि ने भक्ति की महत्ता बताई है और भक्ति करने से भगवान शत्रु को कैसे पराजित करते हैं वह बताया है[2]—

भक्ति प्रिय गोपाल कुं, ऐसो अवर न कोय।
कहे प्रीतम त्रिभुवनपति, भक्तन के वश होय॥ १०॥
भक्ति करी प्रह्लादजी, हरि धर्यो नरसिंह रूप।
कहे प्रीतम कर नख बड़े, हण्यो हिरणाकस भूप॥ ११॥

सज्जन के अंग में सज्जनो की प्रशंसा करते हुए कवि ने कहा है[3]—

सज्जन सद्गुण देत है, करे दुष्टता दूर।
कहे प्रीतम माने नहि, माया तणा मजूर॥ १७॥
सज्जन अंजन आँख के, मज्जन मुख के पान।
कहे प्रीतम वपु छांडीए, सज्जन परम सुजाण॥ १८॥

इस तरह प्रत्येक अंग में कुछ-न-कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं। कवि की वाणी मधुर एवं प्रासादिक है। प्रीतमदास गुजराती भाषा के ही नहीं हिन्दी भाषा के भी महत्त्वपूर्ण कवि हैं।

खुमान बाई

रायगढ़ के समीप सान्दरणी गाँव के भट्ट—मेवाड़ा लालजी की पुत्री खुमान बाई ने भी हिन्दी में कई पद लिखे हैं। कविता में अपना नाम खुमान बाई न रखते हुए इन्होंने खुमान दास नाम रखा है।[4]

---

[1] श्री प्रीतमदासनी वाणी, (द्वितीय संस्करण), प्र० सस्तुं० साहित्य, अहमदाबाद, पृ० १४०।
[2] वही, पृ० १५३।
[3] वही, पृ० १६०।
[4] गुजराती अोए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ४१।

आप १२ वर्ष की थी तब किसी के उपदेश सुनने से कौमार्यव्रत ग्रहण कर लिया था। इनकी १६ वर्ष की अवस्था हुई तब इनके माता-पिता ने विवाह के लिए बहुत कहा था। पर ये अपने निर्णय मे दृढ़ रही। खुमान बाई की हिन्दी कविता बहुत कोमल एवं सरस है।[१]

भोजा भगत (ई० स० १७८५—१८५०)

भोजा अथवा भोजन भक्त सौराष्ट्र के अमरेली के समीप फतेहपुर गाँव के निवासी थे। इनके पूर्वज मूल गुजरात से वहाँ गये थे। वे जाति से कुणबी थे। इनका जन्म ई० स० १७८५ मे एक अनपढ परिवार मे हुआ था और वे स्वय भी अनपढ ही रहे। वे लिखना बिलकुल नही जानते थे।[२] ये पद गाते थे और इनके शिष्य इन्हें लिख देते थे या वे स्वयं याद रखते थे और अपने शिष्यों तथा मित्रो को उनके कहने पर गाकर सुनाते थे। इस तरह इनके पद कर्णोपकर्ण, गुजरात, सौराष्ट्र के नगरो एव देहातों मे घूमने वाले भिक्षुओ के द्वारा अमर हो गए हैं।

बारह वर्ष की आयु तक तो केवल ये दूध ही पीते थे। तदनन्तर गिरनार के एक साधु के कहने से वह अन्न खाने लगे। इस साधु के सत्सग से भोजा भगत की भक्ति दृढ़ होती गई। भोजा ऐसे सुयोग्य शिष्य निकले कि सभी इन्हे सन्त को हैसियत से पूजने लगे।

थोडे समय के पश्चात् वे अमरेली के समीप फतेपुर गाँव मे गए और तप करने लगे। वे कई दिन तक अजपाजाप—सोह सोह अथवा सोहं: हंस का जाप करने लगे। कहते है कि इनकी तपश्चर्या बारह साल तक चलती रही। इसके बाद इन्होने कई चमत्कार बताये।[३]

उत्तरावस्था मे ये वीरपुर मे रहते थे। वहाँ इनका मन्दिर है और इसमे इनके चरणो की पूजा होती है। इनके परिवारके लोग आज भी विद्यमान हैं। इन्होंने कबीर या सहजानन्द की तरह अलग सम्प्रदाय नहीं चलाया है। फिर भी इनके अनुयायी सौराष्ट्र मे कई हैं।[४]

---

१ गुजराती और हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ४१।

२ गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो (द्वितीय संस्करण)—कृष्णलाल झवेरी, पृ० १६७।

३ वही, पृ० १६८।

४ वही, पृ० १६६

गुजराती साहित्य में जिस तरह सामल के छप्पय, दयाराम की गरबी, प्रीतम के पद, नरसिंह के प्रभातिये एवं धीरा भगत की काफी प्रसिद्ध हैं उसी तरह भोजा भगत के 'चाबखे' प्रसिद्ध हैं।[१] ये मानते थे कि जिस तरह गलिया-घोड़ा चाबुक से ही चलता है उसी तरह गलित समाज भी चाबुक लगाने पर ही चलेगा। इसी न्याय से इन्होंने विलासिता में डूबे समाज की भजन रूपी चाबुकों से खूब खबर ली है। इन विशेषताओं के ही कारण भोजा भगत की वाणी 'चाबखा' नाम से प्रसिद्ध है।

भोजा भगत भी अनुभवी ज्ञानमार्गी सन्त कवि हैं।[२] उन्होंने 'सैलैया आख्यान', 'नानी भक्तमाल', 'ब्रह्म बोध', 'बावनाक्षर तथा कक्का' जैसी दीर्घ गुजराती रचनाओं के साथ-साथ कई पद भी गुजराती में लिखे हैं। पदों में इन्होंने प्रभातिये, सरवड़े, काफी, होरी तथा चाबखे लिखे हैं। इनके अतिरिक्त वार, तिथि तथा महीने भी लिखे हैं।

इनकी कविता व्यंग-प्रधान एवं वैराग्य की ओर ले जाने वाली है। इसीलिए गुजराती में एक उक्ति सुप्रसिद्ध है कि नरसिंह मेहता ग्रहस्थों के काम के कवि हैं और भोजो संन्यासियों के काम के कवि हैं।[३]

इनके कई हिन्दी पद भी प्राचीन काव्यमाला, भाग ५ (प्र० प्राच्य विद्या मन्दिर, बड़ोदा) में मिलते हैं। उनकी हिन्दी में अन्य हिन्दी सेवी गुजराती कवियो की तरह ही कई शब्द घुल-मिल गये हैं। कई जगह उन्होंने शब्दों को भी तोड़ा-मरोड़ा है। उनके कई पद इनकी भाषा के ही कारण समझ में नहीं आते। पर जहाँ भाषा आसान है या जहाँ शब्द तोड़े-मरोड़े नहीं गये, वहाँ इनके पद आसानी से समझ में आ जाते हैं। भोजा भगत का भी गुजराती के हिन्दी कवियो मे अपना विशिष्ट स्थान अवश्य है।

मुक्तानन्द स्वामी (ई० स० १७६१–१८३०)

पूर्वाश्रम में इनका नाम मुकुन्ददास था। ये रामानन्द के मुख्य शिष्य थे। गुरु के आदेश का आदर करके आयु में छोटे ऐसे स्वामी सहजानन्द को गुरु मानकर अपनी भक्ति इनको समर्पित की थी। सहजानन्द स्वामी से प्रेरित होकर बड़ी उम्र में अध्ययन करके इन्होंने बहुत विद्वत्ता प्राप्त की थी। मृत्यु के

---

१ गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो (द्वितीय संस्करण)—कृष्णलाल झवेरी, पृ० १६६।

२ गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २००।

३ प्राचीन काव्यमाला, भाग ५, प्र० प्राच्य विद्या मन्दिर, बड़ोदा, पृ० १५१ से १५५।

एक दिन पहले भी यह लिखते रहे थे। इन्होने 'मुकुन्दबावनी', 'उद्धवगीता' एवं 'सती गीता' नामक गुजराती ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इनके अतिरिक्त भी इन्होने 'धर्मामृत', 'प्रेमलीला', रामलीला एवं कई हजार स्फुट पदों की रचना गुजराती में की है। 'विवेक चिन्तामणि' और 'सत्संग शिरोमणि' उनकी हिन्दी रचनाएँ हैं।[1] इनके पद संगीतात्मक होते हैं। कृष्णभक्ति के पदो के अतिरिक्त कवि ने ज्ञान-वैराग्य विषयक साखियो की भी रचना की है।

निष्कुलानन्द (ई० स० १७६६—१८४८)

निष्कुलानन्द कच्छ निवासी विश्वकर्मा ब्राह्मण थे। इन्होने २० पदों एवं तीन हजार पदों की रचना की है।[2] पदो का मुख्य विषय वैराग्य है।[3] इनकी भाषा सरल एवं प्रभावोत्पादक है। गुजराती के अतिरिक्त इन्होने हिन्दी मे भी स्फुट पद लिखे हैं।

सहजानन्द स्वामी (ई० स० १७८१—१८३०)

सहजानन्द स्वामी ने स्वामी नारायण सम्प्रदाय की स्थापना की थी। इन्होने स्वयं हिन्दी मे बहुत कम लिखा है। पर ये अपने अनुयायियो को गुजराती के साथ-साथ हिन्दी मे भी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे।

इनका जन्म ई० स० १७८१ में बिहार राज्य के चम्पारण के निकट छपैया गाँव मे हुआ था। बाल्यकाल में इनका नाम घनश्याम था। केवल १२ वर्ष की उम्र में ये घर छोड़कर निकल पड़े थे। कई पुनीत धामो की यात्रा करते हुए अन्त मे ये सन् १८०० मे रामानन्द स्वामी के पास सौराष्ट्र मे आये। स्वामी रामानन्द ने ई० स० १८०१ मे इनको दीक्षित किया और उनका नाम सहजानन्द रखा गया।

इन्होंने गुजराती के निम्न श्रेणी के जाति के लोगों को प्रेम से अपना कर दीक्षा दी। इनका कार्यक्षेत्र गुजरात होने से हिन्दी-भाषी होते हुए भी अधिकतर इन्होने गुजराती में ही लिखा है। इनके ग्रन्थ शिक्षापत्री, वचनामृत और 'वेदरहस्य' तथा साम्प्रदायिक निर्देश भी इसी भाषा मे है। इनकी भाषा मे हिन्दी और गुजराती का मिश्रण है। इनके कुछ उपदेश हिन्दी मे भी मिलते हैं। सहजानन्द स्वामी द्वारा कथित सम्प्रदाय के ११ मुख्य नियम इनकी भाषा शैली के परिचय के लिए द्रष्टव्य हैं :

---

[1] गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ४७।

[2] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २०६।

[3] वही, पृ० २०७।

हिंसा न करनी जन्तु की, परत्रिया संग को त्याग ।
मांस न खावत मद्य को पीवत नही वड़ भाग ॥
विधवा को स्पर्शत नहीं, करत न आत्मघात ।
चोरी न करनी काहु की, कलंक कोऊ को लगात ॥
निन्दत नही कोऊ देव के, बिन खपतो नहीं खात ।
विमुख जीवके वदन से, क्या सुनी नहीं जात ॥[1]

ब्रह्मानन्द (ई० स० १७७२–१८४६)

सद्गुरु स्वामी श्री ब्रह्मानन्द पूर्वाश्रम में चारण थे ऐसा कवि चरित्र मे लिखा हुआ है, परन्तु इनकी अवटंक बारोट होने से वे वारहट्ट (भाट) जाति के हों यह विशेष सम्भावित है । इनके पिता जी शम्भुदान गढवी डुङ्गरपुर प्रगणे के खाणगाम गाँव में रहते थे । शम्भुदान भोले, निष्कपटी, धार्मिक एवं श्रद्धालु थे । इनकी पत्नी लालबादेवी भी वैसी ही शुद्ध, सदाचारी, पतिपरायण साध्वी थीं ।

ब्रह्मानन्द का जन्म ई० स० १७७२ में हुआ था । पूर्वाश्रम में इनका नाम लाडु बारोट था ।[2] पुत्र के लक्षण पालने में से ही देखे जाते हैं—कहावत के अनुसार बाल्यकाल से ही इन्होंने खिलौने का त्याग किया और भगवद् भक्ति की ओर अपने हृदय का प्रवाह बहाया । इन्होने कच्छ में पिंगल का अध्ययन किया था । तदनन्तर भुज की व्रज की पाठशाला में आठ साल तक अध्ययन किया । इसके पश्चात् जोधपुर, जयपुर, बीकानेर इत्यादि रियासतों तथा जूनागढ़, जामनगर इत्यादि सौराष्ट्र की रियासतों के स्वागत एवं पारितोषिक प्राप्त किए । भुज के राजा ने भी इनका हार्दिक स्वागत किया था ।

इसी समय श्री स्वामी नारायण सहजानन्द से इनकी प्रथम भेंट हुई । यह प्रथम मिलन सम्वत् १८६० के लगभग हुआ था । स० १८६१ में श्री स्वामी नारायणजी ने इन्हे भागवती दीक्षा देकर श्रीरंगदास नाम दिया । अपने सन्तों को अकारण ही कष्ट होता देखकर सहजानन्द स्वामी ने शिखासूत्र के त्याग करने का आदेश दिया । 'दास' अन्त नाम वाले अपने भागवती दीक्षाधारी साधुओं को परमहंस की दीक्षा दी, जटा कौपीनादि का त्याग कराया और नाम बदलकर 'नन्द' अन्त में आये ऐसे नाम दिये । इसी समय पर श्री रंगदास नाम बदलकर ब्रह्मानन्द नाम रखा गया । सहजानन्द स्वामी और स्वामी नारायण

---

[1] चौथी गुजराती साहित्य परिषद की रिपोर्ट, पृ० ९६ ।

[2] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २०७ ।

भगवान की कृपा एव अभूतपूर्व सहायता से एव अपने पुरुषार्थ से कई जगह इन्होंने मन्दिर बनवाये। ई० स० १८४६ मे इनकी मृत्यु हो गई।

इन्होने निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे हैं—

'सम्प्रदाय प्रदीप', 'सुमति प्रकाश', 'नीति प्रकाश', 'चाद्रायण प्रारम्भ', 'धर्मवश प्रकाश', 'विवेक चिन्तामणि', 'उपदेश चिन्तामणि', 'शिक्षापत्री', 'ब्रह्मविलास', एव पद, गरबी, सुयोग कीर्तन तथा फुगणा, रेणकी इत्यादि छन्द जिनकी सख्या ८००० के लगभग हैं। इन ग्रन्थो मे से 'सम्प्रदाय प्रदीप', 'सुमति प्रकाश', 'उपदेश चिन्तामणि' और 'ब्रह्मविलास' हिन्दी मे हैं।

सम्प्रदाय प्रदीप—यह ग्रन्थ हिन्दी भाषा मे पद्य मे लिखा गया है। श्रीमद् उद्धव स्वामी श्री रामानुज का एव इनके गुरु का वृत्तात और गुरु परम्परा इसमे दिए गये हैं। यह ग्रन्थ सम्वत् १८७५ या इससे पहले लिखा गया है। साम्प्रदायिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का महत्व है, पर साहित्यिक दृष्टि से यह सामान्य कोटि का ग्रन्थ है।

सुमति प्रकाश—यह ग्रन्थ भी हिन्दी भाषा मे पद्य मे लिखा गया है। फिर भी इसमे स्वामीजी की चारणी भाषा का प्रयोग अधिक मिलता है। आधी गुजराती एव आधी हिन्दी पर मधुर एव सुनने मे आनन्द देने वाली भाषा के इस ग्रन्थ मे २० विश्राम या अध्याय हैं। इसमे पच वर्तमान के धर्म एव गृहस्थ स्त्री तथा पुरुष के धर्म, प्रायश्चित इत्यादि विषयो पर लिखा गया है। यह ग्रन्थ सम्वत् १८७८ के महा सुदी ५ को बुधवार के दिन सम्पूर्ण हुआ था। अन्तिम दुहे से इस बात की प्रतीति होती है—

> सम्वत् अष्टादश सही, वर्ष अठोतर जाण।
> माह सुद पचमी वार बुद्ध, पूरण ग्रन्थ प्रमाण॥
> श्रीनगर शुभ शेहर मे, नर नारायण पास।
> तहाँ रही ब्रह्मानन्द कवि, किना सुमति प्रकाश॥

इस ग्रन्थ के प्रथम विश्राम मे श्री बद्रिकाश्रम की शोभा एव हिमालय की सुन्दरता का वर्णन तोटक छन्द में दिया गया है। द्वितीय विश्राम से पचम विश्राम तक भक्तिधर्म, उद्धव आदि मुनिगणो के जन्म के कारण एव इनके तथा श्रीहरि के अवतार का वर्णन है। श्रीहरि ने गृहत्याग किया एव वन मे विचरण किया और घूमते घूमते भोजग्राम मे आकर श्री मुक्तानन्द स्वामी को मिले इस वृत्तात का वर्णन है। छठे में श्रीहरि (सहजानन्द स्वामी) के स्वरूप का वर्णन पद्धरी छन्द मे किया है। इस विश्राम की भाषा अत्यन्त मनोहर है। सप्तम से द्वादश विश्राम तक निर्लोभ, निर्मान, नि स्पृह, निष्काम एव नि.स्वाद—

इन पंच वर्तमानों का तथा प्रायश्चित के स्वरूप का वर्णन किया गया है। स्वामीजी मनुष्य की विषय प्राप्ति के रागों के लिए कहते हैं—

जेहि रीत कूप तृण हरित छात, मृग पशु मूढ़ तेही चहत खात।
सोइ घास वदन निज लहत नाहि, मर प्राण गये पर कुपमाहि॥
तेही रीत जीव सुख विषे लाग, नर देह खोत अति मन्द भाग।
नहि विषे भोग नहि मिलत श्याम, भव कुप परत होय जम गुलाम॥

हिंसा, चोरी, काम, मद्यपान इत्यादि अनर्थ बताते हुए स्वामीजी कहते हैं—

हिंसा अरु चोरी अनृत काम, अविश्वास दम्भ पद गरब ठाम।
परत्रिय अरु धूतहि मद्यपान, असुया अरु व्यसनहि क्रोध आन॥

दसम विश्राम मे रसनेन्द्रिय को जीतने का वर्णन है। एकादश विश्राम में स्वामीजी ने आत्मज्ञान के बारे में लिखा है। बारहवें मे निर्मानत्व के विषय में तथा तेरहवें मे स्त्रियों के धर्मों का वर्णन किया गया है। चतुर्दश विश्राम मे गृहस्थ धर्म का निरूपण किया गया है तथा पन्द्रहवें में श्री अक्षरधाम का वर्णन है। सोलहवें तथा सत्रहवें सर्ग मे नरककुण्ड एवं नरकयातना का निरूपण किया गया है। अठारहवें तथा उन्नीसवें विश्राम में प्रकट भगवान श्रीहरि सहजानन्द का वर्णन है। बीसवें विश्राम मे बद्रिकाश्रम माहात्म्य और केदारनाथ, नारसिंही शिला, बराही शिला आदि के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। सम्प्रदाय की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण होते हुए भी साहित्यिक दृष्टि से सामान्य कोटि का ही है। ब्रह्मानन्द का हिन्दी पर प्रभुत्व इस ग्रन्थ में देख सकते हैं।

ब्रह्म विलास—इस ग्रन्थ की रचना सन् १८२७ (सम्वत् १८८७) में हुई थी। इसमे कवि ने सवैया, मनहर, कुंडलियाँ, छप्पय इत्यादि छन्दों का प्रयोग किया है। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित २३ विषयों पर चर्चा की गई है:

१. श्री गुरुदेव को अंग
२. श्री उपदेश को अंग
३. श्री काल को अंग
४ श्री देह आत्मा विछोह को अंग
५. तृष्ण को अंग
६. अधैर्य्य को अंग
७. विश्वास को अंग
८. देहमलीन त्याग प्रकार को अंग
९. नारी निंदा को अंग
१०. दुष्ट को अंग
११. मन को अंग
१२. चानक को अंग
१३. विपरीत ज्ञानी को अंग
१४. वचन विवेक को अंग
१५. श्री उपासना को अंग
१६. पतिव्रता को अंग

१७	श्री विरहिनी को अग	२१	श्री उपदेश को अंग
१८.	श्री सुरमा को अग	२२.	श्री साधु को अग
१६	श्री साधु को अंग	२३.	श्री सत को अग
२०.	श्री साक्ष्य को अग		

श्री गुरुदेव को अग मे गुरु की महत्ता को बताते हुए कवि कहते हैं—

अहता अनग के प्रसग सब किये नाश,
दैतन के रग निज संगिन सुधार है।
कहत हैं ब्रह्मानन्द माय मन बानी करि,
ऐसे गुरुराज सो हमारे किरतार है ॥[1]

नारी निन्दा को अग में इन्होने नारी की बहुत ही भर्त्सना की है। वे नारी को विष का बीज, नर्क का द्वार और साक्षात् राक्षसी बताते हैं—

बीज प्रथम बोयो विष को अरु, सो विष भोमि लीयो तेहि झेली।
डार रु मूर अकूर सबे विष, पत्र सुधा विष तें जु भरेली ॥
भूर रहे विष मे फल फूलहि, विष तरु पर छाय के फैली।
ब्रह्ममुनि कहे कौक बच्यो नर, या विनता जगमे विष बेली ॥[2]

× × × ×

नारी से जमपुरि निकट, सबे निकट तन साज।
कुबुद्धि निपट अन्तर कुटिल, नखशिख कपट न लाज ॥
नखशिख कपट न लाज, झपट ले जात नरन कु।
हिम्मत बल हर लेत, देत सताप जरन कु ॥
दाखत ब्रह्मानन्द, बिबुध जन जुओ बिचारी।
सबे विकट तन साज, निकट जम पुरिसें नारी ॥[3]

× × × ×

दुष्ट अग मे दुष्टो की निन्दा की गई है। इस तरह प्रत्येक अग मे हम ब्रह्मानन्द की विशेषताएं देख सकते हैं। नि सदेह ब्रह्मविलास भाषा, विषय तथा शैली की दृष्टि से उत्तम ग्रन्थ है।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त ब्रह्मानन्द ने ब्रजभाषा म कई मुक्तक छन्दो और पदो की भी रचना की है। इनके पदो मे नरसिंह, मीरा एव सूरदास के पदो

---

[1] ब्रह्मानन्द काव्य मे ब्रह्मविलास—ब्रह्मानन्द, पृ० ७०७।
[2] वही, पृ० ७२६।
[3] वही, पृ० ७२७, ७२८।

जैसी मधुरता है। इन्होंने छन्दों में मोती दाम, भुजंगी, नाराच, कुंडलिया, छप्पय, झुलना, सवैया, चर्चेरी, अमृत ध्वनि, रेणकी इत्यादि का अधिक प्रयोग किया है। ब्रह्मानन्द ने हिन्दी साहित्य को विशिष्ट एवं उत्तम काव्य ग्रन्थ प्रदान किये हैं।

प्रेमानन्द स्वामी (प्रेम सखी) (ई० स० १७७९-१८४५)

ये सौराष्ट्र में स्वामी नारायण सम्प्रदाय के परम पुनीत धाम गढ़डा में रहते थे। इनको संगीत का बहुत अच्छा ज्ञान था और ये गाने-बजाने में भी निपुण थे। इन्होंने अपने को 'गोपी' और 'कृष्ण का रसिया' कहकर कृष्णलीला गाई है। अतः इन्हें 'प्रेमानन्द सखी' भी कहते हैं।[१] ये स्वामी नारायण सम्प्रदाय के संस्थापक सहजानन्द के साथ रहते थे। अपनी 'वियोग की गरबी' जब ये गाते तब श्रोतागण रोने लगते।

इनकी कविता में कृष्ण तथा सहजानन्द स्वामी के पद मुख्य हैं। प्रेमानन्द स्वामी के शृङ्गार, वैराग्य एवं भक्ति के पदों को देखकर हमें प्रतीत होता है कि ये भी नरसिंह एवं दयाराम की तरह उच्च श्रेणी के कवि हैं। इनकी भाषा शुद्ध और सरल है। इन्होंने गुजराती, हिन्दी एव राजस्थानी मे भी पद लिखे हैं। इन्होंने हिन्दी में लगभग ७००० पदों की रचना की है।[२] 'हो रसिया में तो शरण तिहारी', 'मैं तो बिरद भरोसे बहुनामी' एवं 'बिसर न जाजो मेरे मीत' इतने सुन्दर पद हैं कि गांधीजी की आश्रमभजनावलि में भी इनको स्थान मिला है।[3]

प्रेमानन्द स्वामी भक्ति साहित्य की दृष्टि से स्वामी नारायण पन्थ में महान् कवि हैं। इतना ही नहीं बल्किनरसिंह मेहता के बाद के मध्यकालीन साहित्य में यदि किसी के काव्यों में शुद्ध भक्ति का प्रकाश दिखाई देता है तो इस प्रेमानन्द में ही।[4]

गंजन

ये गुजराती गौड़ ब्राह्मण मुरलीधर के पुत्र थे। इनके पूर्वज गुजरात से

---

१ गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो (द्वितीय संस्करण)—कृष्णलाल झवेरी, पृ० १९९।

२ गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ४८।

३ गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २०९।

४ मध्यकालनो साहित्यप्रवाह—कन्हैयालाल मुंशी, पृ० ३८७।

काशी जा बसे थे। ये मुहम्मदशाह बादशाह के प्रधान मन्त्री एतमादुद्दौला कमरुद्दीनखाँ के आश्रित थे, जिससे इन्हें बहुत धन मिला।[१]

इन्होंने सम्वत् १७८६ में कमरुद्दीनखाँ हुलास नामक ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ के चतुर्थांश में एतमादुद्दौला वजीर कमरुद्दीनखाँ का यश वर्णित है और शेष में भाव भेद एवं रस भेद कहा गया है। गजन ने षड्ऋतुओं का रूपकमय अच्छा वर्णन किया है और इनके किये गये वैभव के वर्णन से बात की पुष्टि होती है कि यह कवि अमीर आदमियों में रहा है। इसकी भाषा मधुर है। अन्य सुकवियों की भाँति उसमें मिलित वर्ण बहुत कम लाए गए हैं। इनको अनुप्रास इष्ट न था, परन्तु इनकी कविता में जहाँ-तहाँ अनुप्रास का कुछ कुछ प्रयोग हो भी गया है। इस कविता में उत्कृष्ट छन्द बहुत देख पड़ते हैं। इनका हम पद्माकर के समकक्ष में रखेंगे। उदाहरणार्थ, इनके कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं .

मीना के महल जरबाफ दर परदा हैं
हलबी फनूसन में रोशनी चिराग की,
गुलगुली गिलम गरक आब पग होत,
जहाँ बिछी मसनद लालन के दाग की।
केती महताब मुखी खचित जवाहिरन,
गजन सुकवि कहै बोरी अनुराग की;
एतमाद्दौला कमरुद्दीखा की मजलिस,
सिसिर में ग्रीपम बनाई बड भाग की ॥१॥
ऐल परी अलका में खलभल खलका में,
ऐतो बल कामैं जे रहत निज थान है।
गजन सुकवि कहै माल मुलकनि तजि,
रज रजपूती तजि ,तजत गुमान हैं।
रानी तजि पानी तजि कर किरवानी तजि,
अति विहबल मन आनत न आन है,
ह्ये करि किसान भूप भाजत दिसान जब,
कमरुद्दीखान जू के बाजत निसान हैं ॥२॥
काजर-से कारे औ दतारे भारे मतवारे,
ऊँचे अति बिंध हू ते सोहत सुकद हैं।

---

[१] खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास (दूसरा सस्करण)—ब्रजरत्नदास, पृ० १४७।

नबल नवाब मनि कमरुद्दीखान सुनि,
आपने बलन करैं ऐरावत रद हैं।
गंजन सुकवि कहै चलत डुलत मही,
सुंडन सों अलका की करत गरद हैं।
जाके मद-जल ही सो नदी नद उमड़त,
भादौं के जलद सम रावरे दुरद हैं।[१]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अभिमतानुसार 'कमरुद्दीनखां हुलास' शृंगार रस का ग्रन्थ है जिसमें कवि ने भावभेद, रसभेद के साथ षट्‌ऋतु का विस्तृत वर्णन किया है।''''''''''इस पुस्तक मे सच्ची भावुकता और प्रकृतिरंजन की शक्ति बहुत अल्प है। भाषा भी शिष्ट और प्रांजल नही।[२]

दयाराम (ई० स० १७७७-१८५२)

ये चाणोद के निवासी थे। ये साठोदरा नागर थे। इनके पिता का नाम प्रभुराम भट्ट था। दस वर्ष की उम्र में इनकी माता की मृत्यु हो गई थी। अतः तदनन्तर ये डभोई चले आये और यात्राओं के समय के अतिरिक्त ये डभोई मे ही रहे थे। यौवन के उन्माद में माता-पिता की अनुपस्थिति मे इन्होने किसी सुनारिन का मटका फोड़ डाला था और बाद में ये इसके पति के क्रोध से बचने के लिए चांणोद चले गये थे ऐसा कहा जाता है। पर इसके साथ ही भक्तिरस में तल्लीन माता-पिता के संस्कारो का लाभ तथा वैष्णव कुल के संस्कारों का लाभ युवा दयाराम को मिला था। अतः बाल्यकाल से ही भजन की ओर ये आकर्षित हुए और धीरे-धीरे पद रचना करने लगे। इच्छाराम नामक महात्मा के सत्संग से इनकी भक्ति एवं काव्य शक्ति को बहुत ही उत्तेजन मिला। निर्धनता के कारण उन्हें आजीवन अपरिणीत रहना पड़ा था। ब्याह करने की उनकी विशेष इच्छा नही थी। फिर भी उनका जीवन पर्याप्त रूप से रसिक रहा।

बीस वर्ष से चालीस वर्ष तक का समय उन्होने प्रवास में ही बिताया। बदरिकाश्रम, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर एवं द्वारिका—इन चारो धाम की यात्रा उन्होने तीन-तीन बार की थी। उन्होने श्रीनाथ द्वारा की यात्रा सात बार की थी और चार बार यमुना पान किया था। काशी से पतितपावनी गगा का

[१] मिश्रबन्धु-विनोद (दूसरा भाग) (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० ६०५-६०६।

[२] हिन्दी साहित्य का इतिहास (ग्यारहवां संस्करण)—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २५४।

जल ले जाकर उन्होंने रामेश्वर महादेव को चढ़ाया था। प्रवास मे उन्हे कई तरह के कष्ट पड़ने पर देशाटन के इस अनुभव एवं भारत की प्रकृति श्री ने उनके काव्यो को अनुपम शक्ति व प्रभाव दिया। उन्होने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। उन्होंने गुजराती में ४८ और ब्रज भाषा में ४१ ग्रन्थ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त इन्होने गुजराती में सात हजार, ब्रज मे बारह हजार, मराठी मे दो सौ, पंजाबी में चालीस, संस्कृत मे पन्द्रह एवं उर्दू में पचहत्तर पद लिखे हैं।[1] उनके गुजराती ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :

'गीता माहात्म्य', 'रसिक वल्लभ', 'अजामिल आख्यान', 'वत्रासुर आख्यान', 'प्रेम रसगीता', 'प्रबोध बावनी', 'काल ज्ञान सार', 'प्रश्नोत्तर मालिका', 'श्रीकृष्णनाम', 'माहात्म्य मजरी', 'श्रीकृष्णनाम माहात्म्य माधुरी', 'श्रीकृष्ण स्तवन चन्द्रिका', 'श्री हरिभक्त चन्द्रिका', 'श्री हरिभक्तमाला', 'श्री हरिनाम वेली', 'श्री गुरुदेव चन्द्रिका', 'प्रेम प्रशंसा', 'शिक्षा तथा परीक्षा', 'भक्तिपोषण', 'भक्ति दृढ़त्व', 'स्तवन माधुरी', 'सत्यभामा विवाह', 'रुक्मिणी विवाह', 'दशमलीला', 'रास पचाध्यायी', 'भ्रान्ति भंजन', 'अन्यायमर्दन', 'मोह मर्दन', 'ईश्वर निरीक्षण', 'पुष्टिपन्थ रहस्य मणिदाय', 'चिंता चूर्णिका', 'प्रमेय पंचाव तथा स्वातः करण समाधान', 'श्रीकृष्णनामामृतधारा', 'क्षमापराध षोडशी', 'षडऋतु वर्णन', 'बारमास', 'भक्तवेल', 'चोराशी वैष्णवनु धोल', 'ब्राह्मण भक्त विवाद नाटक', 'बाणा धरी अन्तरनिष्ट सम्वाद नाटक', 'मनमति सम्वाद', 'श्री पुरुषोत्तम पचाग', 'श्री यमुना स्तवन', 'श्रीकृष्ण अष्टोत्तर शतनाम चिंतामणि', 'श्रीकृष्णनामावलि', 'विनय बत्रीशी', 'अष्ट पटराणी विवाह', 'ओखाहरण' एवं 'नरसिंह महेतानी हुण्डी'।[2]

दयाराम कृत हिन्दी के ग्रन्थो मे दो चार को छोडकर शेष अब तक प्रकाशित नही हुए है। इनके ग्रन्थों के नाम ये हैं :

'सतसैया', 'रसिकरजन', 'वस्तुवृन्द दीपिका', 'ब्रजविलासामृत', 'पुष्टि भक्त रूपमालिका', 'हरिदास', 'मणिमाला', 'क्लेश कुठार', 'विज्ञप्ति विलास', 'श्रीकृष्णनाम चन्द्रिका', 'पुष्टि पद रहस्य', 'प्रस्ताविका पीयूष', 'स्वल्पापार प्रभाव', 'श्रीकृष्णनाम माहात्म्य मार्तंड', 'श्रीकृष्णस्तवन चन्द्रिका', 'विश्वासामृत', 'वृन्दावन विलास', 'कौतुकरत्नावलि', 'दशम अनुक्रमणिका', 'श्री भागवत अनुक्रमणिका', 'श्री भागवत 'माहात्म्य', 'भक्त चरित्र चन्द्रिका', 'श्री कृष्णनाम

---

[1] गुजराती साहित्यनां मार्गसूचक स्तम्भो (द्वितीय संस्करण)—कृष्णलाल झवेरी, पृ० २५५।

[2] ,, २५५-२५६।

रत्न मालिका', 'श्रीकृष्ण अनन्य 'चन्द्रिका', 'प्रस्ताव चन्द्रिका', 'मंगलानन्द माला', 'चिंतामणि', 'पिंगलसार', 'श्रीकृष्णनामामृत', 'श्रीकृष्ण स्तवनामृत', 'स्तवन पीयूष', 'चतुर चित्र विलास', 'श्री हरिस्वप्न सत्यता', 'अनुभव मंजरी', 'गुरु पूर्वार्ध', 'बहु शिष्य उत्तरार्ध', 'माया मत खंडन', 'भागवद् भक्तोत्कर्षता', 'ईश्वरता प्रतिपादन', 'भगवद् इच्छोत्कर्षता', 'मूर्ख लक्षणावलि', 'श्रीकृष्णनाम माहात्म्य', 'शुद्धाद्वैत प्रतिपादन'।

इन ग्रन्थों मे से अधिक ग्रन्थ वल्लभीय विचारधारा को व्यक्त करते हैं। कई ग्रन्थों में महाप्रभुओ के माहात्म्य का गुणगान है तो कई ग्रन्थों मे सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की चर्चा है। साहित्यिक दृष्टि से ऐसे ग्रन्थ अधिक महत्त्व के नहीं हैं। साहित्यिक दृष्टि से 'सतसैया', 'रसिकरंजन' और 'वस्तुवृन्द दीपिका' उच्चकोटि की रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'क्लेश कुठार', 'वृन्दावन विलास', 'श्री भागवत की अनुक्रमणिका' भी सुन्दर रचनाएँ हैं। दयाराम की प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

सतसैया—इनकी हिन्दी कृतियों में सतसैया सर्वोत्तम है। यह ग्रन्थ सम्वत् १८७२ में लिखा गया था। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना श्रीकृष्ण को रिझाने के लिए की थी, किसी राजा को रिझाने के लिए नही। इस ग्रन्थ में कुल ७३१ दोहे हैं। ग्रन्थ का मुख्य विषय कृष्ण भक्ति और पुष्टि मार्गीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। फिर भी इसका साहित्यिक मूल्य कम नहीं है।

सतसैया में भक्ति और जाति के अतिरिक्त शृङ्गार, प्रेम, काव्य चातुर्य आदि के सुन्दर उदाहरण है। इसमे नायिका-भेद, अलंकार योजना, वैराग्य सब कुछ हैं। यह ग्रन्थ निम्नलिखित १५ प्रकरणो में विभक्त है—(१) मंगलाचरण, (२) भगवद्स्तुति, (३) प्रेम वर्णन, (४) नायिका वर्णन, (५) रूप वर्णन, (६) संगवर्णन, (७) भक्ति प्रकरण, (८) वाद प्रकरण, (९) नाम माहात्म्य प्रकरण, (१०) आश्रय प्रकरण, (११) विवेक शिक्षा प्रकरण, (१२) शिक्षा विवेक प्रकरण, (१३) प्रस्ताव प्रकरण, (१४) काठिन्यार्थ प्रकरण, एवं (१५) काव्य-चातुर्य प्रकरण।

इस कृति के मंगलाचरण में कवि ने वल्लभाचार्य और श्रीकृष्ण की वन्दना की है। तदनन्तर रीतिकालीन महाकवि, बिहारी की ही तरह इन्होने राधानागरि की स्तुति की है। प्रेमवर्णन में कवि ने प्रेम की महिमा का सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत किया है। नायिका वर्णन में कवि ने नायिकाओं का सुन्दर और सूक्ष्म निरूपण किया है। रूप वर्णन में कवि ने राधाकृष्ण के सौंदर्य का वर्णन किया है। अग्रलिखित दोहे में भाव और अलकार का सुयोग द्र · है—

हरि[1] कुं सो मुख नयन हरि, कच कुच कटि कम पाय।
हरि सुवरन गति बेनि छत्र, राधा हरि सुखदाय॥ २५७॥

सगवर्णन मे कवि ने सत्सग के महत्त्व और कुसग के दुष्परिणामो पर लिखा है। भक्ति प्रकरण में दयाराम ने अनेक उदाहरणो और दृष्टान्तो से ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध की है। कवि कहता है कि ज्ञानी बडा बेटा है, समझदार है। भक्त अबोध शिशु है। छोटी सतान पर भगवान का अधिक प्यार और वात्सल्य होना स्वाभाविक ही है।

वाद प्रकरण के अन्तर्गत कवि ने परमात्मा को साकार सिद्ध करने का प्रयास किया है।[2] नाम माहात्म्य मे कवि ने नाम की महिमा पर प्रकाश डाला है। जीवन मे एक बार भी यदि सच्चे हृदय से हरिनाम ले लिया जाय तो सारे पाप नष्ट हो जाते है।[3] आश्रय प्रकरण मे कवि ने पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तो को व्यक्त किया है। विवेक शिक्षण और शिक्षा विवेक प्रकरण मे कवि ने ज्ञान और नीति विषयक सुन्दर दोहे लिखे हैं।

प्रस्ताव प्रकरण मे कवि पुन. अपने आराध्य देव की महिमा से अभिभूत होकर अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करता है। काठिन्यार्ग प्रकरण मे कवि ने जान-बूझ कर क्लिष्ट अर्थ वाले दोहे लिखे हैं। काव्य चातुर्य प्रकरण मे कवि ने कपाटबन्ध, अश्वगति, कमल बधहार इत्यादि चित्रकाव्य दिये हैं।

नि.सन्देह दयाराम की रचनाओ में सतसैया सर्वोत्तम कृति है।

रसिकरंजन—हिन्दी मे लिखा हुआ इनका दूसरा महाग्रन्थ रसिकरजन है। रसिकरजन नि.सशय रसिक पुरुषो का रजन करने वाला ग्रन्थ है। इसमे अनन्यता, भगवदाश्रय, दीनता; कृपा, अत. पर ईश्वरता, भगवदिका, विज्ञप्ति प्रार्थना, स्तुति, हरिनामोत्कर्षता, चिंताहरण, भक्ति प्रेमोत्कर्षता, भक्तोत्कर्षता, शृङ्गार रहस्य, अभिलाखा, उरानो, शिक्षा, मायामतखण्डन नामक सत्रह प्रकरण हैं।

दयाराम की शैली इतनी उत्कृष्ट है कि अपने विषय मे ये काव्य सर्वोत्तम माने जा सकते हैं। कवि को भगवान मे दृढ विश्वास है। अपनी भक्ति के बल से भगवान को भी उलाहना देने के लिए वे समर्थ हैं.

---

[1] इस दोहे मे हरि शब्द के दस भिन्न-भिन्न अर्थ हैं—१. चन्द्रमा, २. हिरन, ३. भ्रमर, ४. पर्वत, ५. सिंह, ६. कमल, ७. स्वर्ण, ८. सर्प, ९. गज, १०. कामदेव।

[2] सतसैया, दोहा न० ३३०।

[3] सतसैया, दोहा न० ३४१।

पतित के पावन हो अधम उद्धारन हो,
हरि बिट्ठल वर्द हेतु नर्क कैसे पाऊँगा।
सुधो कछु होत तो काहे कु मे शरनो लेतो,
अब चहाओ साधन नाथ कहो कहाँ से लाउँगो।
घर को गुलाम क्यों तोहू रहे कर्म भोग,
परमानन्द स्वामि द्वार दास दुःख पाउँगो।
रंक जानी दया कु डुबाओगे जो दयानाथ,
अकेलो नहि डुलु केते—वर्दकु डुबाउंगो ॥ १ ॥

—प्रकरण—२ भगवदाश्रय

तदनंतर कवि अपने मन को उपदेश देते हैं—

रे मन पस्तात काहे कियो तेरो होत कहा,
तुं करता वेसो जेसो शकट खेंचे श्वान है॥
दारुदार यंत्र तोता कवि बाल पराधीन,
त्यों हि सब जरत हरिहाथ श्रुति गान है॥
जाकुं जब जेसो करे सो ता क्षणु तेसी होय,
त्ति कृष्णपानि जानि ना को ना अजान है॥
कछु कह्यो जात नाहि चाहे सो हि करे दया,
तु रहे निश्चिन्त शिश समर्थ भगवान है॥ ४॥

—प्रकरण—२, भगवदाश्रय

दृढ भगवदाश्रय का कितना सामर्थ्य है। कवि जैसे दृढ़ निश्चयी भक्त बहुत कम ही होंगे। प्रभु सर्व-शक्तिमान, सर्व कर्त्ता, सर्वेश्वर, सर्व नियन्ता है। प्रभु की इच्छा के बिना कुछ नहीं होता। सुख-दुख भगवान के अधीन है। सुख-दुख यदि मनुष्य के ही वश मे होते तो जगत में कोई भी दुखी न होता। कवि दयाराम कहते हैं—

तेरो कीयो होत तो तू अपनो क्यों ब्रूरो करे।
बुरो होय बीना चले चित तों न चाहिये॥

पर यह सब प्रभु की इच्छा के अनुसार ही होता है। भगवदिच्छा तो अकलित ही है। इसलिए भगवान की इच्छा के अनुसार ही होगा ऐसा जानकर सन्तोप से रहने का उपदेश दयाराम बार-बार करता है। यह संसार बाजीगर के खेल जैसा है और बाजीगर की बाजी यह भगवान की इच्छा है। पासे जैसे गिरते हैं वैसा ही फल मिलता है—

साधारन अरु सुधर को हरि कर हे सब हित,
ज्यो चोपट के खेल में, पासा के कर जीत।
पासा के कर जीत कृष्ण इच्छा सो हि पास॥ २१॥
—प्रकरण ६, भगवदिच्छा

यह दयाराम का सिद्धान्त है। इस ग्रन्थ मे अनेक दृष्टान्त देकर कवि ने यह बात दृढ़ता से सिद्ध की है।

अनेक रीति से कवि ईश्वर का अनुग्रह चाहता है। इनके ऐसे वर्णन रसशास्त्र की दृष्टि से उत्तम हैं:

जो मुख सो बासुरी बजाइ रास मण्डल मे,
जो मुख अधरामृत सर्वस्व गोपी केरो है।
जो मुख सो गुह्य बात करो राधा प्यारो सग,
जो मुख रसपान रसिक जनके घनेरो है।
जो मुख मे विश्व रूप माता कु दिखायो नाथ,
जो मुख वरदान दीनो सतत आप चेरो है,
सो मुखारविन्द सों श्री कृष्णचन्द्र एक बेर,
करुना करी कहिये प्रभो दास दयो मेरो है॥ ४॥
—प्रकरण ७, विज्ञप्ति प्रार्थना

भगवत्कृपा याचने में कवि हाथी का उदाहरण देता है। जिस तरह हाथी के मुँह मे से खाते-खाते थोडा-बहुत जो नीचे गिरता है इसी से चींटाओं का परिवार जीवित रहता है और हाथी को भी कुछ कम नही पडता। इसी तरह कवि भगवान से प्रार्थना करते हैं कि—

करो तुझ गिरे कन्न चेंटी परिवार जीवे,
रच स्हां में देखो मेरी सबी पीडा जावेगी,
मो पे कृपादृष्टि किये कहा खोट आवेगो॥ १२॥
—प्रकरण ७, विज्ञप्ति प्रार्थना

राधाकृष्ण के अतिरिक्त कवि की दृष्टि मे और कुछ है ही नही। निम्न-लिखित पक्तियो में राधा के रूप-लावण्य का वर्णन द्रष्टव्य है—

कटी की कसर सो सो आइ उरोज भानु,
उदर की पीनता नितब जाय वसी है,
चरन की चचलता नेन मे निकेत कीनो,
बेनन की फूता सो लाज ही मे ससी है,

हास्य की मोहनता सों जाय भीलो मान मानु,
बाल केली आतुरता लालकेली करी है;
जोबन के आये राधे बस्त अस्त व्यस्त भइ,
तु हूं दया प्रभु नेन ही ते हीये वसी है ॥ १ ॥

—प्रकरण १३, शृङ्गाररस

भगवान की कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं शक्ति का भी सर्वाङ्ग सुन्दर वर्णन कवि ने दिया है—

उदधि अवास करे, ये न जहाँ अम्भ मरे,
तृण को कुलीश, व्रज तृण को बनाय दे,
रज को बनावे शैल, गिरि चाहे रेणू करे,
वन्हि मे दिखावे शीत, हीम आग लाय दे;
करतुं अकर्तुं है, समर्थ अन्यथा कर्तुं,
अनहोनी होनी, होनी होय सो बहाय दे;
ऐसे हैं श्रीकृष्ण दया, आसरो अखंड राख,
नित्य नमस्कार दान चित युग्म पाय दे ॥१॥

—प्रकरण ५, अतः पर ईश्वरता

कवि चाहते हैं कि सब बाधक विषय साधक हो जायँ—

मदन मदन गोपाल, मन्यु, मन्यु पर जागे,
लोभ भजन पर, मोह विश्वमोहन पर लागे;
गर्व भृत्य मात्सर्य छहुं पर आलस दुष्कृति,
द्वेष रही दुःसंग, विषय रहुँ क्लेश क्लेश अति;
भय अन्याश्र यरु असमर्पित, बियोग संसृति मति अघम,
सब बाधक साधक बनी, दयो कहे गुरु करुना, करिय मम ॥३॥

—प्रकरण ७, विज्ञप्ति प्रार्थना

इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में निम्नलिखित षटपदों मे कवि ने ११ भाषाओं का प्रयोग किया है—

गिरिधर मुंज्यो[1] प्राण,[2] तु ही सामलडा प्यारा,
मादर पिदर बिरादर,[3] दुशमन खलक बिसारो,[4]
माटा मंची विनीपू[5] स्वामी इकटहारा,[6]
जानी जियकी पीर,[7] मनोरथ पूर्या मारा,[8]

[1] कच्छी, [2] पंजाबी, [3] फारसी, [4] उर्दू, [5] तेलुगु, [6] तामिल, [7] हिन्दी, [8] गुजराती ।

हरि न को गोणा चा प्रेम[1], वैं त्वमेव स्वामि निरन्तर[2],
नन्द मेहेर के पुतवा दया प्रभु, थांकी दासी माके काइ[3] डर।

इस काव्य के सम्बन्ध मे, इसके छन्दो के सम्बन्ध में एव अपने सम्बन्ध में दयाराम काव्य के अन्त मे कहते हैं—

ग्रन्थ रसिक रजन, भवभय भ्रम अघ दुख भजन,
भक्ति पक्ष पोपक श्रुतिमत सज्जन मन भजन,
प्रकरन दस अरु सात, छन्दयो अति अभिरामा,
कवित्त छपैं मत्तगयन्द कुडलिया या नामा,
पुरि चडि नर्मदा तट जहाँ, श्री शेपशाई धाम है,
शुभ शान्ति विप्र साठोदरो दयाराम कवि नाम है ॥

दोहा

इकसत इक तिसु कवित्त है, कुडलिए चालीस।
मत्तगयन्द वहुतेर है, अरु छपै छत्तीस ॥

इस तरह हमे प्रतीत होता है कि रसिक रजन की गणना दयाराम की श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओ मे की जा सकती है। भक्तिपरक होते हुए भी यह रचना रस, पिंगल, और अलकार योजना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

क्लेश कुठार—दयाराम ने इस ग्रन्थ को मानसिक क्लेश दूर करने के लिए लिखा है। यह ग्रन्थ १५५ दोहो और लगभग २५ छप्पय, मत्तगयन्द, कुडलिया आदि छन्दो मे लिखा गया है।

वस्तुवृन्द दीपिका—इस ग्रन्थ मे कवि ने १ से लेकर १०८ तक प्रत्येक अक से सम्बन्धित वस्तुओ के नाम ऐसी सुन्दरता के साथ गिनाए हैं कि प्रत्येक का सम्बन्ध श्रीकृष्ण से स्थापित हो गया है। साहित्यिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का अधिक मूल्य नही है। ज्ञान कोष के रूप मे यह ग्रन्थ नि सदेह उच्च-कोटि का माना जा सकता है।

श्री अकल चरित्र चन्द्रिका—इस ग्रन्थ मे भगवान के अकलित चरित्रो का वर्णन अत्यन्त सुन्दर शैली में किया गया है।[5] भगवान की महिमा अत्यन्त गहन एव गूढ़ है। उनका स्वरूप समझ म नही आता कि वे शान्त हैं या क्रोधी,

---

[1] मराठी, [2] सस्कृत, [3] पूर्वी, [4] मारवाडी।

[5] दयाराम काव्यसुधा में कवि श्री दयाराम—स० प्राणशकर वैजनाथ व्यास, पृष्ठ २६।

धीर हैं या अधीर, न्यायी हैं या अन्यायी। इसका कारण यही है कि इनके चरित्रों में अन्योन्य से विरोध है। अतः भगवद्लीला अगम्य है। कवि स्वयं कहते हैं कि—

विरुद्ध धर्माश्रय चरित्र, श्रीकृष्णचन्द्र के कहीये,
कछुहु न कहत वने ईश्वर को वेर-वेर शिर नँये ॥

एक और उदाहरण देखिए—

काल-काल महादेव अजित हरि तुम जीते छिनमांही।
काल यवन तें भजे धीराधार कहत बनत कछु वाहो ॥
ब्रह्मचारी क्यों कहे गोपिका कान्त खरे गोपाल।
कामी होउ तो कालिन्दी क्यों माग देत ब्रजवाल ॥
किंकरी कुबजा कान्त करी हरी निर्दय हम क्यों कहिये।
ब्रजवासी तरमाये दयालु, कहत हु शंका पैये।

× × × ×

जननी सहोदर आदि हते तहु भृगुपति दोप न भीने।
राम पुरन संग्राम हत्यो रिपु, रावन हयमख कीने ॥
किंचित काल दोप तें दितिसुत असुर अखिल जग त्रासा।
ठिंमर कन्या भोगी पराशर मछगन्धा सुत व्यास।

इस तरह पुराणों से उदाहरण देकर प्रभु के अगम्य चरित्र का वर्णन कवि ने किया है। इन तेजस्वी एवं प्रभावोत्पादक चरित्रों में कई प्राकृतिक वस्तुओं के भी सुन्दर उदाहरण कवि ने दिये हैं—

तेजस्वी दीपक तें कज्जल श्याम प्रकट प्रभु कीनो।
नाय नाग शिर मनि उपजायो रूप-रश्मि रस भीनो ॥२५॥

तेजस्वी दिये मे से काला काजल बनाया और काले विषधर नाग के मस्तक पर प्रकाशित मणि बनाया। यह कितना आश्चर्य! एक और उदाहरण—

लोहं उगायो कनक जरायो गिरि तारे ज्यो तरनि।
धर्म अधर्म अधर्म धर्म तुम करो अकरनी करनी ॥४७॥

यादवास्थली के समय पर लोहा उगाया, लंका जलाई तब सोना भी जला दिया और जब सेतु बांधा तब बड़े-बड़े पत्थरो को नाव की तरह तैराया था। धर्म को अधर्म, अधर्म को धर्म और असम्भावित वस्तु को सम्भावित करने के लिए भी प्रभु समर्थ है। परमात्मा की लीला अनिर्वचनीय है। कोई इसको समझ नही सकता। अतः दीन भाव से कवि अन्त में कहता है कि—

जैसे हो तैसे तुम मम प्रभु कृष्ण करूँ प्रणामा।
जैसो हूँ तैसो मोही पालो महाप्रभु सुन्दर श्यामा॥६१॥

कृष्ण मर्तु मकर्तु मन्यथा कर्तुं समर्थ है। इनकी इच्छा के विरुद्ध भगवान शकर या ब्रह्मा भी कुछ नही कर सकते—

कृष्ण तुमारे करलो हैं सो, रोकी शके नही कोइ।
नही मरजी सो हर ब्रह्मा सो कबु क्योहु नही होई॥

इस तरह सारा ग्रन्थ भगवान के चरित्रो से पूर्ण है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह उत्तम कोटि का ग्रन्थ है।

गेय पद—इन कृतियो के अतिरिक्त दयाराम ने ब्रज, मारवाडी, उर्दू, पजाबी आदि भाषाओ मे अनेक सगीतात्मक पदो की रचना की है। दयाराम की रचनाओ पर रीतिकाल का पर्याप्त प्रभाव है। भक्त होने के साथ-साथ ये रसिक और भावुक भी थे। रीति काल के साहित्य के अनुकरण का यह भी कारण हो सकता है कि वे गुजराती लोगो को ब्रज-भाषा साहित्य की विशेषताओ से परिचित कराना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने विविध प्रकार की काव्य-पद्धतिया का और भाषा शैलियो का अनुसरण किया है।

इनकी जो हिन्दी रचनाएँ गुजराती लिपि मे प्रकाशित हुई हैं उनमे भाषा की अनेक भूलें दिखाई देती हैं, जैसे कि तू के लिए तु और मैं के लिए में का प्रयोग किया गया है। हैं और है के लिए हमेशा हे और हें का प्रयोग हुआ है। अनेक प्रचलित शब्दो के रूप स्थिर नही हैं। ह्रस्व-दीर्घ और मात्राओ की भूलें कई जगह पाई जाती हैं। किन्तु ये इनकी भूलें नही हो सकती। सभवत ये भूलें प्रतिलिपिकारों तथा सपादको की है।

दयाराम ने हिन्दी भाषा मे विपुल साहित्य की रचना की है। सतसैया और रसिकरजन जैसी कृतियो के आधार पर हिन्दी के उच्च कविया की कोटि मे दयाराम रखे जा सकते हैं।

गिरिधर (ई० स० १७८७ १८५२)

गुजराती मे लोकप्रिय रामायण लिखने वाले गिरिधर बडौदा के मासर गाँव का दशालाड वनिया था। इनके पिता गाँव के पटवारी थे। इनका जन्म ई० स० १७८७ में एव मृत्यु ई० स० १८५२ मे हुई था।[१] इन्होंने वल्लभ विजय नामक पुरोहित से सस्कृत एव हिन्दी का अभ्यास करके अपने गुजराती

---

[१] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २०३।

के ज्ञान को बढ़ाया था। थोड़े समय के बाद ये वैष्णव महाराज पुरुषोत्तम जी के संसर्ग में आये और इनसे पिंगल का ज्ञान प्राप्त किया। पुरुषोत्तम महाराज से ये वैष्णव धर्म में दीक्षित हुए और उन्हीं की प्रेरणा से व्रजभाषा में लिखने लगे।

रंगीलाल नामक महाराज के साथ ये यात्रा करने के लिए गये। यात्रा में लौटते समय श्रीनाथजी के दर्शन करने की इनकी इच्छा हुई। पर रंगीलाल जी महाराज राधावल्लभी संप्रदाय के थे। अतः उनको दर्शन करने की अनुमति नहीं दी। इस निषेध से इनको बहुत ही बुरा लगा और वहीं थोड़े समय के बाद प्राण त्याग किया।

गिरिधर ने हिन्दी (व्रज) और गुजराती दोनों भाषाओं में कविता की है। इन्होंने लगभग ११ ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें से ६ हिन्दी में हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी में स्फुट भजन, पद, साखियाँ आदि भी लिखी हैं। इनकी भाषा पर गुजराती का पर्याप्त प्रभाव है।

गिरिधर की लिखी ११ कृतियो में से दाणलीला, श्रीकृष्ण जन्म वर्णन, राधाकृष्णनो रास, ग्रीष्म ऋतुनी लीला, जन्माष्टमीनो सोरलो तथा नृसिंह चतुर्दशीनी बधाई—हिन्दी की रचनाएँ हैं। शेष रचनाएँ गुजराती में हैं। दाणलीला अप्रकाशित हिन्दी काव्य है। इसमें राधा और कृष्ण के बीच के वाद-विवाद का वर्णन है। राधा अपनी सखियों के साथ शृंगार करके दही बेचने के लिए जाती है तब सामने से श्रीकृष्ण अपने साथी गोपों के साथ आकर दान माँगते हैं। राधा इन्कार करती है। इस पर दोनों के बीच वाद-विवाद होने लगता है। अंत में दान के रूप में राधा गोरस देती है। दाण-लीला काव्य छोटा और साधारण कोटि का है।

'श्रीकृष्ण जन्म वर्णन' में कवि ने भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण जन्म पर गोकुल वासियो के उल्लास का वर्णन किया है। 'राधा-कृष्ण के रास' मे गिरिधर ने श्रीकृष्ण भगवान के प्रति गोपियों के प्रेम और आकर्षण का वर्णन किया है। 'ग्रीष्म ऋतुनी लीला' में श्रीकृष्ण के ग्रीष्म ऋतु के वन-विहार का वर्णन किया गया है। 'जन्माष्टमी नो सोरलो' काव्य का विषय भी श्रीकृष्ण जन्म ही है। नृसिंह चतुर्दशी नी बधाई में प्रह्लाद की भक्ति भावना से प्रसन्न होकर नृसिंह रूप में अवतरित भगवान का वर्णन है। इन रचनाओं के अतिरिक्त इनके रामायण और कृष्ण चरित्र नामक गुजराती ग्रन्थो में भी हिन्दी रचनाएँ मिलती हैं। इन काव्यो के अतिरिक्त गिरिधर की स्फुट रचनाएँ भी मिलती हैं।

मनोहरस्वामी 'सच्चिदानन्द' (ई० सं० १७८८-१८४५)

मनोहर स्वामी का जन्म ई० स० १७८८ में जूनागढ़ के नागर परिवार मे हुआ था और मृत्यु ई० स० १८४५ में हुई।[1] बड़े होकर कुछ समय तक मुखत्यारी और वकालत की। ये संस्कृत एवं फारसी मे बहुत ही निपुण थे। अकबर के समय में किये गये एक उपनिषद के भाषान्तर की सहायता से इन्होंने उपनिषदों का अध्ययन किया था। कई शतकों से जूनागढ़ वैष्णवों एवं स्मार्तों के झगड़े का केन्द्र माना जाता था। इस कलह की वजह से इनको दोनों सम्प्रदायो पर अविश्वास हो गया। अतः ई० स० १८३८ मे इन्होंने संन्यास धारण कर लिया और भावनगर के नीलकंठ महादेव मे 'सच्चिदानन्द' नाम धारण करके रहने लगे और बाद मे गौरीशंकर ओझा के गुरु हुए।[2] इन्होंने भगवद्-गीता एवं रामगीता पर टीका लिखी हैं और गुजराती का व्याकरण लिखा है। वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय के विरुद्ध इन्होंने संस्कृत एवं गुजराती मे कविता लिखी है।

मूर्तिपूजकों का वे तिरस्कार करते थे। तीर्थयात्रा करने से कुछ पुण्य होता है ऐसी इनकी मान्यता नही थी। ये मानते थे कि स्वयं को पहिचानने से, स्वरूप का बोध होने से ही मोक्ष मिलता है। इनके कई पद सरल एवं कई पद दुर्बोध तत्त्वज्ञान से सुशोभित हैं। अन्य सन्त कवियों की तरह इन्होने भी गुरु की प्रशंसा की है और मानते हैं कि सद्गुरु के बिना मोक्ष नही है। गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी में भी इनकी रचनाएँ मिलती हैं।[3] इनके पद बहुत ही मार्मिक हैं। इनकी हिन्दी कविता सरल एवं सचोट है। इनकी हिन्दी पर फारसी का प्रभाव है। इनके गुजराती एवं हिन्दी पद 'मनहरपद' मे संगृहीत हैं।

किशनदास

किशनदास लोकागच्छ (गुजरात) के जैन कवि थे। अपनी बहन रतन बाई के निधन पर संवत् १७६७ के आश्विन शुक्ल १० के दिन किशनदास ने 'किशन बावनी' नामक छोटा काव्य बनाया है।[4] कवि की जाति आदि के विषय मे कई किंवदन्तियाँ हैं। बाल्यावस्था से ही अहमदाबाद के लोकागच्छ

---

१ गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २०३।

२ गुजराती साहित्यना मार्गसूचक स्तम्भो (द्वितीय संस्करण)—कृष्णलाल झवेरी, पृ० २०३।

३ गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २०३।

४ गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० २४।

के श्रीपूज के गुरुभाई संघराजजी ने इनको पढ़ाया था और कविता करने की शिक्षा दी थी। कवि ने काव्य का नाम तो 'उपदेशबावनी' रखा है पर 'किशन बावनी' नाम से ही यह काव्य प्रसिद्ध है।[1] काव्य के विषय में कवि कहते हैं कि 'यह काव्य मैंने जैन मतानुसार न करके वेदान्त मतानुसार रचा है। इस काव्य में प्रारम्भ मे कवि ने प्रथम जैन-सूत्र 'ॐ नमः सिद्धम्' के अक्षरों के क्रम से अ से ज्ञ तक कवित्त लिखे हैं। इस काव्य की वाणी हृदयहारि एवं आकर्षक है। पुराने समय में बहुत लोग इस किशन बावनी का रोज पाठ करते थे।

कवि ने अन्तिम कवित्त में अपने निवासस्थान, रचना, संवत आदि का उल्लेख किया है—

> शिरी संघे राज लोका गच्छ सिरताज आज।
> तिन की कृपाजू कविताई पाई पावनी।
> सम्वत सत्तर सतसठ विजै दशाई की,
> ग्रन्थ की समापति भई है मन भावनी॥
> साधवी सुलानी मा की जाई श्री रतन बाई,
> तजी देह तापर रची है विगतावनी।
> मन की मति लीनी तत्त्व ही में रुचि दीनी,
> वाचक किसन कीनी उपदेश बावनी॥६२॥

हर्षदास या हरखजी मेहता

इनका जन्म भावनगर के सिहोर गाँव में एक वणिक परिवार में ई० स० १७६१ में हुआ था। इनके पिता दामजी महेता भावनगर के संस्थापक श्री भावसिंह जी के कामदार थे। पिता की मृत्यु के बाद श्री हरखजी महेता को भी ठाकुर साहब तख्तसिंह जी के कारभारी का पद मिला था।

हर्षदास पुष्टिमार्गीय भक्त थे। ये वैष्णव धर्म के प्रसिद्ध आचार्य माधवरावजी कोटावाले के शिष्य थे। उन्होंने दो ग्रन्थ हिन्दी में लिखे हैं—

१. भक्त मुकुट मणि
२. तीर्थ आज्ञा प्रबन्ध

इसके अलावा इनके फुटकर पदो का एक संग्रह महेता हर्षदास कृत पदसंग्रह के नाम से प्रकाशित है।

---

[1] गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० २४।

उन्होने हिन्दी भाषी प्रदेश की कई बार यात्रा की थी और पुष्टिमार्गीय ग्रन्थो का अच्छा अध्ययन किया था। उन्होने भ्रमरगीत एव बाललीला के बहुत सुन्दर पद लिखे हैं।

निरान्त

एक मान्यता के अनुसार निरान्त ई० सन् १७७० से १८४६ तक विद्यमान थे।[१] इनके सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार इनका जीवन काल ई० सन् १७४७ से १८५२ तक माना गया है। आप देवाण (करजण तहसील) के तलपदा पाटीदार थे। दूसरी मान्यता के अनुसार आप राजपूत थे। शुरू मे ये वैष्णव थे तथा प्रत्येक पूर्णिमा को हाथ में तुलसी लेकर डाकेर के मन्दिर मे दर्शन करने के लिए जाते थे। पर एक दिन एक ज्ञानी मुसलमान ने इन्हे एकेश्वरवाद का रहस्य समझाया। फलतः आप निर्गुण के उपासक हो गये ऐसा माना जाता है।[२] पर इस कथा को साम्प्रदायिक आधार नही मिला है।

गुजराती साहित्य के निर्गुण कवियो मे निरान्त का विशिष्ट स्थान है। ये एक ध्यान से सोऽहं मन्त्र का उच्चारण किया करते थे। इनके कई शिष्य थे जिनमें दयालदास, गणपत एव बापु साहब गायकवाड़ मुख्य हैं। निरान्त ने साखियाँ, कुडलिया, झूलणा नाम से अभिहित पद, धोल, छप्पय, एव काफी छन्द मे रचना की है।

हिन्दी मे काव्य लिखने वाले और गुजराती कवियो की तरह निरान्त ने भी दोनो भाषाओ मे काव्य रचना की है। अन्य सन्त कवियो की तरह काव्य का विषय भक्ति, गुरु-महिमा, आत्मज्ञान, वैराग्य इत्यादि है। उनकी भाषा अधिक परिमार्जित एव सुश्लिष्ट नही है। विभिन्न राग-रागनियो एव तालो मे उन्होने काव्य रचना की है। इस ज्ञानी कवि ने हिन्दी मे भी कई पद लिखे हैं। इनके पद इनके शिष्य मण्डल एव अनुयायियो मे आज भी आदर के साथ पढे जाते हैं।[३]

भाणदास (१६९८-१७५५)

आप गुजरात के कबीरपंथी सतो मे प्रथम और प्रमुख सत हैं। आपका जीवन काल ई० १६९८ से १७५५ ई० तक माना जाता है।[४] ऐसा प्रसिद्ध

---

१ गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० १६७।
२ वही।
३ वही, पृ० १९८।
४ वही पृ० २११।

है कि ई० सन् १७५५ मे इन्होंने जीते जी समाधि ली थी। पूर्वाश्रम में आप लोहाणा थे। आंबा छड्डा नामक एक गोपाल से ज्ञान प्राप्त होने पर वे गृहस्थ होते हुए भी विरक्त हो गए। इनके कई शिष्य थे। लगभग ४० शिष्यों के साथ वे गुजरात और सौराष्ट्र में उपदेश देने के लिए घूमा करते थे। उनके पदों में विशेषतः गुरु महिमा के पद एवं चेतावनी बोधक पद अधिक सुन्दर एवं लोकप्रिय हैं। गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी में भी इनके पद मिलते हैं।[1] इनके पुत्र खीमदास तथा शिष्य रविदास ने कई पदों में अपने गुरु भाण साहब का आदर के साथ उल्लेख किया है।

रवि साहब

अपने पदो में ये 'रविराम' या 'रविदास' शब्द से अपना नामोल्लेख करते हैं। आप तणछा गाँव के वनिये थे। भाणदास जैसे गुरु के सत्संग से पूर्वाश्रम के खाजी वणिक को ज्ञान प्राप्त हुआ था। ये ई० १८वीं शती के उत्तरार्द्ध में वर्तमान थे। उन्होने गुजराती के साथ-साथ हिन्दी में भी सर्वाङ्ग सुन्दर पद लिखे हैं।[2] पदों का विषय भक्ति एवं ज्ञान है। अपने पदो में अपने गुरु भाण साहब को वे हमेशा श्रद्धा एवं आदर के साथ याद करते हैं। गुरु परम्परा के अनुसार अपने पदों एवं भजनो में इन्होने भी वाह्याचारों का खंडन एवं आत्म चितन का मंडन किया है। उनका 'संतो रमता राम हमारा' पद बहुत ही प्रसिद्ध है।[3]

खीम साहब

भाणदास के सुपुत्र एवं शिष्य खेम या खेमसाहब ने भी अपने पिता एवं गुरु की तरह सुन्दर भजनों और ज्ञान-वैराग्य का उपदेश देने वाले पदों की रचना की है। ये अपने गुरु भाई रवि साहब के समकालीन थे। भगवान की स्तुति से जीवन को सफल बनाने का उपदेश उनके पदों में मिलता है।

त्रिकम साहब

ये खीम साहब के शिष्य थे। ये अस्पृश्य गरोड़ा जाति के थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि उन्होंने भी जीवित समाधि ली थी। उन्होने ज्ञान एवं वैराग्य का बोध कराने वाले कई पद हिन्दी में लिखे हैं। उनकी भाषा में गुजरातीपन अधिक है।

---

[1] भजनसागर, भाग २, प्र० सस्तु साहित्य, अहमदाबाद, पृ० ५२७।

[2] वही, पृ० ६५०; गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २१२।

[3] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २१२।

मोरार साहब

ये रविसाहब के शिष्य थे।[१] इन्होने ई० स० १८४६ मे जीवित समाधि ली थी। ये मारवाड के थराद के राजपूत थे और रविदास की वाणी के प्रभाव से विरक्त होकर जामनगर जाकर दीक्षा ली थी।[२] हिन्दी एवं गुजराती दोनो भाषाओ मे उनके पद मिलते हैं। दूसरे सन्त कवियो की तरह उनके काव्यो मे भी ज्ञान एव वैराग्य का पुट मिलता है। "मैया मेरो मनवो भयो वेरागी मारी लेह तो भजनमा लागी,' 'हर मेरे हसा चलो निज देश जहाँ अमर पुरुष अस्थाना रे।' 'मेरे प्रीतम चले परदेश जीवन में कैसे जीऊँ' जैसे उनके पदो में इनके भक्ति-ज्ञान-वैराग्य एव कवित्व के दर्शन होते हैं।[3]

मूलदास

मूलदास का निवासस्थान अमरेली था। इन्होंने भी गुजराती के साथ साथ हिन्दी मे कविता की हैं। उनकी हिन्दी रचनाएँ भजनसागर भाग २ (प्र० सस्तु० साहित्य, अहमदाबाद) में देखी जा सकती हैं।

---

[१] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २१२।

[२] वही।

[३] । ।

सातवां प्रकरण

गुजरात के उन्नीसवीं शती के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन

उन्नीसवी शताब्दी में भी बहुत से कवि हुए हैं जिन्होने हिन्दी काव्य साहित्य को अपनी महामूल्य रचनाओं से समृद्ध एवं समलंकृत किया है। इन गुजराती कवियों मे से गोविन्द गिल्लाभाई, राजा साहब, रणमल्ल सिंह जो, दलपतराम डाह्याभाई कवि, कल्याण एवं भाण से एवं इनकी कृतियों से हिन्दी साहित्य के अध्येता थोड़े-बहुत परिचित हैं ही। पर इनके अतिरिक्त जिन-जिन कवियों एवं कृतियो की समीक्षा की गई है वह प्रथम बार ही हिन्दी जगत के समक्ष प्रस्तुत है। गुजरात में प्राचीन काल से ही कवि लोगो की प्रीति अपनी भाषा के अतिरिक्त व्रजभाषा (हिन्दी) पर भी रही है। फलस्वरूप इन कवियों ने प्रत्येक शताब्दी में गुजराती के अतिरिक्त व्रजभाषा (हिन्दी) में उत्तम ग्रंथों की रचना की है। पर आश्चर्य एवं दुख की बात है कि ऐसी रचनाओ के प्रति गुजराती के एवं हिन्दी के विद्वानो की उपेक्षा ही रही। हिन्दी रचना होने से गुजराती के विद्वान इनकी ओर आकर्षित न हों यह स्वाभाविक ही है। इसी तरह हिन्दी प्रदेश से कई मील दूर तथा गुजराती लिपि के आवरण के नीचे छिपी होने से हिन्दी के उच्च कोटि के विद्वान भी ऐसी कृतियों से बिलकुल अनभिज्ञ ही रहे।

इस शताब्दी के कवियों में उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त राजा साहब अमरसिंह जी, हीराचन्द कानजी कवि, नथुलाल, बालाशंकर, राधाबाई, जामसुता

जाड़ेजी श्री प्रताप बाला, बजमलजी महेडु, होथी साहब, जीवण दास, सविता नारायण, नृसिंहाचार्य, अरजुन भगत, छोटम, एवं महात्मा हरिदास मुख्य हैं। राजा साहब अमरसिंह जी, राजा साहब मानसिंह जी एवं जामसुता जाड़ेजी, श्री प्रताप बाला सौराष्ट्र के प्रसिद्ध राजघराने के थे। बजमलजी महेडु पिंगल सिंह गढवी सौराष्ट्र के राजाओ के आश्रित कवि थे। होथी साहब, जीवण दास, नृसिंहाचार्य, अरजुन भगत एवं महात्मा हरिदास सन्तमत के कवि थे। इन सभी कवियों का विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन अब दिया जाता है।

नभुलाल धानतराय जी द्विवेदी (ई० स० १८०२-१८७२)

नभुलाल द्विवेदी नडियाद के साठोदरा नागर थे। इनका जन्म ई० सन् १८०२ मे और मृत्यु ई० सन् १८७२ मे हुई।[१] इनके पिता धानतराय जी शक्ति के उपासक थे और कहा जाता है कि जगदम्बा के आशीर्वाद के फलस्वरूप ही नभुलाल का जन्म हुआ था।

बाल्यकाल से ही इनको संगीत और कविता का शौक था। ये कृष्ण और देवी के अनन्य भक्त थे। ये आशु कवि भी थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि सौराष्ट्र के एक भक्त ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक कोई उसके १७००० पदों का जवाब पदों मे न देगा, वह घर नही लौटेगा। कहते हैं कि नभुलाल ने पदों का जवाब देकर इसका संकल्प पूरा किया था।

नभुलाल ने संस्कृत, गुजराती, हिन्दी, उर्दू इत्यादि भाषाओं मे कविता की हैं। इनकी भाषा में राजस्थानी और पजाबी का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है।[२] इनके शिष्य भट्ट निर्भयराम प्राणशंकर गोगा ने नभुवाणी नाम से इनकी कविता का एक संग्रह सन् १९०३ में गुजराती प्रेस, बम्बई से प्रकाशित किया है।

काव्य प्रदेश में नभुलाल कवि दयाराम का अनुकरण करते हैं। इनके पदो में दयाराम के पदों के समान लालित्य एवं मधुरता है। गुजराती में इन्होंने कृष्ण की बाल लीला के सुन्दर पद लिखे हैं। इन्होंने हिन्दी पदों में काफी विलावल, भैरव, आसावरी, सोरठ, मल्हार, ललित, भैरवी आदि राग-रागनियो का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के छन्दों का प्रयोग भी इनकी कविता में मिलता है। इनकी रचना का एक उदाहरण देखिए—

मारे बरछी कलम की लगे कोश हजार।
दुनिया घा देखे नही, बडा कलम का मार॥

---

[१] अर्वाचीन कविता (द्वितीय संस्करण)—सुन्दरम्, पृ० ४९५।

[२] शिक्षण अने साहित्य, अक्टूबर १९५१।

बड़ा कलम का मार, रूदे का घाव न रूझे।
अक्कल के मेदान ढाल कागद से भूझे॥
कहे नमू गुन जान, इनुसें सबही हारे।
लगे कोश हजार कलम की बरछी मारे॥[1]

छोटम (ई० स० १८१२–१८८५)

:कवि छोटम का जन्म पेटलाद तहसील के मलातज गाँव में सन् १८१२ में हुआ था और इनकी मृत्यु सन् १८८५ में हुई थी। ये साठोदरा नागर थे। इनके पिता का नाम कालीदास था। इनके हीरामाई, शम्भुप्रसाद और व्रजलाल नाम के तीन छोटे भाई थे। ये तीनों भाई विद्वान थे और क्रमशः ज्योतिष, कर्म मीमांसा और धर्मशास्त्र में निपुण थे।

महात्मा छोटम आजीवन ब्रह्मचारी रहे। इन्होंने नर्मदा नदी के तट पर पुरुषोत्तम आचार्य नामक सिद्ध योगी से दीक्षा ली। दीक्षा देते समय छोटम के गुरु ने पाखंडियों के पन्थ का खंडन करके समाज मे नीति तथा धर्म की स्थापना के लिए लोगों को उपदेश देने का आदेश दिया था। गुरु का आदेश सुनकर अध्यात्म प्रेमी छोटम अन्तर्मुखी हो गये। आत्म-बोध होने पर वे बहुजन-हिताय ग्रन्थ रचना करने लगे। इन्होंने गुजराती मे लगभग ४३ ग्रन्थ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में "बोधसुधा" नामक एक वृहद् हिन्दी ग्रन्थ भी लिखा था। इसकी हस्तलिपि लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति मन्दिर, अहमदाबाद के विद्वान प्राध्यापक डा० हरिप्रसाद शास्त्री के पास है। "बोधसुधा" पर माननीय लेख डॉ० शास्त्री ने अहमदाबाद से प्रकाशित "राष्ट्रवीणा" पत्रिका में लिखा है।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त महात्मा छोटम ने हिन्दी में बहुत से पद और साखियाँ भी लिखी हैं जो 'छोटमनी वाणी,' 'परिचित पद संग्रह' एव अन्यान्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं।

अध्यात्मवादी छोटम बहुत ही सरल प्रकृति के थे। ये शान्त, मितभाषी और तपोनिष्ठ व्यक्ति थे। दूसरे सन्त-कवियो की तरह इन्हे भी कवि कहलाने या लोकेषणा का लोभ नही था। इनकी रचनाओ में बाह्य दृष्टि से छन्द, मात्रा, लघु-गुरु इत्यादि की अशुद्धियाँ अवश्य पाई जाती हैं पर उसमें निहित भावों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वह गहन, गम्भीर, बोधप्रद और ऊँचे घाट का है।

---

[1] अर्वाचीन कविता (वितीय संस्करण)—सुन्दरम, पृ० ४६६।

उन्होंने अपने गुरु के आदेशानुसार पाखंडियों को खूब फटकारा है। मतमतान्तर और जातिपाँति को व्यर्थ बताकर उन्होंने अपने ग्रन्थों में उपनिषदों का दोहन करके रखा है। अन्य सन्त कवियों की तरह महात्मा छोटम ने भी गुरु की बहुत ही प्रशंसा की है। उन्होंने सज्जनों की प्रशंसा एवं दुर्जनों की निन्दा भी की है। उन्होंने नीति विषयक सुन्दर साखियाँ भी लिखी हैं।

इनकी वेदान्त विषयक दो रचनाएँ द्रष्टव्य हैं—

१५

कोई देखो रे आ घटको खेल,
जामें दीप जले बिन बत्ती तेल।
जी हाँ अनहद नाद, बजे अपार, माँही मुरली मृदंग ने सींगी सार,
खटचक्रमां बाजत प्रणवतार। कोई देखो०
जहाँ सोहं-हँसो रमत रंग, लिए पाँच-पचीस प्रकृति संग,
जाके रूप नहीं, आकार, अंग। कोई देखो०
सब देव करत है रंगराग, कोई गुरुमुखी, समझे गुरु को भाग,
तहाँ कल्पवृक्ष की बनी है बाग। कोई देखो०
जहाँ शिव सनकादिक धरत ध्यान, अति प्रेम सुधारस करत पान,
कहे छोटम ए सद्गुरु की सान। कोई देखो०[1]

१७

खेले पिया गेब गगन में होरी, कहा जानी सके मति मोरी। टेक
आप अरूप रूप बहु सरजे, अन्ड अनन्त करो री,
अखिल जीव कु नाच नचावे, जाके हाथ मे डोरी। खेले०
रूप रंग बहु भाँति-भाँति के, जुगल-नारी नर जोरी,
काहू की सूरत एक सी न आवे, अद्‌भुत चातुरी तोरी। खेले०
खेलन हार नजर मे न आवे, सबकी मति गई भोरी,
सोहं-सोहं शब्द होत है, गुरु गये जात प्रह्योरी। खेले०
नेति नेति कही निगम पोकारे, विनय करत कर जोर,
छोटम ऐसे प्रभु कु न जाने, ताकी मति अति थोरी। खेले०[2]

---

[1] परिचित पदसंग्रह (तृतीय संस्करण), प्र० सस्तुं० साहित्य, अहमदाबाद, पृ० १०४।

[2] वही, पृ० १०५।

१८

गुरु गम से खेलो होरी, मीटे मिलन वासना तोरी। टेक
आसन मारी, सुरत दृढ़ धारी, त्रिकुटी ध्यान धरो री,
सास-उसास शाम संग खेलो, नैन अचल चित्त जोरी;
गगन घर जाई बसोरी ॥ गुरु०
अनहद नाद मृदंग मोरलो, सुनके सूरत चली मोरी,
कोटि अनंग अंग प्रति सोहे, ऐसे किशोर किशोरी,
संग सखियन की टोरी। गुरु०
झलहल ज्योत उद्योत कोटि रवि, अद्भुत खेल मचोरी,
निरख स्वरूप देव सब मोहे, विनय करत कर जोरी,
निगम जश गात थरोरी। गुरु०
पार-अवार नहि है जाको, गुरुगम जात प्रह्योरी,
जन छोटम सद्गुरु करुणा से, सो प्रभु दरस भयो री,
देह दोप गयो री। गुरु०[1]

दलपतराम डाह्याभाई कवि (ई० स० १८२०-१८९८)

ये सौराष्ट्र मे वढ़वाण के निवासी थे। इनका जन्म सन् १८२० ई० में और मृत्यु १८९८ में हुई।[2] दलपतराम ने देहात के स्कूल में ही ज्ञान प्राप्त किया था। तदनन्तर उन्होंने कच्छ भुज की व्रजभाषा पाठशाला[3] मे काव्य और पिङ्गल का अभ्यास किया और स्वामी नारायण सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। इनके धर्मगुरु स्वामी भूमानन्द एवं शिक्षागुरु देवानन्द स्वामी थे। फार्बस साहब के साथ सारे गुजरात एवं सौराष्ट्र में घूम-घूम कर 'रासमाला' लिखने में सहायता की। ई० स० १८४८ में फार्बस की सूचना से सरकारी नौकरी छोड़ी थी और गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी के मन्त्री बने। दलपतराम ई० स० १८७७ तक दत्तचित्त होकर इस संस्था का कार्य करते रहे।

गुजराती में इन्होने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है :

काव्य—फार्बसविलास, विजयक्षमा, गमार बावनी, हंस काव्य शतक, ऋतु-वर्णन, गरबावली, फार्बसविरह, दलपत पिङ्गल, काव्यदोहन।

---

[1] परिचित पद संग्रह (तृतीय संस्करण) प्र० सस्तुं साहित्य, अहमदाबाद, पृ० १०६।

[2] फरवर माइलस्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर, के० एम० झवेरी, पृ०२१।

[3] गुजराती ओए हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ५३।

नाटक—लक्ष्मी, मिथ्याभिमान

हिन्दी मे इन्होने ज्ञान चातुरी, व्रज चातुरी, पुरुषोत्तम चरित्र और श्रवणाख्यान नामक सुन्दर ग्रन्थो और अनेक स्फुट पदो की रचना की है। इनके अतिरिक्त महेरामणसिंह जी विरचित 'प्रवीणसागर' की अन्तिम १२ लहरें इन्होंने ही लिखी थीं।

श्रवणाख्यान—यह इनकी सर्वोत्तम हिन्दी रचना है। इसमे ६ सर्ग हैं। सम्वत् १९२४ की मकर सक्रान्ति के दिन यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ। यह काव्य दलपतराम ने बलरामपुर के महाराजा दिग्विजयसिंह को प्रसन्न करने के लिए लिखा था।[1] यह काव्य महाराजा को ही अर्पित किया गया है। इनकी व्रज की कविता एव श्रवणाख्यान के विषय में कवि गोकुल का निम्नलिखित अभिमत सर्वथा उचित ही है—

सुभग अर्थ गुन भरे, सलिल शुभ ताप पाप हर।
छन्द अनेकन भाँति, बिराजत सोद जलचर॥
मात पिता की भक्ति, प्रेम दृढ़ नेम अछे वर।
परमहस मुनि महत, परस्पर पच्छपात कर॥
लही वेद पुरान अनेक मत, सत सगति शुचि विमल मति।
वृज दरशि सतगति लहै, श्रवोन कथा तीरथ नृपति॥१॥

'दण्डक'

छन्द परबन्ध रीति जलचर जीव जामे,
मात औ पिता की भक्ति वारी अभिराम की।
चारु चित्र भुवन तरल है तरग तुङ्ग,
भ्रमत भवर भूरि धुनि है विराम की॥
राजे गुनबीज गहीराई है गम्भीरताई,
नव परभाव भावे घाट विसराम की।
सविता सुतासी वृज पावन करन इत,
आई कविताई कवि दलपति राम की॥२॥

श्रवणाख्यान शान्त और करुणरस का काव्य है। इस काव्य में कवि ने पितृ-भक्ति की महिमा गाई है।

---

[1] गुजराती सोए हिन्दी साहित्यमां आपेनो फालो—डाह्याभाई देरासरी, पृ० ५३।

श्रवणाख्यान काव्य में से थोड़े उदाहरण देखिए :

१. श्रवन कहै तव पितु घर ठरनां, तब मम पितरन का गति करना ।
सुनि सावित्रि कहै सिर नामी, क्षमा करहू सुनि मम वच स्वामी ॥१०३॥
जब वय वृद्ध पितर निज पावें, सुपुत तबे तिन स्वर्ग पठावें ।
काशी के करवतें कटावें, अरु गंगाजल मौहि वहावें ॥१०४॥
गंगा सम सरयू गति दाई, वेद पुरान कहत गुन गाई ।
सजुं में ह्रद यहै अगाधा, बहुत पुनित हरहि भव बाधा ॥१०५॥
जल प्रवेश तव पितरन करनां, सुपुत्रता को यश शिर धरनां ।
कर ही पितु मातुन कल्याना, ताके सम सुत कौन सयाना ॥१०६॥
में मन क्रम से दासी तुम्हारी, सासु उठाई लहौं सिर धारी ।
तुम निज तात कुं योंहि उठाओ, उक्त प्रमान स्वरग पहुँचायो ॥१०७॥

२. मनहू तें मायर की ममता न मूकै कबु,
अन्तर में अल्प बोज राखे नहि अन्य का ।
सौध तजि कैसे मन मानैं पेखी पुर्नकुटी,
नागरिकों कैसे रुचै आश्रम अरन्य का ॥
विविध वसन तजी कैसे रुचैं बल्ल कल,
धिक अवतार होत अवतार धन्य का ॥
मेरी सीख सीखो तो सिखामन या सीखी लैना,
निर्धन न लेना कबु धनी की सुकन्या का ॥१२॥

३. अन्धीन को चलनो अटक्यौ घटकों दुख संघट आइकें घेर्यो ।
दृष्टिन दैवत दूरि गयो अब आदित्य टारि टरै न अन्धेरो ॥
दांत की पांत परी भुज को बल भाग गयो श्रुति के बल मेरो ।
रे विधि वृद्धपनो पसर्यो बहु जोबन जोर गयो कित मेरो ॥१७॥

४. ग्रीषम भीषम ताप तपै वसुधा, भई बीषम वारि बिना की ।
वानर को सिर फाटी परै तो कहा नर की रही वात कहा की ॥
वात सहात निवास विषै न प्रवास विषै कहै क्या प्रसर्या की ।
राह नहीं पुनि दाह लगै स्नौन कियो अवगाह एकाकी ॥
घेरी रही घनघोर घटा चपला को छटा चमकै बहु पासै ।
मोर करे तरु के पर तांडव खांडीव सी बन की भुवि भासैं ॥
कुंज समान कहै दलपति बड़े अरविन्दन वृन्द विकासैं ।
आतुरता सें रहे विरहातुर चातुर का चित्त चातुर भासैं ।

५. कावरी तुला तुल्य खगोल भूगोल नांहि,
परम पुनीत मोच्छ पदवी की पायरी ।

त्रिवेनी को तत्त्व ताको त्रिरज्जु के तुलनाहि,
कौन गिनती मे गगा गोमती गोदावरी ।
कावरी को दण्ड यमदण्ड को विखण्ड कारी,
कावरी नहि है भव निधि की है नावरी ॥
कावेरी-कावेरी कहा करत हो कृपानाथ,
कावेरी को कृतारथ कारी तोरी कावरी ।।२२॥

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि मिश्रबन्धु इस कवि की कविताओ को सामान्य कक्षा मे रखते हैं। समस्यापूर्ति के लिए लिखी हुई निम्नलिखित पक्तियो से कवि को शृङ्गारिक कविता की सुन्दरता का ख्याल आएगा। समस्यापूर्ति मे इनकी कविता ही सभी से उत्कृष्ट मानी गई थी :[1]

भ्रमर कुटिलाकार, नैन बिन्दु मध्य धार,
माहु ओकार के आकार आधे-आधे है।
हिय हुपें हेमहार जन्त्र के आकार जानो,
बिच कुच कुम्भ धार इष्ट को अराधे है।
किन्हें बश घनश्याम कहे दलपति राम,
गोप सुता गोप्य गुन तो हि मे अगाधे है।
आधे आधे आखर को बोली खोली नन आधे,
राधे आधे बैन सें अगाधे मन्त्र साधे हैं ॥ १ ॥[2]

गुजराती भाषा एव साहित्य के कवियो की हिन्दी काव्य साहित्य की देन मे दलपतराम का योग प्रधान, महत्त्वपूर्ण एव प्रशसनीय है।

गोविन्द गिल्लाभाई (ई० स० १८४८—१९२५)

इनका जन्म सिहोर[3] (सौराष्ट्र) मे सन् १८४८ मे हुआ था और निधन सन् १९२५ मे हुआ। इनके पिता का नाम गिल्लाभाई और माता का नाम सावित्री बाई था। ये चौहाण राजपूत थे। इनके पूर्वज पीपलाद (मारवाड) मे रहते थे। आपस मे कलह की वजह से वे सिहोर (सौराष्ट्र) मे चले गये थे।

गोविन्द को स्कूली शिक्षा ज्यादा नही मिल पाई। बचपन से ही भाट-चारणो के सत्सग के कारण इनमे वीर रस और शृङ्गार रस की कविताओ के

---

[1] गुजराती और हिन्दी साहित्यमां आपेलो फालो—डाह्याभाई देरासरी पृ० ५६।

[2] वही, पृ० ५६।

[3] वही, पृ० ५२।

संस्कार पड़े। इन सब भाट-चारणो की ,भाषा में व्रज भाषा का अनुपात भी डिंगल की तरह प्रचुर मात्रा मे था ही। इतिहास, पुराण, उपन्यास, नाटक चरित्र कथा की ओर भी इन दिनों रुचि हुई, ऐसा श्री गोविन्द कवि लिखते हैं। मित्रों को पत्र लिखते समय काम आये उस दृष्टि से फुटकर दृष्टान्तिक और गूढ़ कूट तथा समस्या पहेली आदि कविताओं का संग्रह करना शुरू किया। दैव योग से उसी समय जैन साधु पानाचन्द जी से परिचय हुआ। पानाचन्द जी से पिंगलशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। फलस्वरूप स्वयं कविता करने की वृत्ति हुई। गुजराती में 'विश्वदर्पण', 'कुधारा पर सुधारा की चढ़ाई' और 'कविसार निषेध बावनी' ऐसे तीन ग्रन्थो की रचना की।[1] मित्रों ने काव्यशास्त्र के लक्षण ग्रन्थ पढ़ने की सलाह दी। गुजराती भाषा के अतिरिक्त इस विषय के हिन्दी के मुख्य ग्रन्थों का भी इन्होंने गहन अध्ययन किया। उन्होंने दरिद्रावस्था में भी व्रज भाषा के काव्यों का इतना बड़ा संग्रह किया कि रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी अपने इतिहास में इसका उल्लेख किया है।[2]

हिन्दी में लिखने वाले सभी गुजराती कवियों की तरह ये भी हिन्दी एवं गुजराती दोनों में कविता करते थे। इन्होंने लगभग ३२ ग्रन्थ हिन्दी में लिखे हैं। इनकी रचनाओं के नाम ये हैं :[3]

१. नीति विनोद
२. शृङ्गार सरोजिनी
३. षट् ऋतु
४. पावस पयोनिधि
५. समस्यापूर्ति प्रदीप
६. वक्रोक्ति विनोद
७. श्लेष चन्द्रिका
८. गोविन्द ज्ञान बावनी
९. प्रवीण सागर की बारह लहरों
१०. गोविन्द हज़ारा संग्रह
११. विवेक विलास
१२. लक्षण बतीसी
१३. विष्णु विनय पचीसी
१४. पर ब्रह्म पचीसी
१५. शील नख चन्द्रिका
१६. प्रबोध पचीसी
१७. राधा रूप मंजरी
१८. भूषण मंजरी
१९. शृङ्गार षोडषी
२०. भक्ति कल्पद्रुम
२१. राधामुख षोडसी
२२. पयोधर पचीसी

---

[1] हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ११ : अंक १ में जयेन्द्र त्रिवेदी का लेख, 'गोविन्द गिल्लाभाई, पृ० ५९।

[2] वही, पृ० ५९।

[3] मिश्रबन्धु विनोद (तृतीय भाग) द्वितीय संस्करण—मिश्रबन्धु, पृ० १२०१।

२३. नैन मजरी
२४. छवि सरोजनी
२५. साहित्य चिन्तामणि
२६. रत्नावली रहस्य
२७. बोध बत्तीसी
२८. शब्द विभूषण
२९. अन्योक्ति विनोद
३०. अलकार अबुधि (अपूर्ण)
३१. प्रेम पचीसी
३२. प्रेम प्रभाकर (अपूर्ण)

इनमे से प्रथम दस प्रकाशित हो चुके है।[1]

गोविन्द कवि ने अपनी पुस्तको मे और अन्य जगह अपनी तमाम पुस्तको के विज्ञापन दिए हैं और मूल्य भी दिया है। इसलिए शायद ये छपी भी होगी। इन विज्ञापनो मे गोविन्द ग्रन्थमाला भाग १, २ के उपरान्त साहित्य चिन्तमणि, गोविन्द हजारा, नवरस हजारा, प्रेम प्रभाकर, किशन बावनी, गोविन्द ज्ञान बावनी, शिवराज शतक और अमृतधारा वगैरह का उल्लेख है। उनमें से पहली चार मे ब्रजभाषा की उत्तम कविताओ का सग्रह है, बाद की तीन रचनाओ मे गुजराती टीका भी है और अन्तिम 'अमृतधारा' भगवानदास निरजनी कृत है जिसका उन्होंने सम्पादन मात्र किया है।[2] इसके अतिरिक्त भूषण कवि की कविता का सम्पादन एव प्रकाशन करके इन्होने हिन्दी भाषा एव साहित्य की महती सेवा की है।

उनकी मृत्यु तक उनके पौत्रो की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नही थी, इसलिए कवि ने तो अपनी जिन्दगी गरीबी मे ही बिताई।[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मिश्र बन्धुओ एव हिन्दी के अन्य इतिहासकारो ने इनकी बहुत ही प्रशसा की है।

नृसिहाचार्य (ई० स० १८५४–१८६७)

उनका जन्म सूरत जिले के कडोद गाँव मे ई० सन् १८५४ मे तथा निधन १८९७ ई० में हुआ। ये विसलनगरा नागर थे। उनके पिता का नाम दुर्लभराज और माता का नाम महालक्ष्मी था। ये शुरू से ही सन्तो के सम्पर्क में रहते थे और आध्यात्मिक विचार रखते थे। थोडे समय के लिए शिक्षक का व्यवसाय करने के बाद ये बिलकुल विरक्त हो गये। बडोदा में उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार के लिए श्रेयस्साधक मडल नामक एक सस्था की स्थापना की जो आज भी उत्तम प्रकार का काम कर रहा है। आप सगीत के भी अच्छे

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद (तृतीय भाग), द्वितीय संस्करण—मिश्रबन्धु, पृ० १२०१।

[2] हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ११ : अंक १ मे जयेन्द्र त्रिवेदी का लेख, 'गोविन्द गिल्लाभाई', पृ० ६२-६३।

[3] वही।

ज्ञाता थे। गुजराती के साथ-साथ श्री मन्नृसिंहाचार्य जी ने हिन्दी में भी कविता की है।[1] श्री मन्नृसिंहाचार्य जी की वाणी जैसे हिन्दी में विकसित हुई है वैसे गुजराती में नहीं हुई है।[2] निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

कोहु चलियो रे चलनार, देश में चलियो रे चलनार।
यही देश की राह् विकट है, शूर होय सो जाई।
कायर जन को संग न चाहिये, अध बीच लेवे लुटाइ।
शौर्य रहित जो होयगा करियो संग हमार ॥[3]

उनके पद आज भी बहुत लोकप्रिय हैं।

अरजुन भगत (लगभग १८५० से १९००)

अरजुन भगत जाति के कोली थे। उनका जन्म भड़ौच जिले की अंकलेश्वर तहसील के एक छोटे गाँव मे हुआ था। ऐसा माना जाता है कि वे सन् १८९४ तक जीवित थे।[4] उनके जन्म एवं मृत्यु के समय के बारे में निश्चित जानकारी नही है। 'अर्वाचीन कविता' के लेखक सुन्दरम् के अभिमतानुसार उनका समय सामान्यत: ई० स० १८५० से ई० स० १९०० तक मान सकते हैं।[5] उन्होंने निरांत के शिष्य रणछोड़ से दीक्षा ली थी। गुरु की कृपा से हृदय में भक्ति-भावना का प्रादुर्भाव हुआ तथा ज्ञान का प्रकाश फैला। फलत : हृदय की गहन अनुभूतियाँ बरबस वाणी के माध्यम से निकल पड़ी। अरजुन भगत पर पूर्वगामी भक्त कवियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अरजुन ने ब्रजरीति की शिष्ट पद्धति से काव्य लिखे हैं जिनमें साहजिकता कम है तथा सौंदर्य विवर्ण है। फिर भी वहाँ भी कई बार बहुत ही सफलता मिली है। उनकी मुक्तक रचनाओं का उदाहरण द्रष्टव्य है—

मैं पंखी बिन पाँख के पर हे सतगुरु ज्ञान।
मन पवन के आसरे अरजुन उडुं ज्ञान ॥
भबब भंबब बाजत ढोलक ढोल न जानत कौन बजावे।
ज्ञान पिछान चडी असमान पतंग न जानत कौन चगावे ॥
नीर मे नाव डुवे कदी दाव ज, नाव न जानत कौन डुबावे।
अर्जुन ज्ञाति न जानत रानि, आ कायाकुं कौन चलावे हिलावे ॥[6]

---

[1] नृसिंह वाणी विलास और श्रीमान् नृसिंहाचार्य जी शताब्दी स्मृति ग्रंथ।
[2] अर्वाचीन कविता (द्वितीय संस्करण)—सुन्दरम्, पृ० ५११।
[3] वही, पृ० ५१२।
[4] अरजुन वाणी, सं० महादेव देसाई।
[5] अर्वाचीन कविता (द्वितीय संस्करण)—सुन्दरम्, पृ० ४९९।
[6] वही, पृ० ५०१।

उनके हिन्दी पदों मे अन्य गुजराती कवियों की तरह ही गुजराती शब्द इधर-उधर पाये जाते हैं।

बालाशंकर उल्लासराम कंथारीआ (ई० स० १८५६–१८९८)

इनका जन्म नडियाद मे सन् १८५६ में हुआ और मृत्यु सन् १८९८ में हुई।[1] ये साठोदरा नागर थे। इन्होंने दलपतराम से काव्य शिक्षा ग्रहण की।[2] इन्होने गुजराती साहित्य की अनन्य सेवा की है। बालाशंकर कंथारीआ कवि, लेखक, पत्रकार, इतिहासविद तथा पुरातत्त्ववेत्ता थे। ये अरबी, फारसी, संस्कृत अंग्रेजी और ब्रज भाषा मे बहुत ही निपुण थे। इन सभी भाषाओ से साहित्य सौरभ का संचयन करके इन्होने गुजराती भाषा एवं साहित्य को अपना विशिष्ट योग प्रदान किया।

बालाशंकर ने भारती भूषण, इतिहासमाला इत्यादि सामयिकों का सफल संपादन किया। भारती भूषण मे ये गुजराती और ब्रज के प्राचीन अप्रकाशित कार्यों को प्रकाशित किया करते थे। कर्पूर मंजरी तथा मृच्छकटिक जैसे नाटकों का इन्होने गुजराती मे अनुवाद किया है।[3] 'साहित्य दर्पण' एवं 'नारदभक्ति सूत्र' जैसे गद्य ग्रन्थों का भी इन्होने गुजराती अनुवाद किया था। फारसी में से हाफिज़ की गजलों का अनुकरण करके बहुत सी गजलें इन्होंने लिखी हैं। ये गुजराती साहित्य के हाफिज़ माने जाते हैं।

गुजरात में ब्रजभाषा में लिखित 'प्रवीणसागर' के समान एक महान कृति 'साहित्यसिन्धु' नामक काव्य शास्त्र के ग्रन्थ के संपादन का कार्य इन्होंने शुरू किया था। रस एव अलकारों के दृष्टांत देने के लिए अपने बनाये हुए कई पद एवं कवित्त उन्होंने इस ग्रन्थ मे जोड़े थे। इस ग्रन्थ में हिन्दी के कई अन्य कवियो की कविता से भी उन्होने उदाहरण दिये हैं। दलपतराम एवं बालाशंकर की ब्रजभाषा की कविता की तुलना करने पर दोनो की सजीव शक्ति की विभिन्नता प्रतीत होती है। गुजराती की अपेक्षा ब्रजभाषा में दलपतराम की सर्जक शक्ति शुद्ध काव्य के स्वरूप मे विशेष प्रकट हुई है। फिर भी इनका काव्य तत्कालीन भाषा कविता मे प्रचलित शब्दार्थ चमत्कृतिमय बाह्य कौशल से अधिक गहरा नही प्रतीत होता, पर बालाशंकर की रचनाएँ केशव एवं रसखान की तरह अनुभूति की गहराई तथा कल्पना की सर्जकता से सुशोभित हैं; जैसे—

---

[1] साहित्य प्रवेशिका—हि० ग० अजारिया, पृ० ५० ।

[2] अर्वाचीन कविता (द्वितीय संस्करण)—सुन्दरम् पृ० १५८ ।

[3] वही, पृ० १७० ।

आँखि नहीं बरखा बदरा यह आंसु नहीं जग जीवन धारा।
धार चली यह नाही कपोल यही वृजधार सों भींजो सुधारा॥
आंखों की मेखोनमेख नहीं पेचहु चपला चहुकी हैं अपारा।
आंसु से भींज गये पिय आखर नाथ ही मत्त मयूरन हारा॥[1]

श्री उमाशंकर जोषी जी ने 'क्लांत कवि' नामक पुस्तक में इस कवि का सम्यक् मूल्याङ्कन किया है।

राजा साहब अमरसिंह जी

ध्रांगध्रा के झाला राजाओं ने भी स्वयं हिन्दी मे काव्य रचना करके एवं हिन्दी कवियों को आश्रय देकर सरस्वती देवी की महती साधना की है।

राजा साहब अमरसिंह जी ने ध्रागध्रा की गद्दी पर ई० सन् १८०४ से १८४८ तक राज्य किया। इनको साहित्य मे बहुत ही रुचि थी। ये प्रायः भक्ति भाव मे तल्लीन होकर गुजराती मे स्तुति, भजन इत्यादि रचा करते थे ऐसा कहा जाता है। इनकी रचनाएँ मुख्यतया गुजराती में ही हैं। पर इनकी रचनाओं में हिन्दी का पुट भी पाया जाता है। साहित्यिक दृष्टि से इनकी रचनाओं का अधिक मूल्य नही है।

राजा साहब रणमल्ल सिंह जी

ये राजा साहब अमरसिंह जी के कुमार थे। अमर सिंह सन् १८४८ में स्वर्गवासी हो गए। तदनंतर रणमल्लसिंह जी ३२ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे एवं सन् १८६६ में २६ वर्ष राज्य करके स्वर्गवासी हुए। राजा साहब अच्छे विद्वान थे।[2] इन्होने भक्ति, नीति एवं शृङ्गार विषयक कई पद हिन्दी मे लिखे हैं। इनके पदों का माधुर्य एवं लालित्य इनको उच्च पंक्ति के कवि का स्थान देने में समर्थ है।

राजा साहब मानसिंह जी

ध्रांगध्रा के राजा साहब रणमल्ल सिंह जी की मृत्यु के बाद इनके ज्येष्ठ राजकुमार मानसिंह जी गद्दी पर बैठे। वंश-परम्परा से ही इनको साहित्यिक अभिरुचि प्राप्त हुई थी। संस्कृत, फारसी तथा ब्रजभाषा में इनकी बहुत ही योग्यता थी। इनको अलंकार शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था और इनकी रचनाओं मे सभी रस पाये जाते हैं। फिर भी इनकी कविता का मुख्य रस शृङ्गार है। इन्होने ब्रजभाषा में कई पदों की रचना की है।

---

[1] अर्वाचीन कविता (द्वितीय संस्करण)—सुन्दरम्, पृ० १६०-१६१।

[2] मिश्रबन्धु विनोद, तृतीय भाग (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० ११७०।

पिंगल सिंह पाताभाई गढवी

पिंगल सिंह भावनगर के महाराजा भावसिंह जी के राज कवि थे। इन्होने ई० सन्० १८७७ मे 'तख्त प्रकाश' और ई० सन् १८९६ मे महाराज भाव सिंह जी की प्रशस्ति मे 'भावभूषण' नामक सुन्दर ग्रन्थ का प्रणयन किया है। ये जाति के चारण थे। इनकी कई पीढ़ियाँ इसी राज्य के आश्रय मे बीती थी। इनके पिता पाताभाई गढवी भी व्रजभाषा मे कविता किया करते थे। पाता भाई ने 'जसविलास' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ व्रजभाषा मे लिखा है।

पिंगलसिंह गढवी की रचनाओ में भावभूषण' ग्रन्थ सर्वोत्तम है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना सवत् १८५८ मे की थी। कवि ने इस ग्रन्थ के दो भाग किये हैं। प्रथम भाग मे कवि ने लगभग १६० पृष्ठो मे महाराज भावसिंह जी के राजवश का विस्तृत परिचय दिया है। द्वितीय भाग मे कवि ने ११० अलकारो के लक्षण उदाहरण सहित दिये हैं। प्रत्येक अलकार के उदाहरण मे महाराजा भावसिंह जी की प्रशसा की गई है। 'भाव भूषण' हिन्दी साहित्य के उत्कृष्ट ग्रन्थो मे अवश्य ही मूर्धन्य स्थान ले सकता है।

हीराचन्द कानजी कवि

ये मोरबी (सौराष्ट्र) के निवासी थे और दलपतराम एव नर्मद के समकालीन थे। व्रजभाषा में इनकी बहुत ही योग्यता थी। उनके 'पिंगलादर्श', 'हीरा शृ गार' एव 'सुन्दर शृङ्गार नाम के व्रजभाषा के ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

पिंगलादर्श में इन्होने प्रारम्भ मे कवि तथा कविता के विषय में लिखा है। बाद मे ४०० छन्दो के लक्षण और उदाहरण उन्ही छन्दो मे दिये हैं तथा उनका अर्थ गुजराती मे समझाया है। पिंगलादर्श को तैयार करने के लिए कवि ने अनेक सस्कृत एव व्रजभाषा के ग्रन्थो का अध्ययन किया था।

इनके 'हीरा शृङ्गार' तथा 'सुन्दर शृङ्गार' दोनो ग्रन्थ शृङ्गार विषयक है। गुजरात मे व्रजभाषा का अध्ययन करने वाले इन ग्रन्थो का अध्ययन अवश्य करते थे।

इनकी कविता मधुर एव प्रभावोत्पादक है।

राधाबाई

ई० स० १८३४ मे इन्होंने रामनाथ महादेव (बडोदा) मे एक अवधूत से दीक्षा ली थी और शेष जीवन उन्ही के साथ रहकर ईश्वर भक्ति मे व्यतीत किया था।[1]

ये कृष्ण की भक्त थी। आकर्षक व्यक्तित्व होने से सब जगह इनका

---

[1] प्राचीन काव्य माला भाग ६, प्र० प्राच्य विद्या मन्दिर, वडोदा।

सत्कार किया जाता था। राधाबाई का जीवन सामान्यतः बड़ौदा में ही बीता। इन्होने अवधूत बाबा के साथ तीर्थयात्रा भी की थी। ये अपने गुरु का बहुत ही आदर करती थी। गुरु के सम्पर्क से एव देशाटन से राधाबाई कई भाषाएँ जानती थी। इनकी शब्द योजना बड़ी विचित्र और मनमानी है। इन्होंने हिन्दी में स्फुट पद रचना की है।

जामसुता जाडेजी श्री प्रतापबाला

ये जामनगर के महाराजा रिडमलजी की पुत्री तथा जोधपुर के महाराज श्री तख्तसिंह जी की महारानी थीं। इनका जन्म सम्वत् १८९१ (ई० स० १८३५ मे) और विवाह सम्वत् १९०८ (ई० सन् १८५२) मे हुआ था। ये दयालु, प्रजावत्सल और स्वधर्म पर श्रद्धा रखने वाली विदुषी थी। इन्हें कविता करने का शौक था। इनके पद 'प्रताप कुवरी रत्नावली' मे प्रकाशित हुए हैं। इनकी रचनाएँ बहुत ही सरस और भक्ति-भावना से ओतप्रोत हैं।

वजमलजी महेडु

सौराष्ट्र के बारोट वजमलजी परवत जी महेडु ने जामनगर के जाम विभाजी के आश्रय मे 'विभाविलास' नामक वृहत् ऐतिहासिक काव्य लिखा है। यह काव्य ई० स० १८७६ में लिखा गया है। भाषा और भाव की दृष्टि से यह काव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

उद्धव उपनाम औघड़

इस कवि का उल्लेख मिश्रबन्धु विनोद मे इस प्रकार मिलता है[1] :

नाम—१९१४/१ : उद्धव उपनाम औघड़

ग्रन्थ—कर्णजस्तमणि २, कुकवि कुगर

कविता काल—१९०० के पूर्व

विवरण—लखतर काठियावाड़ वासी औदीच्य ब्राह्मण थे।

इनका जन्म सन् १८४१ में हुआ। ई० स० १८६९ के लगभग इन्होंने लखतर दरबार में रहकर श्री करणसिंह जी के नाम से कर्णजस्तमणि नामक ग्रन्थ बनाया। इनका ब्रजभाषा पर अच्छा अधिकार था।

होथी साहब

होथी साहब जाति के मुसलमान थे और मोरार साहब के शिष्य थे।[2] मोरार साहब की वाणी से प्रभावित होकर वे घर से निकल पड़े थे। उन्होने भी गुरु-परम्परा के अनुसार हिन्दी एव गुजराती मे पद रचना की है। उनके पद भजन सागर में संगृहीत हैं।

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय आवृत्ति) तृतीय भाग—मिश्रबन्धु, पृ० १०७६।
[2] गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २१२।

जीवणदास

आप मध्य सौराष्ट्र के निवासी थे और जाति के चमार थे। आप विक्रम साहब के शिष्य भीम के शिष्य थे। प्रत्येक पद की अन्तिम पंक्ति में उन्होंने दासी जीवन की छाप लगा दी है।[१] गुरु-परम्परा के अनुसार उन्होंने भी गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी में पद लिखे हैं। सन्तों को हरिस्वरूप मानकर अनेक पदों में उन्होंने अपने आपको सन्तों की भी दासी कहा है। उनकी कविता का एक उदाहरण देखिए—

> राम समर मन राम समर ले, अरे मूर्ख क्यों मन सूता। टेक
> जाग्रत नगरी चोर न लूटे, जब मारेगा जमदूता॥ राम०
> जप कर तप कर कोटि यश कर, काशी जब करवत लेता।
> मूआ पछी मुक्ति नही होवे, रण में सरजे जमदूता॥ राम०
> जोगी होकर जटा बढ़ावे, अंग लगावे भवभूता।
> टुमडी कारण देहि जलावे, सो जोगी नहि जमदूता॥ राम०
> जोगी होय सो जगम रहेवे, कम क्रोधकु दे दडा।
> अधर तख्त पर आप विराजे, सो जोगी हय अवधूता॥ राम०
> सूता सो नर गया चोराशी, जाग्या सो निरभे होता।
> दास जीवण गुरु भीमने चरणे, अनुभवी अनुभव लेता॥ राम०[२]

दीन दरवेश

दीन दरवेश १९वीं शती के पूर्वार्ध में विद्यमान थे। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें सौराष्ट्र और मेनारिया जी ने मेवाड का सिद्ध करने की कोशिश की है। दीन दरवेश ने पालनपुर के नवाब शेरखां और बडौदा के महाराज फतेसिंहराव के निधन पर जो कुंडलियाँ लिखा हैं, उनसे अनुमान किया जा सकता है कि वे गुजरात के ही होंगे। गिरनार के बालगिरि जी से इन्होंने दीक्षा ली थी।

पूर्वाश्रम में आप ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में मिस्त्री का काम करते थे। युद्ध में एक हाथ कट जाने पर आप काम काज छोडकर फकीर बन गये और देशाटन करने लगे। ज्ञान प्राप्ति करने के पश्चात् ये घूम घूमकर उपदेश देने लगे। दीन दरवेश वृद्धावस्था में वाराणसी चले गये थे तथा वहीं इनका निधन हुआ। उन्होंने स्वतन्त्र जीवन, विश्वप्रेम, परोपकार, ईश्वरभक्ति, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य एवं ज्ञान-वैराग्य के विभिन्न पहलुओं पर कुंडलियाँ लिखी हैं।

---

१ गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)—अनन्तराय रावल, पृ० २१३।

२ श्री भजन सागर, प्र० सस्तु साहित्य, अहमदाबाद, पृ० २१२।

कहान

आप सिद्धपुर के निवासी थे।[1] आप प्रसिद्ध सन्त दीन दरवेश के समकालीन थे। उन्होंने सन् १८१९ के लगभग कुछ कुंडलियाँ लिखी हैं। कहते हैं कि सिद्धपुर के मेले में इनका दीन दरवेश से एक कुंडलिया की रचना पर वादविवाद हुआ था।[2]

कल्याण

आप डाकोर (गुजरात) के थे। उनका कविताकाल ई० सन् १८४५ तक कहा जाता है। उन्होंने हिन्दी मे छन्दभास्कर एवं रस-चन्द्र नामक दो ग्रन्थों की रचना की है। इनका अखाड़ा अभी तक डाकोर मे है।[3]

भाण

भाण मांडवी के निवासी गिरनारा ब्राह्मण मानजी के पुत्र थे। १८४४ ई० के पूर्व इन्होंने भाण-विलास और भाण-बावनी नामक ग्रन्थों की रचना की है।[4] उनकी रचनाओं में बाह्याडम्बरो का त्याग कर आत्मा को पहचानने का उपदेश है।

सवितानारायण

इनका जन्म ई० सन् १८४० में सुरत मे हुआ था। ये बड़नगरे नागर थे और शिक्षक थे। इन्होंने विश्वेश्वरनाथ नामक एक ब्राह्मण पंडित से पिंगल एवं अलंकार शास्त्र का अभ्यास किया। ये ब्रज भाषा और गुजराती दोनों में कविता करते थे।

इनकी हिन्दी कृतियाँ अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं। इन्होंने कई संस्कृत एवं ब्रजभाषा के ग्रन्थों के गुजराती अनुवाद किये। इन्होंने अनेक काव्य ग्रन्थो की टीका लिखकर गुजराती भाषा को समृद्ध करने तथा गुजराती एवं हिन्दी को एक दूसरे के निकट लाने की कोशिश की है। नीति सुधा तरंगिनी, सप्ता संवरण, विहारी सतसई, कविप्रिया, श्रीकृष्ण प्रेमामृत रसायण आदि हिन्दी रचनाओं का उन्होंने गुजराती में अनुवाद और सटीक संपादन किया है।

महात्मा हरिदास

ये सौराष्ट्र के कुंतलपुर के रहने वाले थे। उनके पिता का नाम भाणजी था। ये गुजराती के साथ-साथ हिन्दी में भी कविता कर लेते थे। यह निश्चय

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद, भाग २ (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० ८९४।

[2] वही, पृ०।

[3] वही, पृ० ८२७।

[4] मिश्रबन्धु विनोद, तृतीय भाग (द्वितीय संस्करण)—मिश्रबन्धु, पृ० १०७९।

पूर्वक नही कहा जा सकता कि उनका जन्म कब हुआ। पर ये ई० सन् १८३४ में वर्तमान थे ही।[१] वे बहुत कम पढे-लिखे थे। पर सत्सग से और अनुभव से उन्होंने बहुत ही ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सौराष्ट्र के दीवान रणछोड जी उनका बहुत ही आदर करते थे। उनके सम्पर्क से शुरू मे ये शिव भक्ति के पदो की रचना करते थे। पर बाद में उनकी कविता से साम्प्रदायिकता दूर हो गई। उन्होंने भी गुजराती के साथ-साथ हिन्दी में भी काव्य रचना की है। उनकी कविताओं का सग्रह हरिदास काव्य नाम से प्रकट हुआ था।[२]

---

१ हरिदास काव्य, स० दामोदर हीरजी जगड।

२ वही।

आठवाँ प्रकरण

गुजरात के वीसवीं शती के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य को देन

प्रत्येक शती के गुजराती कवियों और उनकी कृतियों से हम परिचित हो रहे हैं। आरम्भ से लेकर उन्नीसवीं शती तक गुजरात के कवियों ने किस तरह हिन्दी काव्य साहित्य को समृद्ध बनाया यह हम देखते आये हैं। अन्य शताब्दीयों की तरह इस वर्तमान शताब्दी में भी हिन्दी गुजरात में काफी लोकप्रिय रही। हिन्दी के लिए आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती एवं वड़ोदा के राजा सयाजीराव गायकवाड़ ने जो किया वह सभी भारतवासी जानते ही हैं। इन दो महापुरुषों के शुभ प्रयास से गुजरात में हिन्दी को बहुत ही प्रोत्साहन मिला। तदनन्तर महात्मा गांधी जी के प्रयासो से भारत के अन्य प्रदेशों की तरह गुजरात मे भी राष्ट्रभाषा प्रचार जोर-शोर से होने लगा। गुजरात अन्य अहिन्दी भाषी प्रदेशों की तुलना में हिन्दी को अपनाने में आगे रहा है यह कहने में अत्युक्ति नही है। सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक कारणो से व्रजभाषा (हिन्दी) हमेशा गुजरात मे लोकप्रिय रही है यह तो हम देख ही चुके है। पर इस शताब्दी मे हिन्दी गुजरात मे बहुत ही लोकप्रिय हो रही है और विद्यालयां एव महाविद्यालयों मे अब हिन्दी के उचित शिक्षण का भी प्रबन्ध हो गया है। अतः गुजरात जैसे अहिन्दी प्रदेश से 'प्रसाद' या 'पन्त' की कविताओं के समकक्ष हिन्दी काव्य का सर्जन करने वाला कोई-कवि पैदा भी हो तो उसमें आश्चर्य नहीं है।

इस शताब्दी के केवल ६३ वर्ष बीत चुके है । ३७ वर्ष अभी शेष हैं । अत इस शती के कवियो एव काव्यो के विषय मे समीक्षा करने में बहुत ही कठिनाई है । फिर भी इस प्रकरण मे इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखे गये काव्यों की आलोचना करने की कोशिश की जायेगी ।

इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियो मे अविनाशानन्द, काजी अनवरमिया 'शानी', दूलेराम काराणी, कु वरजी नथु वैद्य, दूला भाया काग, रग अवधूत महाराज, मूलदास एव सौ० इन्दुमती ह० देसाई जी मुख्य हैं । इनमे से दूला भाया काग, रग अवधूत महाराज, मूलदास एव सौ० इन्दुमती ह० देसाई जी तो अब भी अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिमा स गुजराती काव्य साहित्य के साथ साथ हिन्दी काव्य साहित्य को भी अपनी उत्कृष्ट रचनाओ से अधिक समृद्ध कर रहे हैं । इन सभी की रचनाओ की ओर हिन्दी प्रदेश के विद्वानो का ध्यान आकर्षित होना ही चाहिए, तभी ये उनकी समुचित प्रशसा करने में समर्थ होंगे ।

इन कवियो के अतिरिक्त भी गुजराती साहित्य के प्रमुख कवियो म से उमाशकर जोशी, सुन्दरम् प्रियकान्त मनियार, राजेन्द्र शाह एव कई अन्यो ने कई सर्वोत्कृष्ट हिन्दी गीतो की रचना की है । इन सभी कवियो से हिन्दी काव्य साहित्य को अधिक सवर्धन एव बल मिलेगा ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है । अब इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियो एव इनकी कृतियो का अध्ययन करेंगे ।

श्री अविनाशानन्द जी

इनका जन्म सवत् १८९० में वीरमगाम (गुजरात) म हुआ था । ये विसलनगरा नागर थे । इनके पिता का नाम भवानीशकर तथा माता का नाम यमुनाबाई था । इनका मूल नाम मोती लाल था । इन्होंने खाडीआ (अहमदाबाद) के पास रहने वाले बापु शास्त्री से सस्कृत का अध्ययन किया था । ये अपने पिता के साथ सारगपुर में खमार की गली (अहमदाबाद) म रहते थे । इनके बडे भाई बापालाल तथा इनकी भाभी भी साथ ही रहते थे । कहते हैं कि ये अपनी भाभी का बनाया हुआ खाना खाते थे । एक दिन जाति भोज का निमत्रण आने पर भी कवि वहाँ खाना खाने के लिए नही गये और घर म ही खिचडी बनाकर भोजन करने की तैयारी की । भाभी ने अपने श्वसुर स इसकी फरियाद की तो श्वसुर ने खिचडीवाली थाली खीच ली । इस घटना से कवि का ससार से रस उड गया । ये क्रुद्ध होकर जेंतलपुर म मन्दिर मे आनन्द-स्वामी के पास जाकर रहे । उस गाँव मे यमुना बाई की काका गगामा रहती

थी और इस समय यमुनाबाई अपनी काकी की सेवा कर रही थी। कवि जेतलपुर में आनन्दानन्द स्वामी के पास केवल दस ही दिन रहे। इस समय में ही इनको तीव्र वैराग्य हुआ। यमुनाबाई अपने पुत्र को लेकर अहमदाबाद आई और थोड़े समय के बाद इनका यज्ञोपवीत संस्कार किया। उसी समय ही इन्होंने ब्याह करने से स्पष्ट इनकार कर दिया। तब शीघ्र ही इनको अहमदाबाद के स्वामी नारायण मन्दिर में ले गये और श्री अयोध्या प्रसाद जी महाराज की निगरानी में रखे गये। अयोध्या प्रसाद जी ने फिर इनको वासुदेवानन्द स्वामी को सौंपा। इन दोनों महापुरुषों का कवि पर अनुग्रह था। थोड़े समय के बाद दीक्षा देकर आचार्य श्री ने इनका नाम अविनाशानन्द रखा। इनकी कविता की रुचि को देखते हुए आचार्य श्री ने इनको भुज (कच्छ) की प्रसिद्ध काव्यशाला में भेजा। वहाँ कई वर्षों तक इन्होंने काव्य, रस, पिंगल आदि का अध्ययन किया। वहाँ से वे काव्य रचना किया करते थे। तत्पश्चात् आचार्य अयोध्या प्रसाद जी ने इन्हें बुला लिया तथा अपने साथ छपैया ले गये।

अविनाशानन्द का जीवन अत्यन्त धार्मिक तथा प्रभुपरायण था। ये माणसा के मन्दिर के महन्त भी रहे थे ऐसा कहा जाता है पर इनकी उग्र प्रकृति के कारण माणसा के भक्तराज नरसीभाई के साथ इनका झगड़ा हो गया। इसलिए वहाँ का काम छोड़कर ये मकालाड में रहने लगे।

कवि के भतीजे रा० चुनीलाल केशवलाल के मत से इनकी मृत्यु संवत् १६३१ के मार्गशीर्ष वद ३ के दिन वरसोड़ा गाँव में हुई थी।

इन्होंने वासुदेव माहात्म्य, निष्काम शुद्धि, भाषा भूषण, कविप्रिया, भाषा व्याकरण, काव्य कुतोल, रसरहस्य, हरिरस पिंगल, भगवत पिंगल, वेदांतचूर्ण आदि ग्रन्थों की रचना की है।[1]

अविनाशानन्द काव्य में इनके स्फुट पदों का संग्रह किया गया है। इसमें संतों के लक्षण, सत्संगी कुसंगी के लक्षण, पतिव्रता एवं शंखिनी नारी के लक्षण, असंत के लक्षण, श्रीजी की बाल लीला, दानलीला, एवं अन्यान्य विषयों पर सुन्दर काव्य हिन्दी भाषा में मिलते हैं। इनकी भाषा प्रासादिक एवं मधुर है।

इनकी शैली एवं रस के लिए निम्नलिखित शृंगारिक पद दृष्टव्य हैं—

छैल छुवो न छतियाँ हमार, फटिगो मेरे अंचरवा।
लाख टके की लीनी सारी बिहारी नागर नन्द कुमार।।

---

[1] अविनाशानन्द काव्य, पृ० ६।

उरज उतग नही श्याम चतुर पिया, नाजुर नवीन लगार।
लोक नगर के देखे डगर मे ठाडे सब नरनार॥
अविनाशानन्द कु जेल न कीजो, छोटी में अति सुकुमार॥[1]

काजी अनवर मियां 'ज्ञानी' (१८४३-१९१६)

काजी अनवर मिया 'ज्ञानी' के पूर्वज अरब के निवासी थे।[2] वे कुरेशी वश मे पैदा हुए थे और इसी वश मे मुस्लिमो के महान पैगम्बर हजरत मुहम्मद भी पैदा हुए थे। मुस्लिमो का भारत मे राज्य होने पर धर्म के सुधार के लिए उनके पूर्वज भारतवर्ष मे आकर दिल्ली मे रहे थे। तदनतर गुजरात मे मुसलमानो के राज्य होने के समय पर गुजरात के पाटण शहर मे उनके पूर्वज आये थे।[3] इनके पूर्वजो का काजी (न्यायाधीश) का काम दिया गया था और वीसनगर मे उनको जागीर दी गई थी।

काजी अनवर मिया का जन्म वीसनगर मे विक्रमार्क १८९९ के वैशाख वद ७ शुक्रवार के दिन हुआ था। उनके पिता का नाम आजामिया अनुमिया था। बचपन से ही ये सत्सग एव एकान्त चिन्तन के प्रेमी थे। ईश्वर की ओर उनकी प्रीति बढती गई और ससार नीरस प्रतीत होने लगा। अत सत, साधु, सन्यासी, यति, फकीर, पीर इत्यादि वैरागी पुरुषो से उनका सपर्क बढता गया। फलत हृदय के ईश्वर प्रेम के आवेश से वे एकान्त मे रहने लगे।

ये अपनी युवावस्था में आत्म कल्याण के लिए जगल मे और कब्रिस्तान मे पीर की कब्रों के पास एकान्तता से रहते और अनेक कष्ट सहन करते। इस तरह कई बार वे जगल और कब्रिस्तान मे चले जाया करते। अन्त में महासुख भाई के अग्रज हठीसग चुनीलाल के कहने से शहर में ही मस्जिद मे रहकर प्रभुभक्ति करने लगे।[4]

सामान्यतः इनका स्वास्थ्य ठीक रहता था। सवत् १९७२ के कातिक मास मे स्वास्थ्य बिगडने से ये पालनपुर गये। थोडे समय की बीमारी के बाद सवत् १९७२ के पोस वद २ दिनाक २२-१-१९१६ ई० शनिवार हिजरी

---

१ अर्वाचीन कविता (द्वितीय संस्करण)—सुन्दरम्, पृ० ५२४।
२ मुहूंम महात्मा ज्ञानी काजी अनवर मियानु जीवन चरित्र—अनवर काव्य की भूमिका मे, महासुखभाई चुनीलाल पृ० ११।
३ वही।
४ वही, पृ० १३।

सन् १३३४ माहे रबीउल अव्वल की १९ तारीख के दिन मध्याह्न २॥ बजे ७३ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।[1]

उनके निधन के पश्चात् उनके शिष्य हठीसिंह चुनीलाल तथा महासुखलाल चूनीलाल ने 'अनवर काव्य' नाम से उनके काव्य का एक संग्रह प्रकट किया। इस संग्रह में उनकी गरबियां, भजन, पद, गजल, नसीहत इत्यादि मिलते हैं। आपने खड़ी बोली में ही अधिक लिखा है।

उनके काव्य में विजय ज्ञान, वैराग्य एवं आत्मबोध है। पदों के अन्त में इन्होंने अपना नाम 'ज्ञानी' लिखा है। उनकी रचनाएं गुजरात में बहुत ही लोकप्रिय हैं।

उनकी वाणी में चमत्कृति अपने आप आ जाती है। कबीर इत्यादि संतो का लाघव, सुन्दर उक्तियाँ एव बल उनकी वाणी में है।[2] हिन्दी पदों में कई उत्तम संगीत क्षम सुन्दर चीज भी उन्होंने दी हैं। सम्प्रदायवादी मुसलमानों को उन्होंने खूब फटकारा है। हमारे थोड़े संत कवियों मे अनवर 'ज्ञानी' को मानार्ह एवं आग्रम स्थान मिलता है।[3]

दूलेराय काराणी

दूलेराय काराणी कच्छ भुज के सहायक शिक्षणाधिकारी थे। इन्होंने भी ब्रजभाषा में कविता की हैं। इन्होंने गांधी बावनी नामक १९४८ में प्रकाशित ग्रंथ मे गांधी जी की महत्ता का वर्णन कविता मे किया है। इनकी भाषा मधुर एवं प्रासादिक है। इनकी हिन्दी कविता का उदाहरण देखिए—

काहे को तू योगी भयो, काहे को वैराग्य ग्रह्यो।
काहे को तपस्वी बन तन को तपायो है।
काहे को वस्त्रालंकार सुन्दर शृङ्गार तज्यो,
काहे को कोपीन एक, अंग पे लगायो है॥
काहे को अमीरी छोड़ी काहे को फकीरी भयो,
काहे को मधुर तर भोजन भायो है।
काराणी कहत लीनो, काहे को कठिन पथ,
भारत के योगी योग काहे को, जगायो है॥

—गांधी बावनी

---

[1] मर्हुम महात्मा ज्ञानी काजी अनवर मियाँनु जीवन चरित्र, अनवर काव्य की भूमिका में महासुखभाई चुन्नीलाल, पृ० १५-१६।

[2] अर्वाचीन कविता (बीजी आवृत्ति)—सुन्दरम्, पृ० ४९८।

[3] वही, पृ० ४९९।

कुंवरजी नथु वैद्य

इनका जन्म सम्वत् १६०४ के आषाढ़ वदी ४ के दिन और निधन सम्वत् १६४६ के वैसाख वदी ८ के दिन हुआ था।[१] ये साधु चरित एवं परोपकारी थे। इनके कीर्तन एवं भजनों का संग्रह इनके देहान्त के बाद इनके सुपुत्र अमृतलाल कुंवरजी वैद्य ने 'कुंवर जी कीर्तन संग्रह अने भक्ति विवेक' नाम से प्रकाशित करवाया था।

इनके भजनों मे प्रसाद है। भक्ति की थोड़ी झलक भी है। गुजराती रचना की तुलना मे इनकी हिन्दी रचनाएँ अधिक सुन्दर हैं।[२] इनकी हिन्दी कविता के उदाहरण देखिए :

(१)

पिया बिन्नु कोन कटेजी मोरी रतियाँ,
पिया परदेशी मेरो शाम बिनु फट गइ छतियां।
दे दे सन्देशा मैंने पिया कु बोलाया,
मेरा कर थक गया लिखी लिखी पतियाँ।
कुंवरजीनो रे कन्थ हठीलो,
स्नेह दीपन की झाड़ गई बतियाँ।[३]

(२)

ऐसी राधे गोरटी रे, चोरटी आहिर की।
कसुम्बा को रंग चोर्यो, चन्द्र को बदन चोर्यो॥
कोकिला को कंठ चोर्यो, नासा चोरी कीर की॥ ऐसी० १
गज केरी चाल चोरी, इन्द्र को गुमान चोर्यो।
केसरी को लंक चोरी, दामनी शरीर की॥ ऐसी० २
नाग की नागनीयाँ चोरी, दाडिम की कलियाँ चोरी।
मृग केरां नेनाँ चोर्यो, छल बल मीन की॥ ऐसी० ३
रती-रती सब को चोर्यो, सामरा को चित्त चोर्यो।
गुर कहे दरशन दीजे, ठाड़ो जमुना तीर को॥[४] ऐसी० ४

---

[१] कुंवरजी कीर्तनसंग्रह की प्रस्तावना, प्र० अमृतलाल कुंवर जी वैद्य, पृ० ५।

[२] अर्वाचीन कविता (द्वितीय संस्करण)—सुन्दरम्, पृ० ५२१।

[३] वही।

[४] कुंवरजी कीर्तन संग्रह, प्र० अमृतलाल कुंवरजी वैद्य, पृ० ४३।

(३)

सदा विहरत रहैं वृन्दावन में,
नाम करण अवसर शीर नायो।
आशिष पाइ मगन भए मन में ॥ सदा विहरत० १
गोवरधन वन उपवन फिरहुँ,
करहुँ अलौकिक काल कुंजन में ॥ सदा विहरत० २
गोप गोवालनी के ऊपर बसहुँ,
नेह लगाई नये व्रज वन में ॥ सदा विहरत० ३
कुंवरजी मनमोहन रसिया,
युगल बीच रहुँ नन्द अगन में ॥[1] सदा विहरत० ४

इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि व्रजभाषा पर इनका काफी प्रभुत्व था। आधुनिक काल के हिन्दी सेवी गुजराती कवियो में इनका प्रदान विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है। गुजरात मे कीर्तन करने वाली मन्डलियों में तथा भक्तो में कुंवरजी के पद बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

दूला भाया काग (जन्म ई० १६०३)

इनका जन्म भावनगर के मजादर गाँव में सन् १६०३ मे हुआ। वंश परम्परा से कृषि का व्यवसाय होते हुए भी ये लोक सेवा एवं साहित्य में बाल्य काल से ही रस लेने लगे। बाल्यकाल से ही रामायण-महाभारत जैसे महाकाव्य एवं चारणी साहित्य के प्रति ये आकर्षित हुए। दूला काग को स्वामी मुक्तानन्द जी से कविता करने की प्रेरणा मिली थी। गुजरात के चारण कवियों में इनका मूर्धन्य स्थान है। गुजराती के साथ-साथ इन्होंने हिन्दी में भी कविता की है।

इनकी रचनाएँ कागवाणी (तीन भाग) नाम से प्रकाशित हुई हैं। चारण होने से इनको हिन्दी मे काव्य रचना करने का बहुत ही उत्साह है। इन्होने गुजराती के साथ-साथ हिन्दी में भी दोहे, छप्पय, भजन, गीत इत्यादि की रचना की है। छन्द और भाषा पर इनका प्रभुत्व इनकी रचनाओं को सफल एवं चिरंजीवी बनाने में योग देता है। इनकी साहित्य सेवाओं एवं सामाजिक कार्य की सराहना करते हुए भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मश्री' उपाधि से विभूषित किया है। इनकी हिन्दी रचना के उदाहरण देखिए :

[1] कुंवरजी कीर्तन संग्रह, प्र० अमृतलाल कुंवरजी वैद्य, पृ० १३१।

निर्मल की निर्मल सेवा से, मंगल भोजन पाती हूँ।
काग हर्ष धरी रात दिवस में कृष्ण के मंगल गाती हूँ[1] ॥ ६ ॥

अन्य गुजराती कवियों की तरह इनकी हिन्दी रचनाओं मे भी कभी-कभी गुजराती शब्द आ जाते हैं। फिर भी इतना अवश्य ही कहा जा सकता है कि इनके हिन्दी काव्य भी उच्च कोटि के ही हैं।

सौ० इन्दुमती ह० देसाईजी

आपका परिवार गुजरात में बहुत ही प्रसिद्ध है। 'देसाईजी-भड़ोच' कहने से सभी इस परिवार को एव इस परिवार के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक योगदान को पहिचान लेते हैं। इनके पिता स्व० माणेकलाल साकरलाल देसाई पहले बड़ोदा रियासत मे रेवन्यु विभाग में दीवान (सरसुबा) थे। वहीं से निवृत्त होने के बाद लूणावाड़ा (गुजरात) रियासत के दीवान हुए थे। इनके चाचा दि० ब० अम्बालाल साकरलाल देसाई बड़ौदा मे मुख्य न्यायाधीश के पद पर थे। सारे गुजरात मे दि० ब० अबालाल का सुयश अब भी फैला हुआ है। बहुत वर्ष पहले इनके श्वशुर के परिवार में एक महिला सती हुई थी जिनके विषय में 'सती चुनी (देसाई जी)' नामक पुस्तिका में श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी ने विस्तार से लिखा है। इनको धर्म एवं कृष्णभक्ति के संस्कार मातृपक्ष एवं श्वशुर पक्ष—दोनों से—विरासत में मिले हैं।

इनका जन्म संवत् १९५१ मे पेटलाद में स्व० मणीभाई जराभाई के घर मे ब्रह्मक्षत्रिय परिवार मे हुआ था। इनकी माता का नाम अतिलक्ष्मी बहन था। इन्होंने अंग्रेजी का १०वीं कक्षा तक अध्ययन किया है। साहित्य में अभिरुचि होने से इन्होंने गुजराती एव सस्कृत साहित्य का पर्याप्त परिशीलन किया है। साहित्य के अतिरिक्त 'नर्सिंग' तथा 'होम हाइजीन' में इनकी बहुत रुचि है।

साहित्य के प्रति अभिरुचि तो आरम्भ से ही थी। पर ई० स० १९३३ से भागवत प्रेरणा से एव अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से लेखन प्रवृत्ति का अत्यधिक विकास होता गया। इनके काव्य संग्रह श्री कृष्ण मंजरी (दो माला) के दो भाग प्रकट हो चुके है। प्रत्येक भाग (माला) मे १०८ काव्य है। दो माला प्रकट हो सकें उतने काव्य लेखिका के पास पाडुलिपि मे पड़े हुए हैं। इन्होंने गुजराती के साथ-साथ हिन्दी भाषा मे भी कई उत्तम काव्य लिखे हैं। गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध लेखक श्री रमणलाल देसाई एवं अन्य साहित्यिकों ने इनकी कृतियों की बहुत ही प्रशंसा की है। इनके काव्यो की भाषा प्रासादिक

---

[1] कागवाणी (भागत्री जी)—कवि दूला भाया काग, पृ० ३१३-३१४।

एवं मधुर है। इनके काव्य मे हम मीरा एव महादेवी के काव्य जैसी हृदय के भावों की अनुभूति देख सकते हैं। आज भी गुजराती एवं हिन्दी काव्य प्रेमियो को इनसे बहुत ही आशाएँ हैं। इनकी अनुमति से इनके कई काव्य परिशिष्ट मे दिये गये हैं जिन्हे पढने से पाठक स्वय इनका मूल्याङ्कन कर सकते हैं।

रंग अवधूत महाराज

आपका जन्म ई० स० १८६८ में गोधरा मे हुआ था।[1] आपके पिताजी का नाम विट्ठल था एवं माताजी का नाम रुक्मिणी है। पूर्वाश्रम मे आपका नाम पाडुरग था। जब पाडुरंगजी करीब पाँच साल के थे, तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। इस तरह की आपत्ति मे परमात्मा के सिवा और किसी का सहारा नही था। परिवार की आर्थिक स्थिति भी बिलकुल सामान्य थी। फिर भी माताजी ने परम श्रद्धा एव धैर्य से अग्रज पाडुरग एव इनके लघु भ्राता नारायण से आश्वासन प्राप्त किया। आठ वर्ष की आयु में ननिहाल मे इनका यज्ञोपवत सस्कार किया गया। तदनन्तर पुत्र को लेकर माताजी नरसोबावाडी के दर्शन के लिए गई। भगवान दत्तात्रेय के अशावतार के समान पूज्य वासुदेवानन्द सरस्वती स्वामी महाराज वही बिराजते थे। पाडुरग को देखते ही स्वामी महाराज ने कहा, "यह बच्चा तो हमारा है।" पाडुरग भी मानो अपने गुरु को पहचान गये हो इस तरह महाराज के पास दौड गये। उस समय तो उनको रोका गया। पर उस क्षण से ही उनको स्वामी महाराज का आशीर्वाद एवं अनुग्रह मिल गये थे।[2]

बाल्यावस्था से ही अति बुद्धिमान पाडुरग वलामे भविष्य मे प्रतिभासम्पन्न बेरिस्टर या अग्रणी बनेंगे ऐसी आशा बहुत लोगों को थी। पर गत जन्म के सस्कार और विशेष रूप से स्वामी महाराज के आशीर्वाद एव अनुग्रह से विद्यार्थी अवस्था से ही पाडुरग मे आत्मसाक्षात्कार की उत्कट इच्छा जाग्रत हुई थी। महात्मा गाधीजी के असहयोग आन्दोलन से भी वे बहुत प्रभावित हुए थे और इसमे सम्मिलित भी हुए थे। इनके कई ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए थे जिनमे 'गीर्वाण भाषा प्रवेश', 'उपनिषदनी वातो,' एव 'टॉल्स्टोय अने शिक्षण' मुख्य हैं। इन सभी प्रवृत्तियो के साथ-साथ आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने की इनकी साधना तो चल ही रही थी। प्रारम्भ मे उन्होंने शिक्षक का व्यवसाय अपनाया था। वि० स० १६८१ मे आपने एकात पर भयकर स्थान नारेश्वर में दत्तपुराण के

---

[1] नारेश्वरनो संत—अश्विन कुमार का, ढेबर पृ० ६७।

[2] वही, पृ० २०।

१०८ पारायण पूर्ण करने के बाद और वासुदेवानन्द सरस्वती स्वामी महाराज के कृपापाज गांडा महाराज से मिले। 'गांडा महाराज' ने अपने मराठी ग्रन्थ 'गुरु मूर्ति चरित्र' का संशोधन पांडुरंग को सौंपा था। तदनन्तर पतितपावनी नर्मदा मैया की परिक्रमा पूरी करने के बाद उन्होंने नारेश्वर मे कठोर तपश्चर्या का प्रारम्भ किया और यही इनकी साधना और साक्षात्कार की भूमि बनी। आज भी रंग अवधूत उसी स्थान में रहकर चिन्तन, मनन एवं निदिध्यासन करते हुए भक्तिमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अपनी माताजी की सेवा करने के लिए ही अवधूतजी इसी स्थान में रहते है। एक समय का भयंकर स्थान आज तो बहुत ही रमणीय हो गया है।

पूर्वाश्रम के श्री पांडुरंग वलामे एक महाराष्ट्र के विद्वान अवधूत होकर नर्मदा के तीर पर (नारेश्वर में) रहते हैं और इनके गुजरात एवं महाराष्ट्र मे बहुत अनुयायी हैं। अभेदमार्ग के यह प्रवासी ईश्वर को दत्त के स्वरूप में भजते हैं। ये संस्कृत एवं मराठी के अच्छे विद्वान् हैं और गुजराती पर भी मातृभाषा के समान ही प्रभुत्व है। 'ऊमो अवधूत' के भजनो में श्री रंग अवधूत की हिन्दू धर्म की उदार धर्मभावना के अतिरिक्त गहन अनुभूति, ज्ञान एवं अनुभव प्रकट होते हैं। कई भजन (उदाहरण के लिए नं० १०, १२) भोजो एवं धीरा की याद दिलाते हैं। इनकी कृति 'पत्रगीता' (१६ चित्रकाव्य) ओवी छंद में है। इस ग्रंथ मे श्रीमद्भगीदगीता के सर्वोत्तम सोलह श्लोको का रहस्य व्याख्या द्वारा समझाया गया है। 'रग स्तवन' में श्री रंग अवधूत के अनुयायियो द्वारा रचित इनके स्तवन हैं। संतो की प्राचीन परम्परा अब भी जीवित है एव भारतीय संस्कृति को पुष्ट करने का प्रयास चलता रहता है यह ऐसे ग्रंथों से देख सकते हैं और इससे हृदय को हर्ष होता है।[1]

'अवधूती मोज' मे इनकी हिन्दी रचनाएँ संगृहीत हैं। जनम-जनम के सुप्त सुसंस्कार 'गुरुगावद' से जाग्रत होते हैं। शिष्य को 'बिना तेल जले जहाँ ज्योति,' वहाँ पहुँचने का सीधा रास्ता मिलता है। इतना ही नहीं, गुरुदेव शिष्य का 'सलुना दस्त' पकड़ कर अपने आप 'अगमघाट' चढ़ाते हैं। इस प्रकार गुरु की अगाध महिमा गाते इन भजनों में स्वाभाविक ही 'जहाँ सांई का थाना' वहाँ जाने का रास्ता, नीति नियम, सच्चे और ढोंगी गुरु के भेद, आत्मानंद की अनुभूतिपूर्वक मोज और सांकेतिक भाषा द्वारा और प्रतीकों एवं अन्योक्तियो द्वारा अगम्य स्थान का अवर्णनीय ज्ञान मिलता है। इन सबके जरिये

---

[1] ओगणचालीसमुं ग्रन्थस्थ वाङ्मय, प्र० गु० सा स०भा अहमदावाद पृ० ३३-३४।

रहस्यवाद के उपरान्त कभी कभी पलायनवाद रहित छायावाद का दर्शन भी होता है।[१] उदाहरणार्थ, "सुन सुन तपसी, ज्ञान सुनावू, फिर ध्यान लगाव, मन चले तो चलन दे, पर तन न जाय लगार ऐसी भीतर सुरत चलाव," "कर सतसगत साधन सुमिरन, साधन बिन अँधारो है, रागद्वेष न छूटे तबहूँ ज्ञान पेट गुजारो है," 'परनिंदामें गूगा बहिरा, परसी पढा बाल, हाथ कटा पर धन लेने में मूक दीनदुखहार।' इनमे मार्ग दिखलाकर नियम भी सूचित है। "नाते गोते सब स्वारथ के नि स्वारथ, गुरुराना, आप समान करे शिष्यन को देवे पद निरबाना," "बाचत निशदिन पडित पोथी, दिल धोत्ती मे बिगरो है" ऐसी पक्तियाँ गुरु रहस्य खोलती हैं। "धरती मा तो बना सिंहासन, छत बादल तरु फैला, मारुत मदा चमर डुलावे, बैठे बादशाहा रग अजब दिखावे" ऐसी पक्तियाँ अवधूनी मौज की झाँकी कराती हैं। "बीचि समुन्दर उठ पल मे, आप समुन्दर होई, कौन कहे जो बीती वाको ? होने से समुझाई," "नित नित नूतन भोग-भोग के ब्रह्मचारी कहलाता, नारी नर के वस्त्र खीच के दिव्य तनु दिखलाता," "पूर्णानद गजर लियो, पनुघट को पथ धरो, रग चुनरी फेंक भयो, सोऽह् गगन घेरो !" इनमें सकेत एव प्रतीक और अन्योक्ति द्वारा अवणनीय का वर्णन करने का हूबहू चित्र है। इस प्रकार इन भजन पक्तिया मे उपर्युक्त बातें स्पष्ट रूप से दिखाई पडती हैं। श्री रग अवधूत महाराज की रचनाएँ गुजराती, मराठी, हिन्दी एव सस्कृत मे उपलब्ध हैं। रग अवधूत जी कवियश प्रार्थी न होने पर भी हम प्रतीत होता है कि ये प्रथम पक्ति के कवियों मे मूर्धन्य स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

राजकवि मूलदास मोनदास नीमावत

जामनगर से ८-१० कोस की दूरी पर खीलोस के पास फला नामक छोटा सा गाँव है। आप उस गाँव के ठाकुरजी के मन्दिर के पुजारी हैं और व्रजभाषा के अच्छे अभ्यासी हैं। आपने कई वर्ष तक गुजराती स्कूल मे शिक्षण का कार्य भी किया। आप कविताएँ लिखते और कभी-कभी लोगो को सुनाते, पर सामान्यत तो लिखकर छिपा देते। चारणो की तरह ऐतिहासिक बातें करने में और रस के साथ लोक कथाओ को सुनाने मे आप प्रवीण हैं। इसकी प्रतीति सदानन्दी जैन मुनि छोटालाल जी को हो गई।[२] सवत् १९७७ से छोटालाल जी आपसे परिचित थे। सवत् १९९८ के चातुर्मास मे जामनगर के महाराजा श्री दिग्विजयसिंह जी एव

[१] अवधूती मौज, (निवेदन)—प्रकाशक, पृ० ६८।

[२] श्री वीरायण।

महारानी श्री गुलाब कुंवर बा ने आपकी शक्ति की कद्र की और जैन मुनि छोटालाल जो की प्रेरणा से इनके लिए वर्षासन निश्चित कर दिया तथा जामनगर के 'राजकवि' का पद दिया। वर्षासन अब भी चल रहा है। कवि मूलदास द्वारा गुजराती में लिखी हुई 'कर्ज कंपारी अने हिन्दी हालत', 'उपदेश बिन्दु' इत्यादि पुस्तिकाएँ जनसमुदाय में बहुत ही प्रिय हुई हैं।[१]

'श्री वीरायण' महावीर जैन के जीवन पर आधारित सात कांडों का महाकाव्य है। जामनगर के राजकवि श्री केशवलाल भाई, लींबडी के राजकवि श्री शंकरदान जी एवं कवि दूला भाया 'काग' ने इस महाकाव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[२]

'श्री वीरायण' 'दोहरा' एवं 'चौपाई' छन्द मे लिखा गया है। कवि ने अपने गुरु श्री लाधाजी स्वामी को हिन्दी में लिखा हुआ यह महाकाव्य समर्पित किया है।

श्री वीरायण के अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसन्धान की ओर हिन्दी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट होना ही चाहिए। गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य साहित्य की देन में 'श्री वीरायण' महाकाव्य का विशिष्ट एवं उच्च स्थान है।

---

१ श्री वीरायण।

२ वही।

प्रकरण नवां

उपसंहार

गुजरात के कवियो की हिन्दी रचनाओ का विस्तृत रूप से अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर अवश्य ही पहुँच सकते हैं कि हिन्दी का प्रचार गुजरात मे कई कारणो से था। इन कारणो में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एव व्यापारिक कारण मुख्य हैं। गुजरात मे ही नही, सारे भारतवर्ष मे हिन्दी आसानी से समझी जाती थी और गुजरात की तरह महाराष्ट्र, बगाल, पंजाब एव अन्य प्रदेश के कवियो ने हिन्दी भाषा मे उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं। इतना ही नही नेपाल के कई कवियो ने हिन्दी भाषा मे कई सर्वोत्तम रचनाएं को हैं और लखनऊ विश्वविद्यालय के एक अनुसधित्सु ने इन कवियो पर एक प्रबन्ध भी प्रस्तुत किया है। इस तरह हिन्दी के प्रारम्भ से लेकर आज तक अहिन्दी भाषी प्रदेशो के कई कवियो ने हिन्दी काव्य-साहित्य को अपनी विशिष्ट देन दी है।

अहिन्दी भाषियो की हिन्दी काव्य-साहित्य को देन मे गुजरात का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। गुजरातियो के हाथो हिन्दी भाषा की जो सेवा हुई है वह मूक होते हुए भी महान है। इसमे सूर्य के प्रकाश की प्रखरता या नयनो मे चकाचौंध पैदा करने वाली विद्युत की चमक नहीं है। पर दीपक की उपयोगिता अवश्य है। इसमे दानेश्वरी का दमाम या रसेश्वरी का जादू नही है। पर यह बडी बहन की ओर से छोटी पर अधिक सौभाग्यशाली बहन के प्रति प्रकट की गई ममता है। यह ममतापूर्ण सेवा हिन्दी के विकास मे इतनो

उपयोगी सिद्ध हुई है कि अहिन्दी भाषा-भाषी लोगों ने हिन्दी की जो सेवा की है यदि उसका लेखा-जोखा किया जाय तो सम्भवतः गुजरातियों का क्रम उसमें पहला रहे।[1]

इस प्रबन्ध मे गुजराती के कवियो की हिन्दी काव्य साहित्य की देन पर विचार किया गया है। एक अहिन्दी भाषी प्रदेश मे ६० से अधिक कवियों द्वारा लिखे गये अनेक ग्रन्थो के प्रकाश मे आने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुजरात के कवियों ने हिन्दी काव्य साहित्य को जो प्रदान किया है, वह मूक होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है।

गुजरात के जैन भण्डारों मे राजाओ के अपने-अपने सग्रहालयो मे और चारण कवियों के वशजों के पास अब भी विपुल मात्रा मे अप्रकाशित साहित्य रखा हुआ है। इसकी ओर विद्वानों एव विश्वविद्यालयो का ध्यान शीघ्रातिशीघ्र जाना ही चाहिए। अन्यथा, कई कारणों से इनका विनाश होगा और साहित्य की महान क्षति होगी।

"गुजरात की हिन्दी सेवा" पर डॉ श्री अम्बाशंकर नागर का राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० के लिए प्रबन्ध स्वीकृत हो चुका है। वल्लभ विद्यानगर (गुजरात) के महावीरसिंह चौहाण ने 'गुजरात के कवि दयाराम और उनकी हिन्दी कविता' पर प्रबन्ध प्रस्तुत किया है। फिर भी विषय की गहनता एवं कवियों की विपुल संख्या को देखते हुए यही प्रतीत होता है कि इस विषय का और भी सूक्ष्म अध्ययन अवश्य होना चाहिए। आशा है कि 'अनाघ्रातं पुष्पं' जैसे इस विषय को ओर हिन्दी के विद्वान् एवं अनुसधित्सु आकर्षित होगे।

---

[1] शिक्षण अने साहित्य गुजराती(मासिक), जुलाई १६५१।

परिशिष्ट

१

गुजरात के हिन्दी कवियों की कविताओं से संकलन

(अ) स्वामी नारायण सम्प्रदाय के कवियो की कविताओ से सकलन

शिवानन्द

गणपतिस्तवन

पद १—राग गोडी

आध नमु एक देव,
शकरतनुज अबाजी को अर्भक, सकल दु ख दारिद्र हरण ।। आ०
वक्रतु ड लड्डु का भक्षण, मुषक वाहन अगीकरण ।
अकुश फरसी मोदिक करमा, वरदा भय आयुध धरण ।। आ०
मद गलित कर्ण कपोले, माले चन्द्रकला धरण ।
सुध बुध सुन्दर उत्तर दक्षिण, लक्ष लाभ उसग धरण ।। आ०
सौभाग्य चन्दन हृदये वदने, द्रूवा माला कण्ठा भरण ।
शिवानन्द कहे शम्भु कु वर, सकल मनोरथ पूरण करण ।। आ०

—बृहत्काव्य दोहन, भा० ३, द्वि० स०, पृ० ७६७

पद २

कु जर वदन अघ हरण
याही रूप करत निगम दरताप त्रिविध को भय हरण ।
कु जर बदन जग अघ हरण ।
शीश मुकुट प्रगट रवि छादि तन, गमाअु झलकत अलक किरण ।
भाल विराजित तिलक मानु, इन्दु विन्दु कृशानु भो भयण ।। कु जर०
कनक नग मध दोउ मिल, अर्क शीश रुचिर युग सदन ।
मोरे धनुष पर अनग सर धरै, नैन भुवन जय करण ।। कुजर०
अधर युग रक्त बिंब सम, रसन निरज दल एक रदन ।
परिघ युग दोउ भुज विराजित, याहि दितीज कुल दरण ।। कु जर०

नव कंज माल कण्ठ लिसित मानु, भुवन कंज कोश उर धरणं ।
पीत पट कटि तट वसन, चारु मानुज घन युग सघनं ।। कुंजर०
पद युग कोक नद ललितघुंगरु, नाद विमोहित सुर ललनं ।
प्रमथ पति नन्दन सिद्धि को सदन, शिवानन्द प्रभु भव भय हरणं ।। कुंजर०

—वही पृ० ७६८

पद ३

प्रथम प्रणमुं जग वदन ।
शिवजी को सुत उमयाजी को नन्दन, वन्दन विश्व विघ्न हरणं । प्रथम०
मोदिक अहार सिंदूर विलेपन, श्वेत पुष्प चर्चित चरणं । प्रथम०
एक दन्त, श्रवण दोउ कुण्डल, मुषिक वाहन फरसि धरणं । प्रथम०
सुध बुध सुन्दर वर दोउ श्यामा, लक्ष लाभ अतुलीं वरणं । प्रथम०
वर्ण एक के प्रभु वांछित दाता, सुख सम्पत शुभ मति करणं । प्रथम०

—वही, पृ० ७६८

पद ४—आरती

जय देव जय देव, जय जय गज वदना, जय मूषिक वरना ।
आरती ओवारूं, आरतो ओवारूं, सुन्दर कटि रसना ।। जय०
हर हर शम्भु वधु कमला सम, विष्णु शशि शमदा ।
चरण कमल मद जीवन, मत्तालि प्रमदा ।। जय०
हर हर जय यामीकर, कुण्डल मण्डित श्रवणे एक रदना ।
जय कुम्भस्थल शोभित वरकर, पुष्कर घृत मवना ।। जय०
जय जय कोटि सुधाकर, सीतल जय फरसीधरना ।
सुध बुध सुन्दर उत्तर दक्षिण, जय जय वर वदना ।। जय०
हर हर जय भुजंगीत शोभित, अहिवर उपवित धरना ।
जय जय भगवतिमान शशीधर, सिंदूर तनु रचना ।। जय०
पूरव छेदन निरजन पुर रिपु, पूजित पद सदना ।
जय पुरभंजन प्रमुदित सुर वधू, जय जय कृत मवना ।। जय०
हर हर जय नीरज मुख वधु, पद्माकर धवलित त्रिदशना ।
जय जय मधुमणि हीरक खंचित, किंकिणी कटि रसना ।। जय०
हर हर जय शरणागत वत्सल, पा श्री जय नीरज नयना ।
जय लम्बोदर मोदिक वर कर, पुष्कल धृत भुवना ।। जय०
हर हर सिंदुर चर्चित अंगे, सकल कर जय पाशी ललना ।
त्रिदश वधुकर चामर विजित, दूरि कर समना ।। जय०

हर हर जय जय खण्ड निशापति, भाले जय लोचन ज्वलना ।
जय जय भक्त मनोरथ पूरणा, शिवानन्द शरणा ॥ जय०

—वही, पृ० ७६६

शिव वृषभ स्तवन

पद ६—राग आशावरी (हिन्दुस्थानी)

शिलादिनन्दन गयो शङ्कर द्वार ।
रत्न खचित कर वेगाज सोरे, सुर मुकुट धरावन हार ॥ शिलादि०
अयुत दिनमणि अवर सोहे, ऐसो तनु अतिसार ।
जाके शिर पर छत्र विराजे, भक्तना ताप निवार ॥ शिलादि०
सुरवर जाके चर्ण कमल पर, छोरत मुकुट शृगार ।
रीझत तापर तत्क्षण शिव गण, निरखत वे त्रिपुरार ॥ शिलादि०
जाको महिमा निगम वखाणे, दुर पावत जा सो काल ।
शिवानन्द प्रभु निकट बरति, सोऊ उतारे पार ॥ शिलादि०

—वही, पृ० ७६६

पद ६—राग केदारो

शिव शिव हर हर गौरी रमण, गौरी रमण गिरिजा रमण ॥ शिव शिव०
अमर तरंगिणी रुचिरा भरण, भाल सुधाकर अमृत झरण ॥ शिव शिव०
भुजङ्ग वराधिप कुण्डल करण, हिमगिरि तनया कृत कर गृहण ॥ शिव शिव०
पशुपति शङ्कर भव भय हरण, सुर प्रथमाधिप वंदित चरण ॥ शिव शिव०
भज मन शङ्कर पदयुग शरण, शिवानन्द के भव जल तरण ॥ शिव शिव०

वही, पृ० ७७१

गिरिजा के कीर्तन

पद १४—राग मारू

मंगलदायनी रे, मंगलमा तेथे जाणु ।
विषय रसोदधिक्ष मायामा भूल्यो, गिरिनन्दनी मन आण ॥ मंगल०
सुमनस गुच्छा कुंतल चलके घन मध्य चञ्चल चटके ।
खण्ड निशापति भाले विराजित, राशि हीरक जल के ॥ मंगल०
मणिधर खञ्चित दामिनी सोरे, रुचि क्रूर सोरे ।
वदन कमल मकरन्दनी लोभी, शङ्कर मधुकर मोहे ॥ मंगल०
श्रवणे कुण्डल अलि रवि लोचन, भगवति गिरिजा भासे ।
नेपुर घुघुरू वसन पदाबुज, भमर शिवानन्द आसे ॥ मंगल०

—वही, पृ० ७७३

वसन्त पूजा

पद २२

बिरहे निदान वाण जब लाग्यो, सुध तनकी तब मूल।
कोण करे यह औपट, सुर तट निरुम कूल ॥ बिरहे०
जडमें चैतन विनहुय थयो, प्रगट्यो वसन्त ऋतु मूल।
यहे विनोद देखन हित शंभू, चले गृही तब शूल ॥ बिरहे०
शिश झटा जूट तापर झल के, ललके घुनि शिशफूल।
मानहु मनक कंकण शोभे, ललित मौक्तिक झूल ॥ बिरहे०
बामा अम अंग दरी दोरु, कर कपाल कुरंग।
श्वेत वरण गजाम्बर चंदन, वींट्यो कृष्ण भुजंग ॥ बिरहे०
खेल मच्यो भरयो सब सुरगण, बाजे घोर मृदंग।
शिवानंद प्रभु घन मंडलमा, नाचत रंग सुरंग ॥ बिरहे०

—वही, पृ० ७७५

पद २१

मन्मथ मंथन त्रिपुर गंजन, कहे वसंत कुरंग।
कुसुमावली से नकी पदअंबुज, मागे अनंग नुं अंग ॥ मन्मथ०
दीन वचन ऋतुराज सुनी, शिव थयो मन उमंग।
मनसिज नाम धरू करुणानिधि, ते करे भुवन भंग ॥ मन्मथ०
चारु जटाधर लटकट शीशे, सोंहत झल मृकंग।
त्रिलोचन जगमोहन शंभू, शिवानंद पद भृंग ॥ मन्मथ०

—वही, पृ० ७७५

पद १३

गिरिजावर शिवशेखर शंभू खेलत ऋतु मातंग।
विधि विधि नग गण वन वन फूल्यो, फूलत मन्मथ अंग ॥ गिरि०
शीश मुकुट छबि अटपति सोहे, झलकत रुचिर मृकंग।
मानहु कनकाचल शेखर पर, उदोत कोटि पतंग ॥ गिरि०
उरवत अबील गुलाल अमरगण, वाजत रुचिर मृदंग।
रीझत शिवानन्द प्रभु शंभू, बेठौ वसंत सुरंग ॥ गिरि०

—वही, पृ० ७७६

पद २५

नटवर रंग ऋतुध्वज वनमो, अजुरी सुमनरा सोरे।
कदली दल पर करी शटि मदमो, त्रिदश वधू मन मोरे ॥ नटवर०

श्रवणे कर्णिका कुंडल सोहे, अलिमृत पंक शीश।
फुलत माकद पाघ बन्यो है, तापर कुसुम सरोश॥ नटवर०
वरखा ऋतुकर मृदंग गाजे, बाजे शिशिर करताल।
शरद विणाधर ऊधरे हेमंत, बंसि रुचिर विशाल॥ नटवर०
मालती घुघुरु पद पंकज मो, ग्रीष्म बदत थेइकार।
मदन करत निरांजन ऋतुपर, विधि विधि सुमनस भार॥ नटवर०
श्री पंचमी माघ मनोहर, प्रगट्यो वसत विसाल।
शिवानंद प्रभु खेले गिरिजा, अद्भुत पामे विभास॥ नटवर०

—वही, पृ० ७७६

पद २६

उदग अदन विकसन देखो, उन्मत्त भयो बसत।
अत रेमंत अंतर अब पायो, निकस्यो पुष्प बसत॥ उदग०
व्युंजुरी माकंद वटपद मोरे, सोहे पर ब्रह्म कुज।
वन वन में कुसुम भर देखि, गई सबन की सूज॥ उदग०
शीश जटा जूट तापर झलके, ललके घुनि शिश फूल।
मानु कनक कंकण सोहे, ललित मौक्तिक झूल॥ उदग०
उडवत अबील गुलाल अमरगण, वाजत चंग मृदंग।
शिवानंद प्रभु गण मंडल मां, भयो मन ऊमंग॥ उदग०

—वही, पृ० ७७७

पद २७

गंगा धारि खेलत बसंत, मोरो शंभुनाथ खेलत बसंत।
इतयँ आई गिरिजा सुन्दरी, कोटि सखि लेइ साथ।
उतयँ आये मणिभद्र मणिग्रिव, बाणभद्र शिव नाथ॥ गंगाधारि०
एक पलाश कुसुम रंग छिरकत, एके अबील गुलाल।
वाजत चंग मृदंग भेर धुनि, गावत गीत रसाल॥ गंगाधारि०
उलटी सखि शकर पर धावत, गिरिजा संग सुराये।
पकरे गंगाधर शंकर कुं, सब गण हार मिलाये॥ गंगाधारि०
कि फगुआ दो हो हम शंकर, करत कहा मुज काम।
छूट न पाओ अब गंगाधर, मोरि गिरिजा को शिरनाम॥ गंगाधारि०

खेली फाग प्रेम सुं शंकर, फगुआ दियो हो मगाय।
भूपण वसन विविध सवयनकुं, शिवानन्द बलि जाय ॥ गगाधारि०
—वही, पृ० ७७७

पद २८—काफी

गिरिनंदनी शिव फाग, खेले गौतम गोरी।
सुर तरंगिणी जूट जटा मध्य, कुंतल होरहक होरी ॥ खेले०
शशधर विवज कला त्रिपुंगक, मृग मद चंदक भाल।
दिनमणि वन्हि शशि रवि लोचन, नीरज दल विशाल। खेले०
रुचिर टंगवर सूर शिरोधर, कंठे मौक्तिक माल।
प्रभू शिवानन्द सोम सदा शिव, निरखो अंतक काउ ॥ खेले०
—वही, पृ० ७७७

पद २६

गंगाधर खेले फाग, रस रंग भरे।
संग खेले गिरिराज सुता, गज मौक्तिन की उर माल ॥ रस रंग०
चोदश गण मत बारे दोडे, गणपति पुत्र कुमार।
हसत हसावत बीण वजावत, गावत गीत रसाल ॥ रस रंग०
केशर भर छिरकत पिचकारी, सरस सुगंध गुलाब।
तेल फुलेल भे मुख रोलत, उडत अबील गुलाल ॥ रस रंग०
द्वादश बन ऋतु मारे फूले, बकुल मालती जाय।
ता बीच होरी खेलत शंकर, शिवानद बल जाय ॥ रस रंग०
—वही, पृ० ७७७

पद ३०

ने नो नेह भरे, मुसकात, करंग घरे।
रंग मच्यो गिरिराज सुता, अब खेले बसंत की रात। करंग०
सखी अली सब निकट आइ, सप्त स्वरन मिलि गात।
दल कमल मध्य करणिका, जाति शतारत सुतात ॥ करंग०
अबील गुलाल की मूव पडत घन, गरजे मृदंग प्रमात।
सत्वर जो गुण युद्ध करे तम, देखि आगे धरे अब घात ॥ करंग०
पशु पक्षी वन थकित भये, कहि न परि यह बात।
शिवानद प्रभु मच्यो फरि, फगुआ दे संग तात ॥ करंग०
—वही, पृ० ७७८

पद ३१—राग वसंत

आनन्द भर शिव खेलत होरी ।
प्रथम गण सग मुदित शकर प्रभू, दोरत बाहे परस्पर जोरी ।। आनन्द०
बाजत ताल मृदग धिधिकटन, तथेइ ततथेइकारी ।
गावत राग वसत सरस गति रह्यो रग अति भारी ।। आनद०
छपन कोटि सखि रिप खेलन, गिरिजा शिव पे आई ।
अबील गुलाल भर शकर प्रभू, रिझि रिझि मुशकाई ।। आनद०
यन्द्रादिक ब्रह्मादिक सुर मुनी, पुष्प वृष्टि कराइ ।
शिवानन्द प्रभु असे बिराजोन यह सुख बरणि न जाइ ।। आनद०
—वही, पृ० ७७८

पद ३२—काफीनो राग

शिव निरखो नेन रसाल, ऋतुराज बने शिव ।
कमल शीशे हंस बिराजे, गरजत मेघ विशाल ।। ऋतुराज०
जाके शिश कला निधि सोहे, रुचिर बास शोभाल ।
करुणा सरित मान उलटी हित मो, झाले कोहि मराल ।। ऋतुराज०
ज्वलन लोचन परहु वारु, दिन मणि कोटि प्रकाश ।
स्वर्ग तरगिणी बिच में सोहे, मानु कोक नद की भास ।। ऋतुराज०
तुहि मायलेजा सन्मुख खेले, विधि त्रिधि वसत बिलाश ।
शारद घनमा दामिनि दमके, विजया जया कर पाश ।। ऋतुराज०
फाग मच्यो जय शब्द उच्चो, सुरगण किन्नर साथ ।
अखिल परत शिवानद प्रभूपर, बरखे घन जिए पाय ।। ऋतुराज०

पद ३३

मन उलट भरे मच्यो है फाग ।
क्षीर पयोनिधि पुनम चदे, उदत तरग बडभाग ।। मन०
नेह का ओढ सब ओबर, भइ भई केशर मारे गुलाल ।
रजता चलमा तु मेरु, बिचे भारती वरत विशाल ।। मन०
नेननि मूद सब उकलाई, देखे गाहि विचार ।
उअ सुधाकर किरन परत मानु, सूरज कज निहार ।। मन०
बीणा वसी मृदग बाजत, उपजत घोर निनाद ।
क्षीत पयोनिधि एक ठोर भये मानु, गरजत शब्द अनाद ।। मन०
उलटो आनद मानु भाग वन्यो, रस रग कह्यो न जाय ।
सोम सदाशिव फाग वने मनु शिवानद बल जाय ।। मन०
—वही, पृ० ७७६

पद ३४

अब फाग खेलत शिवनाथ, मनमोद भरे।
लाज की ठोर सबे अब गइ, खेल रच्यो गण साथ। मन मोद भरे०
त्रिदश वधु संग गिरिजा आई, आठ भरी है गुलाल।
मोतिन माल विच मध्य नायक, झलकत जोति का जाल ॥ मन मोद भरे०
केशर रस पिचकारी मारे, उडे अबील गुलाल।
मान सरोवर मध्यमों फूली, कोक नदकी माल ॥ मन मोद भरे०
फगुवा देत बोलात शिव कु, बाजत चंग रसाल।
शिवानंद प्रभू ऐसे विराजे, सुर वजे पुष्प रसाल ॥ मन मोद भरे०

—वही, पृ० ७७६

पद ३५

रस बढ़त बसंत विलास, त्रिपुरारी रमे।
विविध लता संग द्रुम वर खेले, ठोर ही ठोर प्रकाश ॥ त्रिपुरारी रमे०
करिभे करि लग रही वन मो, कुतंग मृगि तजी घास।
विजय विनोद कीडा रस लपट, कोकिला माकंद पास ॥ त्रिपुरारी रमे०
झोंक परी अव अविल गुलाल की, बाजत मृदंग विकाश।
शिवानंद प्रभू खेलत बन बन, मानु प्रगट्यो मन्मथ रास ॥ त्रिपुरारी रमे०

—वही, पृ० ७७६

पद ३६—राग केदारी

शंभु खेले रंग हो हो होरी।
संग सोहे गिरिजा गोरी, शंभु खेले रंग हो हो होरी ॥
त्रिदश गण सब मिलि आये, गावे राग तो टोरी।
शंख मृदंग वीणा चंग बाजे, बरखे सजल घनघोरी ॥ शंभु०
मृग मद केशर छरकत अंगे, उडवत अबील की झोरी।
यह शोभा को पार न पाइए, बरणो कोई जोरी ॥ शंभु०
पशु पंखी द्रुम वेली मध्यमो, चेतना नारी जो थोरी।
शिवानन्द प्रभु रंग सुरग तोडन पें, अबे मुद घोरी ॥ शंभु०

—वही, पृ० ७८०

पद ३७—राग जैजैवंती

हर हिमनंदनी अब खेले हो होरी।
जाके रंग सुर वधू देखत, थकित भइ बेली ॥

जाको रंग सुर वधु देखत थकित भइ बेली ।
द्रुम सब रंजी जगति थोरि हो ॥ हर हिमनंदनी०
अलि विलोचन मृगंक गंग रंग, विशेष कस वही उपमा छोरी ।
पद युग घुघरु नूपुर बाजे, छंद भर शिवानन्द भव तटि होरी ॥
हर हिमनन्दनी०
—वही, पृ० ७८०

हिंडोलना पद

आंदोलाश्रित गिरिजा वल्लभ, सुर सेवित पद कजे ।
मत्त मनोले विहर मदालस, निगम मधुव्रत खंजे ॥ आंदोलाश्रित०
नख मणिचंद्र मयूख विदारित, जन्मना पाप तमोहे ।
अमृत पयोधर धारा शीश पर, संचित भक्त समूह ॥ आंदोलाश्रित०
विष्णु विरंचि शचिपति मानस, पकज कर्णिका वासे ।
प्रेम सरोवर मग्न शिवानद, परिपूरित निखिलाशे ॥ आंदोलाश्रित०
—वही, पृ० ७८०

पद ४५

प्रेम सुवापी पंकज परिमल, जन सुखदान सरागे ।
कुमुदनि नादक खंड सुधाकर, परि संप्लुत पर भागे ॥ प्रेम सुवापी०
विद्युत पुज कपर्द कलाप, सुमंडित मौक्ति भाले ।
अलिक विलोचन सज्वलितानल, कीलज्वालित भाले ॥ प्रेम सुवापी०
चित्त निवेशयं धी ममला गिति, सुर घुमि हीरक भाले ।
संसारानल तप्त शिवानन्द, पयोधर धारा सारे ॥ प्रेम सुवापी०
—वही, पृ० ७८२

पद ५२—राग केदारो

विलसित शंभु शैल कुमारी ।
हां रे हिंडोले विलसित शंभू शैल कुमारी ॥ टेक
उदित राकापति नारी, नारद तुंबरु धारी ।
ताल तेत्रीस स्वर भारी, सोहत किन्नर कारी ॥ हा रे०
सुरपति रमणि, सगित स्वर मणि ।
उपजत नाद गहनि, माहित मृग नयनी ॥ हा रे०
शुक्ल शीश धारि, भव ताप निवारो ।
जय जय स्वर धारि, शिवानन्द बलिहारी ॥ हा रे०
—वही, पृ० ७८४

पद ५३

वनत श्री गंगाधारी ।
हां रे हिंडोले वनत श्री गंगा धारी ॥ टेक
सारद घन शंभु, चपला पुंजे गौरी ।
निरखो आरा छबि, गर्व अनंग हारी ॥ हां रे०
कर कंकण शाली, अंगद भुजंग धारी ।
मुक्त मुंड विलासि, सोहत त्रिपुरारी ॥ हां रे०
अजिन चीर कटि, नूपुरी घुघुरु धारी ।
जय जय सुरकारी, शिवानन्द बलिहारी ॥ हां रे०

—वही, पृ० ७८४

पद ५४

गिरिनंदनी शिव झूले, हिंडोले गिरिनन्दनी शिव झूले ।
देखि सुरिनर निमेष भूले ॥ हिंडाले०
चारु विमान चढी सुर वपे, कल्पतरुने फूले ॥ हिंडोले० टेक
रुचिर पदांबुज नेपूर घुघरु, कटि रसना घर भारी ।
अंगद कंकण भूषण धारदा, मेघे चपला वारी ॥ हिंडोले०
राका निशाकर पूर्ण कला धर, दत मयूख विशाली ।
चिकुर जटा वलि सोम सदा शिव, शिवानन्द बलिहारी ॥ हिंडोले०

—वही, पृ० ७९५

पद ५८—राग धन्या श्री

खेले हिंडोले रे, सोहत गिरिजा संग ।
मास मधु सूरत टिनी तटमां, पधारे बैरि अनंग ॥ खेले० टेक
दुंदुभि भेर मृदंगनि नादे, बाजे सुर वधु चंग ।
हय हंसारव अगणित सोहे, कुंजर बृहण रंग ॥ खेले०
चन्द्र मयूख पताका झलके, ललके छत्र मयंक ।
चामर शोभा कहि न परे, आकर काली रंग ॥ खेले०
अगणित जय जय निनदे, नाचत ततथै थंग ।
धिमिक्ट धिमिक्ट धिमिक्ट धिमिक्ट, बाजत रुचिर मृदंग ॥ खेले०
सुर किन्नर मुनि गण आदे, वर्षे सुमनस संग ।
कमलासन बैकुंठ अधिपति, अंजुरि करत भुजंग ॥ खेले०
स्यदन तें रजताचल आये, सोहि गिरिजा संग ।
रसिक शिवानंद पद पंकज मकरंद, बदन कहो चह भृंग ॥ खेले०

—वही, पृ० ७८६

भोजन समय के पद

पद ६५—राग आशावरी

नीराजन जग जीवन भव हर ।
पूर्ण ब्रह्मकला सपूरण, नहि न जानतया विधि किंकर ।। नीराजन०
काहू प्रकाश करे दिप कणिका, आगे धरे तेजो निधि सूर ।
ऐसो निरांजन बिधिचन्द्र शेखर, शिवानंद पर करुणा पूर ।। नीराजन०

—वही, पृ० ७८६

पद ६६—राग आशावरी

जय चन्द्र मौली त्रिपुरारी, दुरी कर हर भव पाशा ।। जय चंद्र०
तुझे मस्तक गगा बीराजे, जय जय भुवना चा शरणा ।। जय चन्द्र०
अंग विषधर क्षित घर वाला, जय जय रजित त्रिनयना ।। जयचन्द्र०

(आ) वैष्णव कवियो की कविताओं से संकलन

नरसिंह मेहता

(१)

पधार्या मारे कुंकुरा पगले ॥ टेक॥
डगमग करता मोहन जी पधार्या, पग भरता डगले ॥
लटपटि पाग सीलाबर सोहे, पीताबर बदले ।
भाल तिलक झलमलता मोती, देखत मन हर ले ॥
साकरडो आगण बीच बूठो, ढिग बुडा ढीगले ॥
दूधां मेह बूढा नरसीधर, आगणिये सघले ॥१॥

—गुज० सा० सम्मेलन, १२ वें अधिवेशन की रिपोर्ट

(२)

वास नथी ज्या वैष्णव केरो, तहाम वसिये बारडिया ।
मोहन मोहन की माया विलस्यो, सो पडसी जम पासडिया ॥
जिण काना हरि कथा न सुण ही, सो सखन की बांबडिया ।
जिण नैना हरि रूप न निरख्या, सो मोहन की पाखडिया ॥
सास सास शिमरण नही कीनो, धमण धर्म वाकी सासडिया ।
जिस रसना हरिनाम न गाया, सो जिम्या है कासडिया ॥
जिण पाया हरिपथ न चाल्यो, सो पग करीये ठापडिया ।
जिण हाथा हरि पुण्य न कीनो, सो कर करीये डाडडिया ॥
जनम दियो सो लेखो लेखी, वपु न होय हरिदास दिया ।
कहे नरसी उन बोत्या भारी, गावलडी दस मारडिया ॥११॥

—वही

भालण

(१)

व्रज को सुख समरत श्याम ।
पर्नकुटी सो वीसात नाही न भावत सुन्दर धाम ।। व्रज ।।
बदोर मात्र नवनीत के कारन, उखले बांधे ते बहु दाम ।
तिमें वे जु चुभी रही है, चोर चोर करत है नाम ।। व्रज ।।
निशदिन पुनी दोहन बंधन को सुख, करि बैठत नाही तो नाम ।
मोर पिच्छ गुंजाफल ले ले, वेख बनावत रुचिर ललाम ।
भालन प्रभु विधाता की गति, चरित्र तुमारे सब जाम ।। २१४ ।।

—भालण कृत दशम स्कंध

(२)

कोन तप कीनोरी माई नंदराणी । कोन०
ले उछंग हरिकु पय पावत, मुख चुम्बन मुख भीनोरी । मा०
तृप्त भये मोहन ज्युं हसत हैं, तब उमगत अधरहु कीनोरी । मा०
जसोमती लटपट पूंछत लागी बदन खेचित बलिनोरी । मा०
रिदे लगाय बरजु मोहि तुं कुलदेवा दीनोरी । मा०
सुन्दरता अंग अंग कए बरनु तेज ही सब जग हीनोरी । मा०
अन्तरिख सुर इन्द्रादिक बोलत वृजजन को दुःख खीनोरी । मा०
इह रससिंधु गान करी गाहत भालन जन मन भीनोरी । मा०

—वही

मीरांबाई

पद ३

हां रे मेरी सलाम कहीए बीद्रावक, छेल छबीला ठाकोर कुं ।
सब गोकुल में गोपालन मंडल, राधा मीशरी साकर कुं ।। हां०
जीवते रहीओ ने चोखां करो यो, नीभाव करो यो आखर कुं ।
तुम प्यारे की मोहोबत सुनकर, इशक लग्यो मेरे चाकर कुं ।। हां०
खुब बनायो रे मे खुब बनो है, क्या करु गुण सागर कुं ।
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर, निहाल तीयो भुज नागर कुं ।। हां०

—वृहत्काव्य दोहान, भाग ६, पृ० ७६१

पद ४

करना फकीरो क्या दीलगीरी, सदा मगन में रहेना रे ।
कोइ दिन वाडी ने कोइ दिन बंगला, कोइ दिन जंगल रहेना रे ।। कर०

कोइ दिन हाथी कोइ दिन घोडा, कोइ दिन पाउं से चलना रे।
कोइ दिन गादी कोइ दिन तकीया, कोइ दिन भोयसे पडना रे ।। कर०
कोइ दिन खाना ने कोइ दिन पीना, कोइ दिन भूखे सोना रे।
कोइ दिन पेहेरना कोइ दिन ओढना, कोइ दिन चीथराव ओठना रे ।।कर०
कोइ दिन मोजा ने कोइ दिन जोडा, कोइ दिन फक्कारे फक्का रे ।।
मीरां कहे प्रभु गिरिधर नागर, ऐसा कुंमन करणा रे ।। कर०

—वही, पृ० ७६३

पद २७

चरण रज महिमा मे जानी ।। टेक
येही चरण से गंगा प्रकटी, भरीरथ कुल तारी ।। चरण० १
येही चरण से विप्र सुदामा, हरि कंचन धाम दीनी ।। चरण० २
येही चरण से अहल्या उधारी, गौतम की पटरानी ।। चरण० ३
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, येही चरण कमल मे लपटानी ।। चरण०

—बृहत्काव्य दोहन, भाग ७, पृ० ७०८

पद २८

राधा प्यारे दे डारो जो बसी हमारो । टेक
ये बंसी मे मेरा प्रान बसत है, वो बसी लेइ गइ चेरी ।। राधा० १
ना सोने की बसी ना रूपे की, हरे हरे बास की पेरी ।। राधा० २
घटी एक मुख मे, घटी एक कर मे, घटी एक अधर धरी ।। राधा० ३
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पर बरो री ।। राधा० ४

—वही, पृ० ७०८

पद २९

माइ मोरे नयन बसे रघुबीर । टेक
कर सर चाप, कुसुम सर लोचन, ठाडे भये मन धीर ।। माइ० १
ललित लवंग लता नागर लीला, जब पेखो तब रणबीर ।। माइ० २
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, बरसत कावन नीर ।। माइ० ३

—वही, पृ० ७०८

पद ३०

बाइ मैंने गोविन्द लीन्हो वण मोल । टेक
कोइ कहे हेलका कोइ कहे भारे, लीयो जु तराजु तोल ।। बाइ० १
कोइ कहे सस्ता कोइ कहे मेहगा, कोई कहे का न अनमोल ।। बाइ० २

बिंद्रावन की कुंज गलन में, लीह्यो बजाके मैंने ढोल ।। वाइ० ३
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, पूर्व जनम को दीयो बोल ।। बाइ० ४

—वही, पृ० ७०८

पद ३२

कायकुं न लीयो तब तुं, कायकुं न लीयो,
रामजी को नाम तब कायकुं न लीयो । टेक
नव नव मास तुं ने उदर में राख्यो,
झुलणे झुलायो तुने पारणे पोठायो । रामजी को० १
रतन सो जतन करी तुने राख्यो,
बडो रे भयो तबते कुल लजायो । रामजी को० २
गुनका को बेटो गली मांही ढोले,
पिता बोन पुत्र ए गुनका को कहायो । रामजी को० ३
बाई मीरां के प्रभु तिहारा भजन बिना,
आवो रूडो मनखां ते थे ले गुमायो । रामजी को० ४

—वही, पृ० ७०९

पद ३३

मैंने सारा जंगल ढुंडा रे, जोगीडा न पाया । टेक
कानु बीच कुंडल जोगी गले बीच शेली,
घर घर अलेक जगाया रे ।। जोगीडा० १
अगर चंदन की जोगी धुणी धरवाई,
अंग बीच भमुत लगाया रे । जोगीडा० २
बाई मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
शबद का ध्यान लगाया रे ।। जोगीडा० ३

—वही, पृ० ७०९

पद ३४

कवन गुमान भरी, वंसी तुं कवन गुमान भरी ।। टेक
अपने तन पर छेद परे ये, बाला तुं बिछरी ।। बंसी० १
जात भात सब तोरी में जानुं, तुं बन की लकरी ।। बंसी० २
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, राधा से कीयुं झगरी ।। बंसी० ३

—वही, पृ० ७०३

पद ३५

दर्द ना जाने मेरा कोई रे, मैं तो दर्द दीवानी ।। दर्द ना०
घायल की गति घायल जाने जा शिर बीती होय रे ।। मैं०

जल बिना जैसी मछली ही तेल पे, सो गत मेरी होय रे ॥ मैं०
सूलि उपर सेज हमारी, तापर रहेवु सोइ रे ॥ मैं०
मीरा को दु ख जब मीटेगो, बैंद शामरो वोही रे ॥ मैं०

—वही, पृ० ७०६

पद ३७

तेरो कहा न कालो माइ मेरी राधे गोरी, हो माइ तेरो कहा न०
ऐसी राधे रूप बनी, कचन सी देह ठनी, ऐसी कारे काहान पर,
कोटी राधे वारी हो ॥ माइ०
गोकुल उजार कीनो, मथुरा बसाय लीनो, कुबजा कु राज दीनो,
राधा को बिसारी हो ॥ माइ०
बिनति सुनो व्रजराय, लागुजी तुम्हारे पाय, मीरा प्रभु से कही यो जाय,
सेवक तुहारी हो ॥ माइ०

—वही, पृ० ७१०

पद ५३

वहीयाँ जो ग्रही रे, मेरी सुद्ध न रही रे,
काहना बहीयाँ जो भारी रे ॥ टेक०
झगमग ज्योत जडाव को ग्रेनो,
गज मोतियन की सेर लटको रही रे ॥ काना०
मैं दधि बेचन जाती गोकुल मे रे,
पकडी री पालव मेरी जलकी मरी रे ॥ काना०
जाइ पोकारूँ कस की आगे रे,
तेरी नगरी मे मेरे बसवो नहि रे ॥ काना०
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
झगडत सारी रेंन बीत गई रे ॥ काना०

—वही, पृ० ७१३

पद ५४

शामरे को दृष्टि मानु प्रेम की कटारी है,
माइ शामरे की दृष्टि मानु । टेक
चांदा त्या चकोर बसे, दीपक जले पतग,
जल बिना मरे मीन, एसी प्रीति प्यारी है । शामरे को०
गोकुल गाम उजारी कानो मथुरा मे साहेर लीनो,
कुवजा कु राज दीनो, राधे तो बीसारी रे । शामरे को०

रामचंद्र को रूप सुधानिधि, नैन प्रेरहु रस पीजें।
कृष्णदास प्रभु उर उपर, निशि दीन ध्यान धरीजें।
जातें भवसिंधु तरीजें ॥ जानकी० ४
—वही, पृ० ७०

पद ६—गोडी

बनहुँ से आवत धेनु चरावें। टेक
आगे-आगे धेनु पीछे-पीछे जदुनंदन, वृज रज मुख लपटावें ॥ बनहु सें० १
मोर मुकट मकराकृत कुंडल, उर वनमाल सुहावें।
बाहु विशाल विभुषण सोहै, कर गही कमल फिरावें ॥ बनहु सें० २
चंदन चरचीत अंग मनोहर, भृगु लक्षण छबि छावे।
शेष सहस्र मुख रटन निरन्तर, सो वाको पार न पावें ॥ बनहु सें० ३
कंबु कंठ कौस्तुभ मणि राजे, शोभा वरणी न जाये।
घुघर वारे अलक वदन पर, मधुकर रहे लोभाये ॥ बनहु सें० ४
चढ़े विमान देव मुनि हरखें, पुष्पमाल भरि लाये।
कृष्णदास प्रभु की छवि निरखे, चरण कमल चित लाये ॥ बनहु सें० ५
—वही, पृ० ७०

दयाराम

सतसैया

मंगलाचरण दुहा

श्री गुरु बल्लभ देव अरु, श्री विट्ठल श्री कृष्ण।
पद पंकज बंदन करूँ, दुखहर पूरन तृष्ण ॥१॥
—दयाराम कृत काव्य संग्रह, पृ० ३०३

प्रेम बर्नन और नायिका वर्नन

लाल लली ललि लाल की, लें लागी लखि लोल।
त्याघ देंर लघ लालकर, दुहु कहि सुनि चित डोल ॥७३॥
यद्यपि रवि आतप भयों, सीतल लगत सरोज।
सकुचें लखि सो सुधाकर, समुझ प्रेम की चोज ॥७४॥
नोंधा प्होप सुगंधिते, हरि-हरि मन सुच पाय।
दसई पंकज प्रेम बिन, रुके कहूँ नहि जाय ॥७५॥
—वही, पृ० ३२३

प्यारे मोकों तीर दिहु, पें जिन देहु कमान।
कमान लागत तीर सम, तीर लगत प्रिय प्रान ॥८७॥

पूलु हो लखि लाल को, पिघरे येना गात।
सो हितु क्यो वे दूर जब, दुहु की उलटी बात ॥८८॥

—वही, पृ० ३२७

अनन्यालंकार

कछु न प्रिय प्रिय प्रान सो, सो तुमसो नहि प्रान।
तुम प्यारे इक तुमही से, ना पहतर सम आन ॥१४३॥
राज रूप रस पान सुख, समुझत हैं मो नैन।
पैं न वैन हैं नैंन को, नैंन नही हैं बेन ॥१४४॥

—वही, पृ० ३४२

प्रोषितभर्तृका नायिका

वारी-वारी बारियें, बारीलो दे वारि।
फिर बारी दैं बारि जनु, बारिद लो बनवारि ॥१५७॥

क्रिया विदग्धा नायिका

दोउ अटारी पीठ दें, किए दरस आदर्श।
मिलि कर नैं दे चुट कि त्रय, पिय तिय उदयो हर्ष ॥१५८॥

—वही, पृ० ३४७

क्रिया विदग्धा और वाक् विदग्धा नायिका

खरक सवारो कर भरे, गोबर छुड उर छोर।
ऐहे बड को बाल तुम, ठाकिय नद किशोर ॥१७१॥
बार चलेंगी तू चलें, हम सब मान सुभोन।
टेर सुनाइ सखिन मिस, सुनि कल परि पिय कोन ॥१७२॥
रपट्यो पग ढिग को नही, सुनिये गोकुल नाथ।
साच कहूं समजो समय, एच लेहु दुहे हाथ ॥१७३॥
मन्मथ मोहन जमुन जल, लखि सयूथ चलि वाम।
मिस कर मेली कर नइ, जय कृष्णा कहि नाम ॥१७५॥

—वही, पृ० ३५३ से ३५५

खंडिता विदग्धा नायिका

बधि गुन भुज इरसन हुती, दिहु दुज सनसी लगाय।
में उर सुघट चढाय मो, धिज हर सि कर स्याय ॥१७७॥

—वही, पृ० ३५७

स्वयंदूतिका नायिका

जेठ दुपेरी दुसह तप, सुनहु बटाउ छैल।
पुरतें पर बन सघन मे घरि टकि गहियो गैल ॥१७८॥

—वही, पृ० ३५८

ज्ञात अज्ञात यौवना नायिका

कटाछ नोक चुभि किधों, गडे उरोज कठोर।
के कटि छोटी में हितु, रुचि न नंद किशोर ॥१६१॥

—वही, पृ० ३६५

भक्ति प्रकरन

सबतें भक्ति प्रताप बड, सब करि लेहू विचार।
बिमुख दास दस कंध तहु, बस बर्त्या संसार ॥३०६॥
धाता के सुनु सत रुखी, द्रुव छत्री के बाल।
दे वे चाहि परिक्रमा, भक्ति बड गोपाल ॥३०७॥
ग्यांनि भक्त सों क्यों लरत, बिना किये अनुमान।
कृष्ण आप फल भक्ति के, वाहि मुक्त को दान ॥३१०॥

—वही, पृ० ४०६-१०

अथ प्रस्ताव प्रकरण

दुहा

डस्यो कस्यो हरि भ्रमित मन, हरिसुं धररो अभिमान।
फस्यो चिबुक कुपथ कि प्रिया, तारी अभय दे दान ॥६४१॥
जातें प्रताप पदवि प्रभु, तांसुं सु कबु न अरून।
चिन्तामनि दानीकुं जिमि, सब कछु दीनों नून ॥६५०॥
सलज नैन आधे बचन, कहत कहत सकुचाय।
ललना समुझि लच्छ सों, लिय हिय लाल लगाय ॥६५१॥
माननि प्रीति परिछ को, दुति बरने पिय दोश।
सुनत लाल द्रग व्है गये, मानु रोश के कोस ॥६५२॥
प्रीत रूप को कथ्यका, तुमें व्याहि में कहान।
करबट राखो आप ढिग, देहुं छुडाय कुंबान ॥

—वही, पृ० ४८७-८८

वस्तु वृंद दीपिका

दुहा

वंदु श्री गुरु पद कमल, सकल सिद्धि दातार।
श्री म्हा प्रभु गोस्वामी श्री, सह श्री नंद कुमार ॥१॥

सब सलेस जातें टरे, ठरें सुधी हिय आय।
पूरन ह्वर अभिलाख सब, असपद गुरु हरिराय ॥२॥
गम्य नहिं गिरवान की, चाहि समुझि सब नाम।
तिन लगि दया यथामती, फुटकिन वस्तु जु ग्राम ॥३॥
नाना द्रुमरस पक्षि ले, रचत मधुप आपूप।
विविधागम मे नाउ त्यो, गहि इह ग्रन्थ अनूप ॥४॥
इक द्वे त्रियो क्रम सहित, गुहि वस्तू पद बध।
अत होत सब अर्थ को, श्री कृष्ण सो समध ॥५॥
और बरनहू सफल सब, जो राजोग घनश्याम।
ज्यो कसारि मुरारि अरु, मधुसूदन सुठि नाम ॥६॥

एक बरुन नाम

रवनी इक श्री राम जू, गननाइक इक दत।
शेष चन्द्र मन आतमा, पतिव्रता इक कत ॥१॥
सिंहनी वृश्चिक कदुलिअन, सुक्तिन प्रसुत अनेक।
शुक्र दृष्टि रविचक्र अरु, श्री परमेसुर एक ॥२॥

—वही, पृ० ५१३

शृङ्गार

पद १

आज को दिन धन-धन मोरी माइ, देख छैल छव कुवर कन्हाइ। आज को०
मद मुसकानि चित मेरी चोर्यो, कुटिल कटाक्षे कलेजो कोर्यो ॥ आज को०
श्री मुख देखत सब सुख फीके, मधुर भये जीवन जी के। आज को०
अज अजहू पदरज नहिं पाइ, सो लालन मोहे लाड लराइ ॥ आज को०
कहत बने नहीं जो सुख पाई, मो मन जानत के व्रज राई। आज को०
व्होत दिनन की आशा पूजी, दया प्रीतम करी तोसी नहिं दूजी ॥ आज को०

—वही, पृ० ६०२

पद ४—राग भैरवी

मोहे नैंना लागिरे, रतवारी, रतनारी, बतवारी,
जादुवारी, मोहे नैंना लागिरे। टेक०
हासी मद मानु मदन की फासी,
चितवनि काम कटारी रे, मोहे नैंना लागिरे ॥१॥
दया के प्रीतम तहारी मोहनी मुरत,
नख सिख लग लगें प्यारी रे, मोहे नैंना लागि रे ॥२॥

—वही, पृ० ६०३

पद ६—राग भैरवी

ओ प्यारी जी, मेरी तुंही चितचोर, मेरी तुंही चित चोर,
मेरो कछु नहिं जोर। टेक
तेरे विरह दुख विकल रहतहुँ, तूं समजत कछु ओर॥ ओ० १
ज्यों निरखुं त्यों आरत अधिकी, जैसे चन्द्र चकोर। ओ० २
सहो न परत रोवे मत मेरी, सो जिय निकसेगो फोर॥ ओ० ३
तुंही मेरो द्रग मुखन प्यारी, तुंही मेरी जीव डोर। ओ० ४
यों कहलाइ हिये दया प्रीतम, पुछें नयन पट छोर॥ ओ० ५
—वही, पृ० ६०५

पद १६—राग भैरवी

मोहे बांके नैंन खजर से लगाय गयो रे।
ओ लगाय कें झमक हिये लाय गयो रे।
खुनो नैंन खंजर से लगाय। टेक
गजबी घायल कर गयो, दारु दवा न कोय।
मलम मालम मेरे बुब हार, मिले तबी सुख रोय॥ हो लगाय० १
मिल बिछरन की पीरकं, बीरन समझत कोय।
कहत, अयांने बाहावरी, जांने लागी होय री॥ हो लगाय० २
सहज गतो सुधा चले, तिरछे पर जिय लेन।
भये बुद्धि बलके पद तो, नंद कुंवर के नेन॥ हो लगाय० ३
नैंन नोक नट सालसी, सालन है हिय मांही।
दया प्रीतम मुख चमक बिन दरसन निकसे नाही॥ हो लगाय० ४
—वही, पृ० ६०७

पद २२—राग ललित

जोबन रस झलकाय, रसिया रोप तजोजी।
प्यारे सुख की बाहार बेहे जाय, रसिया रोप तजोजी॥ टेक
तुम मधुकर हम केतकी, सदा बन्यो संजोग।
कंटक दोष विचारिये, तो केसें बने रस भोग॥ रसिया० १
हम कपूर तुम मीरच, मोहन राय तुम बिन हम उड़ि जाय।
हम बिन तो तुम सदा सुखी हो, कही ऐसो कहा बसाय॥ रसिया० २
ललित त्रिभगी छैल छबीलो, नटवर नंद किशोर।
मद सो भद अब व्होत नही, आछो जुवती जनपें जोर॥ रसिया० ३

पिछलि बात पिया चित ना धरिये, अबला हठिली होय।
बिना मूल की मैं दासी तिहारी, यो के है दीनो रोय ॥ रसिया० ४
देखी दिनता रती हृदे की, प्रसन्न भये बृज राय।
दया के प्रीतम हंस दोरी अक भरी, अधर कपोल छुवाय ॥ रसिया० ५

—वही, पृ० ६०६

पद ३६—राग काफी

जुठी चोरी लगाय, मैया मोहे जुठी चोरी लगाइ। टेक
कबु-कबु याकी मे गौनही दोहूँ, तातें ऐ धुनसाइ।
याके जिया की तु नहि समुझत, मैं समजु मेरी माइ ॥ मैया० १
चली परस्पर सें नामे नो, हिय कछु मुख कछु गाइ।
दया प्रीतम गोपीहित हिय को, लखी मेहेरी मुसकाइ ॥ मैया० २

—वही, पृ० ६११

पद ४६—राग कालिंगडो

हो हरि रे, पीया जान दे हमकु। टेक
उमड घुमड वृंदावन छाइ लो, पात पात अबुवा पाउर पाइलो।
कोयल बोले कहु-कहु, पीया जाने दे ॥१॥
दया प्रीतम घनघोर सावरो, याकु रटत भयो हे बाहावरो ॥२॥

—वही, पृ० ६१५

पद ६२—राग सोरठ

म्होरा मनडा ने माना हो बिहारि नद लाल। टेक
रगीली रसीली नैंना चात बीच चुभी रही, सालत ज्यो नटसाल। म्हारा० १
नटवर छबरी लटक हिये अटकी दया प्रभु मदन गोपाल ॥ म्हारा० २

—वही, पृ० ६१६

पद ७१—राग मल्हार

मैं तो मेरो बाला जोबन दीयो नदलाल कु।
दियो नदलाल कु, वे सावरे गोपाल कु ॥ मैं तो मेरो० टेक०
बालपने से मेरो मोहन मीतवा,
कैसे बचू आलि कैसे बरजु गोपाल कु ॥ मैं तो मेरो० १
लगर बीत गुमानी रसियो,
क्यो कर छोडे वे तो न्यामत माल कु ॥ मैं तो मेरो० २
दया को प्रीतम प्यारो प्रेमरस भोगी,
कोउ न जाने वाके अदभुत ख्याल कु ॥ मैं तो मेरो० ३

—वही, पृ० ६२१

पद७३ —राग केरबो

बन में गुजरियां टी, अहिरीयां लुटी,
लू'टी-लू'टी मदन गोपाल बन में ॥ टेक
कंचन के कलस दोउ लूटी, हां रे अधरकी लाल। बन में० १
चोर्यो चीत सुध बुध लीनी; कर डारी बेहाल। बन में० २
जाको जाय सो सब कोउ रो वे, यातें भइ हुं खुशाल। बन में० ३
दया प्रीतम रस प्रेम लुंटारे, कीनी नेंनन में न्याहाल ॥ बन में० ४

—वही, पृ० ६२१

पद ८६—घोसी

प्रेम के पंथ नहीं परनां, परे मरने से नही डरनां।
लाज का झाझ डुबा देनां, झहांन में बदनामी लेना॥
लगन लग पीछू पच मरियें, न छूटे निसदिन जिय जरियें।
सोडू व्याज शक्ति लागी, दया लगी हारसों बडभागी जी रट तुंही-तुंही।

—वही, पृ० ६२५

पद—६७ लावणी

नागर नटरे, मिल जावो मोहन प्यारे। टेक०
तुम मोहन बेनु बजाइ, को हो सांच न हमें बुलाइ।
हम सब तज धाई आई, आव निकट रे॥ मिल जावो० १
हमे रूप सकुल बृज बासी, नहिं व्यापक ब्रह्म उपासी।
ताहे क्यों छांडो अबिनासी, तुं'में अ घट रे॥ मिल जावो०२
हम निपट मूठ वृजबाला, तुम सों कियो गरव नंद लाला।
सो क्षमा करो बृजवाला, हो उम्मर घट रे॥ मिल० जावो० ३
किये कुटुंब सहोदर. बेरी, भई बिना मूल तम चेरी।
तुम बिन कोउ हमें न हेरी, बिचार है घट रे॥ मिल जावो० ४
यों कहे रोइ सब बामा, तब दया प्रगट घनश्यामा।
सब त्याय लइ उरकामा, युमना तट रे॥ मिल जावो० ५

—वही, पृ० ६३२

पद १०७—राग जंगली होरो

प्रोये प्रान बांन रसिया के नेंन।
कैसे जाऊं रे धाम कर भगें न काम पल परें न 'तेन ॥१
होरी खेलत हीये होरी प्रगटी, ब्रेह दरद गरद की या सलके सेन ॥ २

मोरनी मंगसी गारी विहारि की, रोम रोम जासु लाग्यो हैं मेन ॥ ३
दया के प्रीतम बिना अलप कल्प सम कैसें कहुंगी अब धौस रेन ॥ ४

—वही, पृ० ६३५

पद ११४—राग काफीनी होरी

क्यों न पीया संग खेलत होरी ।
खेलत हो वृखभान किशोरी ॥ क्यों न पीया० टेक
रंगीली तुंमें मान न आछो, परम प्रबीन भइ कीत मोरी ॥ क्यों० १
फिर पछतायगी समज सयांनी, मानत तुं न करी अब मोरी । क्यों० २
लाखन ललना बनी ठाढ़ी तेरी, निपट तरनी त्रिभुवन केरी ॥ क्यो० ३
दया के प्रीतम सो तुं उठ चल हलमिल, लंग से मरी ललना चिनचोरी ॥

क्यो० ४

—वही, पृ० ६३७

पद ११५—असावरीनी धुमार

राधा आइ खेलन सखी वृंदन मे । टेक
अबीर गुलाल की आंधी बनेगी, मचेगो कीच चुवा चंदन से ।
पीचकारन की झर बरखेंगी, केसर रोरी बदन सें ॥ के हेरी० १
चद्रावली आई ललीत विशाखा, चंद्रमगा नी की चंदम से ।
चंपकलीता चंद्रिका चपला, खेलेगी उर आनंदन से ॥ के हेरी० २
ताल मृदंग झाझ डफ खंजरी, मद्दुवरी सुर सुख फंदन सें ।
ढोल ददामा डिमिडिमि झीडी गिडि, लाज कुल लोक निकंदन से । के हेरी०३
सुनत आये बलमोहन तैसें ही, सब विधि साज अमंदन सें,
सुबल सिदामा तोफर सब आदि, चतुर खेलइ सब फंदन सें । के हेरी०४
मिलि दुहु गाय चारु भयोरंग, कह्यो न जाय श्रुति छंदन सें ।
जुगल रूप पर वारी लोन हु, बलहारी धो जग बंदन सें । के हेरी० ५

—वही, पृ० ६३८

पद ११२

नंद के नेनो तेरे जादुवारी, नेनन की नोक आगे खंजरका खपवा,
क्या बरछी बी कुछ नही कटारी ॥ नद० १
नेनन की रसनी मद मंद बोले, मधुरी तन मोरो ने मीलो ना कुचारी ।
नंद० २
दया के प्रीतम तेरे माधुरी महुरत, अतरते टरत ना टारी ॥ नंद० ३

—वही, पृ० ६३६

भक्ति

पद १९—राग कालिंगडो

लगन लगेहुँ सुखरूप गिरिधारी सों।
जो मिलियें तो महासुख पैयें, समर तलपवों अनुप गिरिधारी सों।
लगन० १
हरि बिन और सबे दुःखदाता, कहाँ रंक कहाँ भूप।
दया के प्रीतम से दोस्ती भुरे तो, तरियें माहा भवकूप॥ लगन० २
—वही, पृ० ६४५

पद २२—राग जंगलो

मेरी रसना तुं वे राधाकृष्न क्यो न गाय, शाम श्यामा क्यो न गाय।
आयुरदा तेरी आयु रह्योही, बह्यो जायरे॥ मेरी रसना० १
मेरा जीयराजी वे दुरिजन सग मत जाय दुरिजन संग मत जाय।
येही बडो दुख दायरे दया दीलधर वे दयानिधिजु के पाय॥
दयानिधिजु के पाय जो भलो तेरो चाय वे॥ मेरी रसना० २
—वही, पृ० ६४७

पद २३—राग जंगलो

श्री कृष्न हरि राम राम, राधे गिरधारी। श्री कृष्न० टेक
श्री वल्लभ श्री विट्ठल श्री जी, केशव कुंज विहारी॥ कृष्न हरि० १
दया प्रीतम रट नाम निरंतर, शब्दलहर सुखकारी॥ कृष्न हरि० २
—वही, पृ० ६४७

पद १—राग जंगलो

केवल एक भावभूख गिरिधारी, कोइ बस्तुना हरि मन हारी। टेक
गरुड सों आसन कौस्तुभ भूखन, लच्छमी ललना प्यारी।
सरस्वती पति स्तुति कहा करे कोइ, धरत ध्यान सदा त्रिपुरारी॥ १
कीर्तन शेष शुकादि परमहंस, सेवे सतत पाद श्रीनारी।
तप दुर्वासा बगदालम्य से योगी, श्रुति पुरान स्तुति भारी॥ २
अठ्यासी सहस्र मुनि स्मरण करत, अरु सनकादिक ब्रह्मचारी।
जनकादि ज्ञान दान बलि, प्राचिन बर्हिष यज्ञ अपारी॥ ३
नृगादि साधन धर्म देख, तेरो साधन मद दे डारी।
दया प्रीतम एक प्रीति पराधन, देख ले गोप कुमारी॥ ४
—भक्त कवि श्री दयाराम भाई कृत काव्यमणिमाला,
भाग ४, पृ० २५१

पद २—राग सोरठ

गारे गारे गिरिराज धरन गारे,
गोपि केश राधिकेश प्रान प्यारे प्यारे, गारे। टेक
त्रिगुन अजा काल अक्षर परस्वामी रे,
इशाइश आत्माराम अंतरजामी रे,
जगतउद्भव स्थिति लयकर बहुनामी रे।
विभु प्रधान पुरुषेश्वर अच्युत सच्चिदानन्द, सकलरूप,
अकल सकल न्यारे ॥ गारे० । १
वाणी मन अगम्य अनिर्देश रूपारे।
अकलगति स्वयप्रकाश श्री अनूपारे।
छवी ललित त्रिभगी नटवर ब्रजभूपा रे।
नदात्मज यशोदोत्सग लालित, ब्रजभूषण, ब्रजवल्लभ,
ब्रजरत्ना दृग तारे नारे ॥ गारे० । २
पूर्ण परमानन्द रूप राशि रे,
आदि वृ दावन रासरस विलासी रे।
दया प्रीतम प्यारे निकु ज वासी रे,
पूर्णनन्द पुरुषोत्तम अद्भुत आनन्द कद,
मन्मथ मन हरन, वसीवारे वारे ॥ गारे० । ३
—वही, पृ० २५२

पद ३

हरिदासा हरिदासा, बनजा हरिदासा हरिदासा ॥ टेक
सुधासिंधु के समीप बसके मूढ़ रहत क्यो प्यासा।
दीन होत क्यो दु ख पावत है, बसत परस के पासा ॥ बन० १
कामधेनु सुरद्रुम चितामनि, ईश्वर अखिल निवासा।
विनकु छोड ओर कु ध्यावे, सो तो वृथा प्रयासा ॥ बन० २
मनसा देह दुर्लभ छिन भगुर, ज्यो जल बीच बतासा।
अचल सत्य एक सेवा हरि की, सब कुछ तुरत तमासा ॥ बन० ३
सरनागत वत्सल श्री विट्ठल क्यु मन रहत उदासा।
दयाराम सतगुरु बताया है मनसुबा खासा ॥ बन० ४
—वही, पृ० २५३

पद ४—लावणी

सब सीरदारा, श्री कृष्ण हमारा प्यारा, गोपाल हमारा प्यारा।
अगनित अड के करनेवारा, पालन पोखन फिर निस्तारा ॥

भक्ति

पद १९—राग कालिंगडो

लगन लगेहुँ सुखरूप गिरिधारी सों।
जो मिलियें तो महासुख पैयें, समर तलपबो अनुप गिरिधारी सों।
लगन० १
हरि बिन और सबे दुःखदाता, कहाँ रंक कहाँ भूप।
दया के प्रीतम से दोस्ती फुरे तो, तरियें माहा भवकूप ॥ लगन० २
—वही, पृ० ६४५

पद २२—राग जंगलो

मेरी रसना तुं वे राधाकृष्न क्यो न गाय, शाम श्यामा क्यों न गाय।
आयुरदा तेरी आयु रह्योही, वह्यो जायरे ॥ मेरी रसना० १
मेरा जीयराजी वे दुरिजन संग मत जाय दुरिजन संग मत जाय।
येही बडो दुख दायरे दया दीलघर वे दयानिधिजु के पाय॥
दयानिधिजु के पाय जो भलो तेरो चाय वे ॥ मेरी रसना० २
—वही, पृ० ६४७

पद २३—राग जंगलो

श्री कृष्न हरि राम राम, राधे गिरधारी। श्री कृष्न० टेक
श्री वल्लभ श्री विट्ठल श्री जो, केशव कुंज विहारी ॥ कृष्न हरि० १
दया प्रीतम रट नाम निरंतर, शब्दलहर सुखकारी ॥ कृष्न हरि० २
—वही, पृ० ६४७

पद १—राग जंगलो

केवल एक भावभूख गिरिधारी, कोइ वस्तुना हरि मन हारी। टेक
गरुड सों. आसन कौस्तुभ भूखन, लच्छमी ललना प्यारी।
सरस्वती पति स्तुति कहा करे कोइ, धरत ध्यान सदा त्रिपुरारी ॥ १
कीर्तन शेष शुकादि परमहंस, सेवे सतत पाद श्रीनारी।
तप दुर्वासा बगदालभ्य से योगी, श्रुति पुरान स्तुति भारी ॥ २
अठ्यासी सहस्र मुनि स्मरण करत, अरु सनकादिक ब्रह्मचारी।
जनकादि ज्ञान दान बलि, प्राचिन बर्हिष यज्ञ अपारी ॥ ३
भृगादि साधन धर्म देख, तेरो साधन मद दे डारी।
दया प्रीतम एक प्रीति पराधन, देख ले गोप कुमारी ॥ ४
—भक्त कवि श्री दयाराम भाई कृत काव्यमणिमाला,
भाग ४, पृ० २५१

पद २—राग सोरठ

गारे गारे गिरिराज धरन गारे,
गोपि केश राधिकेश प्रान प्यारे प्यारे, गारे। टेक
त्रिगुन अजा काल अक्षर परस्वामी रे,
हृषाइश आत्माराम अंतरजामी रे,
जगतउद्भव स्थिति लयकर बहुनामी रे।
विभु प्रधान पुरुषेश्वर अच्युत सच्चिदानन्द, सकलरूप,
अकल सकल न्यारे ॥ गारे० । १
वाणी मन अगम्य अनिर्देश रूपारे।
अकलगति स्वयप्रकाश श्री अनूपारे।
छबी ललित त्रिभंगी नटवर व्रजभूपा रे।
नंदात्मज यशोदोत्संग लालित, व्रजभूषण, व्रजवल्लभ,
व्रजरत्ना दृग तारे न्यारे ॥ गारे० । २
पूर्ण परमानन्द रूप राशि रे,
आदि वृंदावन रासरस विलासी रे।
दया प्रीतम प्यारे निकुंज वासी रे,
पूर्णनन्द पुरुषोत्तम अद्भुत आनन्द कंद,
मन्मथ मन हरन, बसीवारे वारे ॥ गारे० । ३
—वही, पृ० २५२

पद ३

हरिदासा हरिदासा, बनजा हरिदासा हरिदासा ॥ टेक
सुधासिंधु के समीप बसके मूढ़ रहत क्यो प्यासा।
दीन होत क्यो दु:ख पावत है, बसत परस के पासा ॥ बन० १
कामधेनु सुरद्रुम चिंतामनि, ईश्वर अखिल निवासा।
विनकुं छोड और कुं ध्यावे, सो तो वृथा प्रयासा ॥ बन० २
मनसा देह दुर्लभ छिन भगुर, ज्यो जल बीच बतासा।
अचल सत्य एक सेवा हरि की, सब कुछ तुरत तमासा ॥ बन० ३
सरनागत वत्सल श्री विट्ठल क्युं मन रहत उदासा।
दयाराम सतगुरु बताया है मनसुबा खासा ॥ बन० ४
—वही, पृ० २५३

पद ४—लावणी

सब सीरदारा, श्री कृष्ण हमारा प्यारा, गोपाल हमारा प्यारा।
अगनित अड के करनेवारा, पालन पोखन फिर निस्तारा ॥

सबमें और सबनतें न्यारा, कोई न पावत जीनको पारा।
मोर मुगट पीतांबर धारा, मदन मनोहर मोरली बारा॥
नखशिख नटवर रूप अपारा, त्रिलोक सुन्दर भव सिंगारा।
प्रपन्न पारिजात दुःखहारा, अधम उद्धारन दीन उद्धारा॥
अन्य भक्त के तारनब्रारा, सब सुख दायक अति उदारा।
ललित त्रिभंगी नंद कुमारा, राधा जी हैं जिनकी दारा॥
नित व्रिंदावन करत बिहारा, जान दयाराम उरहारा॥

—वही, पृ० २५३

पद ५—राग कानडो

यह माँगो श्री वल्लभ लाल, अपने चरण कमल मन मेरो,
लुभ रहे ज्यों मधुव्रत बाल॥ यह० टेक
नन्द नन्दन वृषभाननन्दिनी सेवु सतत सब सुखजाल,
सतसंगत गुन गान अहर्निश, रुचे नहि कछु अनुचित ख्याल॥१॥
श्री वल्लभ सद बल्लभ सह मोहे, अति वल्लभ रहो ज्यों मनि व्याल।
श्री सुबोधिनी श्रवण वास व्रज, नित्य जमुनाजल पान रसाल॥२॥
दृढ आश्रय श्री महाप्रभु पद को, बिना मोल चेरो सब काल।
दासी दोस्ती कुंज महल में, दम्पती प्रसन्न देखी होउ निहाल॥३॥
युगल उच्छिष्ट आहार नित्य पाउं, चलुं अनुव्रति प्रिया गोपाल।
दास दयाको यह फल दीजै, सहज कृपा मेंटी सब साल॥४॥

—वही, पृ० २५४

पद ६—राग भैरवी

हम साकार उपासी वे, सब गोकुल के बासी वे॥टेक
उधो तुम अद्वैत ब्रह्म कहो, निराकार गुन हीने।
प्रेमी जन को पंथ नही, हम शुष्क ज्ञानी तुम चिन्हें॥ हम० १॥
खोलवो अरस परस मल कहीए, दिल मिल बाती विचारा।
मुंदे नैंन मृतक बराकर, ऊदास ध्यान तुमारा॥ हम० २॥
ललित त्रिभंगी छेल फांकडे, नटवर नाथ हमारे।
निर्गुन ब्रह्म सो धामरे उनका; समुभत समभन वारे॥ हम० ३॥
ब्रह्म रूप को जोव कहत ज्यों जोव ब्रह्म ठहरावे।
ऐसो ज्ञान बसत जाके हीय, कबु कल्याण नहि पावे॥ हम० ४॥
जग कर्ता के रूप नहिं तो, जगहुं काहां ते आया।
कारन जैसा कारज होवे, न्याय शास्त्र में गाया॥ हम० ५॥

निराकार केहे दूर निवासी, निकटी अवयव देखे।
तेजोमय रवि चकत कहत परि, अरून रूप क्यों पेखें ॥ हम० ६ ॥
रूप बिना कर्तृत्व बने नहि, दिव्य रूप श्रुति गाया।
कर मुख बिन क्यों बंसी वजाई, पाउं न क्यों वन धाया ॥ हम० ७ ॥
तुम जो जूदे नही ब्रह्म सो, को ब्रह्मानन्द भोगी।
भोग्य भोगता नहि तुमरे मत, तब जोगी क्या रोगी ॥ हम० ८ ॥
ऐश्वर्यादि खट गुन संयुत, निर्गुन कैसे कहीए।
तजा त्रिगुन पर शुद्ध सत्व हरि, निरखत सब सुख लहीये ॥ हम० ९ ॥
भक्त नेत्र भूपण माणि, राधावर श्री कुंज विहारी।
दास दया के मान जीवन धन, श्री गोवर्धन धारी ॥ हम० १० ॥

—वही, पृ० २५५

पद ७—भैरवी राग

तेरो कीयो कछु बनत नही, ते वृथा करत चित काहेकुं चिंता।
ते तो हैं भयो टरत नहो, बिन रुचि *भगवंता* ॥ तेरो० १॥
निज बल पार न पाय जहाँ जब त्यो, हरि के बल बिन सब जता।
चिंता अखित दोप की माता, तातें हिय न बसन दे सन्ता ॥ तेरो० २॥
जियकुं करनो परत नही कछु, प्रथम होंते इची राख्यो अनंता।
गज उप्टर उची सुढि ग्रीवा, लंब करी श्री कन्ता ॥ तेरो० ३॥
केवल हो करता मानत हैं, तिनकी मुरखता नहि अन्ता।
दया प्रीतम जिय प्रेरि करावें, तितो होय समजुत मतिवंता ॥ तेरो० ४॥

—वही, पृ० २५५

पद ८—राग भैरवी

हरदम कृष्ण कहे श्री कृष्ण कहे ते जवां मेरी।
ये ही मतलब के खातर करता हूँ खुशामत तेरी ॥
दही और दूध शक्कर देता हूँ हर वख्त तुझे।
तोभी हररोज रिनाम न सुनाती मुझे ॥
करे गुनगान गोविन्द का तो मुख परी वे भला।
नहीं तो मैं मैं एच निकालूंगा, क्या मुख चाम बला ॥
खोई जीदगानी सारी, सोई गुनाह माफ तेरा।
दया प्रीतम नाम मत भूले, बाखर वख्त मेरा ॥

—वही, पृ० २५६

पद ६—जोगी आशावरी

अब हों सरन पर्यो मेरो कर घारो हो श्री जी ।
तब में जाय तर्यो निज बलसों; तारो हो श्री जी ॥ टेक
साघन घर्म सकल में देख्यो, बहुत कठिन फल फीको जी ।
श्रम छोटो फल मोटो जिनमें, सरन तिहारी नीकी जी ॥ तब० १ ॥
अबल जीव एक अनेक रिपु क्यों शुद्ध साधन बनी आवे जी ।
चित्त क्लेश बनी जदवा तदवा, सो का तुमकुं रीझावे जी ॥ तब० २ ॥
कबु कोउ बहुत कियो श्रम साधन, सुफल कबु कोउ होई जी ।
ललित त्रिभंगी मोहन मिलावे, सो साधन नहि कोई जी ॥ तब० ३ ॥
एक बेर कोउ कहे तिहारो, ताहें अभय कर डारो जी ।
दयो कहे लख कोटि बेर कहुं, हुं श्रीकृष्ण तिहारो जी ॥ तब० ४ ॥

—वही, पृ० २५६

मंगलाचरणम्
ध्रुपदराग-कल्याण

महा मंगल रूप श्री गुरुदेव श्री महा प्रभो,
जाके पदपद्म को प्रथम सिर नाइये ॥ महा मंगल०
नाम लेत उदय होत आनन्द कन्द,
पाप ताप टरत सब ध्याइये ॥ महा मंगल०
ब्रह्मा शिव विष्णु परब्रह्म सो गुरु राइ,
सकल तीरथ आदि अंध्रिरज नाइये ॥ महा मंगल०
दयो कहे आचारज अधिक को दूजो नहि,
गुरु सेवा चिन्तामनि इच्छित फल पाइये ॥ महा मंगल०

—श्री दयाराम कृत काव्यमणिमाला, भाग ३
(दयाराम के हस्ताक्षर के पहले का पृष्ठ)

श्री हरिदास मणिमाला
॥ दुहा ॥

श्री गुरु वल्लभ देव को, प्रथम ही करूं प्रनाम ।
श्री विट्ठल श्रीकृष्ण श्रीयमुने पूरन काम ॥ १ ॥
प्रभु मो पर करुना करो जांनी अपनो दास ।
प्रेम लच्छना भक्ति दे, राखो अपनी पास ॥ २ ॥
निज सेवा सत्संग, समुरन निशदिन गुनगान ।
दृढ आश्रय अति दीजिए, हरीए क्लेश अभिमान ॥ ३ ॥

आयो शर्न विपाक को भूरस्यों जग जीवन।
चरन सरन मोही राखीए, ज्यों राखे बहु जन ॥ ४ ॥
श्री दामोदर दास सब पुष्टि सृष्टि को मूल।
श्री गोवर्धन नाथ तुम सदा ताहे अनुकूल ॥ ५ ॥
कृष्णदास सूर चत्रभुज, कुंभन परमानन्द।
नन्द दास छीतस्वामी जु अरु स्वामी गोविन्द ॥ ६ ॥
अष्ट सखा यह आपके, प्यारे पुरुषोत्तम।
निज लीला मे नित्य निकट राखे पूरन ब्रह्म ॥ ७ ॥
चोर्यासी द्वै शत अरु, बावन वैष्णो जन।
दैवीजन सब पुष्टि के, राखे सदा शरन ॥ ८ ॥
प्रनत माल हरि भक्त बच्छल, प्रभु दीन दयाल।
इत्यादि अति बदे तुम बहुत करो ब्रज पाल ॥ ९ ॥

—दयाराम कृत काव्यमणिमाला, भाग ६ में
श्री हरिदास मणिमाला, पृ० ११०

रावन कुम्भ करन हनै, दीयो विभीषन राज।
तुम विचारी रघुकुल तिलक, शरन आये की लाज ॥ ४३ ॥
पुंडरीक पर प्रसभ व्है, आये हरि बरुद दैन।
भ्रीमातर विट्ठल बरो, कीये इंट पर ऐंन ॥ ४४ ॥
ध्रुव को अविचल पद दीयो, टारे सब सन्ताप।
चरन धरायो काल शिर, ऐसें प्रिय जन आप ॥ ४५ ॥
चन्द्र हास नीजदास यही, छनु छनु कीन्ही सहाय।
विष टारी विषया करी, जन वच्छल ब्रज राय ॥ ४६ ॥
हरिश्चन्द्र को तुम हरि, भलो निभायो सत्य।
दूर कियें सकट सबै, दीनो उत्तम गत्य ॥ ४७ ॥
अबरीष को कीर्ति सब जग प्रगटाइ आप।
जनरच्छन कुं सुदर्शन, दीनो चक्र गोरार ॥ ४८ ॥
रति रुकमागद राय को एकादशी पर अत्य।
नगर अयोध्य सहित हरि, वैंकुंठ दीनी गत्य ॥ ४९ ॥
उदर उत्तरा पैठी के, परीक्षत रच्छा कीनी।
शुक को सग मिलाय कें, माधो मुक्ति दीनी ॥ ५० ॥
भागीरथ की भक्ति लखी, दीनो गंगा दान।
भूपति साठ हजार को, हरि कीनो कल्याण ॥ ५१ ॥

—वही, पृ० ११४

ज्ञान देव सोपान अरु नवृत मुक्ता बाइ।
ताहोने यश हित, हरि तुम जड भींत चलाई ॥१०२॥
मत अद्वैत स्थापन कीधो, भक्ति पंथसु भिन्न।
शंकर स्वामी प्रगट व्हे, प्रभु आज्ञाधीन ॥१०३॥
पृथ्वीराज भरथरी बिक्रम हरिदास।
श्रीमट रामानंद उर परमानंद प्रकास ॥१०४॥
जेमल की लज्जा, प्रभु राखी भृत्य बिचार।
दारु असि दरसाई तुम, नृप सांची तरवार ॥१०५॥
बोजे सांध प्रियदास तुम, तुम ताकुं नहीं ओर।
जीन हित श्रीरनछोरजी, आय बसें डाकोर ॥१०६॥
भक्त बिल्वमंगल, प्रगट दीने दरस गोपाल।
"करनामृत" एक ग्रंथ, जीन कीनो परम रसाल ॥१०७॥
इत्यादिक सब संत कुं, अगनित करुं प्रनाम।
सकल मोहे करुना करी, देहुं रति सुन्दरश्याम ॥१०८॥
श्री हरिदास अपार है, कैसें पाऊं प्रनाम।
ज्यो खग चंचु समुद्र सों भरें, ताही बिधि जांन ॥१०९॥
हरि गुरु हरिजन एक त्रय, ज्यों गंगत्रय धार।
भोगवती भागीरथी मंदाकिनी बिच्यार ॥११०॥
मंगल रूप निधान यह, आदि मध्य लों अंत।
नामांकित हरिदास हरि, प्रति पद दीजे चंत ॥१११॥
नाम धर्यो यह ग्रन्थ को, श्री हरिदास मनिमाल।
महापतित पावन बने, करत पाठ ततकाल ॥११२॥
अनायास भक्ति मीलें, प्रेम सहित घनश्याम।
सकल मनोरथ सिद्ध होय, पावे वेकुंठ धाम ॥११३॥
सदा काल श्रद्धा सहित, यह चरित्र जो गाय।
कटे पाप संताप सब, परमानंद सुख पाय ॥११४॥
संत रत्न सूत्र चाह, श्री कृष्ण कंठ पहेराय।
मग्न कृतार्थ कवि भयो, निश दिन एही यश गाय ॥११५॥
धरी संख्या यह ग्रंथ के, दूहा सात एक बीस।
पढ़े सुनें सीखे सदा, ताही मीले जगदीश ॥११६॥
पुनित पुलिन श्री नर्मदा, निकट चंडीपुर सद्म।
श्री जल शाइजु जगपति, ता छांहे जुगल पद पद्म ॥११७॥

द्विजनागर साठोदरा, दयाराम अभिधान।
कहावे वैष्णव वल्लभ, कीयो सत गुनगान ॥११८॥
भेद छंद गुन बरनके, लहु नहो रति मान।
क्षमा करो सब दोष, हरि देहो अभय दान ॥११९॥
यह माणु प्रभु आपपें, रहो प्यारे प्रिय सग।
वाच्छे वल्लभदास हरि, प्रेम सुभक्ति अभग ॥१२०॥

इति श्री कृष्णजन श्री वल्लभ दासानुदास कवि शिरोमणि रसिक भक्त श्री दयाराम भाई कृत "श्री हरिदास मणिमाला' सपूर्ण

—वही, पृ० १२० से १२२

कौतुकरत्नावली

दया दारतें यो बतो, ज्यो छहि सके न छहाइ।
छाय छवत काया ग्रसे, छाया मगरी नाइ ॥४॥

—दयाराम कृत काव्य मणिमाला मे कौतुक रत्नावली, पृ० २०६

म्हेरि अजब गुल कृष्ण जप, अचल धार व्रत लीन।
चूगनी गहि मुख पद, प्रभु जल पुछ ऊट मुख दीन ॥१६॥
हरिजन सग मरे जीये, दैवी जीव अनेक।
मेघ बुद परसत मरे, जैसें जीवत भेक ॥१७॥
राधा मोहन दरस बिन, जीवे न रसिये दास।
गुजा केधा मिरच्य बिन, सग न बसे वरास ॥१८॥
मरेहू प्रेमी सध जीवे, दरसत हरि जीवन।
आवत ज्यो जड लोह में, चमक लखत चेतन ॥१९॥
जननी जनक मे प्रीति, अस हरिजन धरि निर्दोष।
नाग वेलि जब हिम जरे, जरे सुदल शत कोप ॥२०॥
राधा माधव एक वसु जुगल देह दरसाय।
नरमादा जिमि एक है, कुरद पक्षी न्याय ॥२१॥
हरिजन को मन हरिहि मे, कहुँ जिसे पचभूत।
ऊँट मरे ज्या क्यो हुँ, गिरिमुख सन्मुख मस्त ॥२२॥
क्योहुँ रुच्यो न रहे, घसें हरिपें मन हरिजन।
भ्रमर धूम्र मृग मद झुके, प्रतिकूल जदपि पवन ॥२३॥

—वही, पृ० २१४

अकल चरित्र चंद्रिका

नाग पाश बंधाये, नटवर काली नथ्यो अहि छिन में।
अकथित अचित महिमा मोहन, आवत बचन न मन में ॥१०॥
. का सुंदर छवि? महा भयंकर अंतक को कंपावे।
छेल छबिले मदन मनोहर, सोहु निगम नेति गावे ॥११॥
शांत न नरहरी महा क्रोधी, श्री, शिव, शंके न सुनि गाथा।
क्रोधीहु क्यों कही? भृगु पद प्रहार सह्यो प्रभु! महा विभुनाथा ॥१२॥
सत्य संकल्प तदपि बहु खटपट, श्री गोपाल श्रुति गावे।
जो साचें क्यों छल्यों बलि नृप! निश्चय एक न आवे ॥१३॥
जननी सहोदर आदि हते, तहु भृगुपति दोष न भीने।
राम पूरन संग्राम हतें रिपुरावन, हयमख कीने ॥१४॥
बानर बल्लव बच्छ जिवाये, निज जांनी पलमांही।
यादव कुल क्षय करवाये, प्रभु वे का अपनी नां री ॥१५॥

—दयाराम कृत काव्य मणिमाला, भाग ६ में अकल चरित्र चंद्रिका, पृष्ठ २५३ और २५४

असरन शरन अनाथ नाथ हरि, आरत बंधु सांचे।
पतित पावन भक्ताधीन भगवन्न, उहि श्रुति बांचे ॥५४॥
निस्साधनी को नाहीं धीधावनो, साधनी गर्व न करनो।
दीन होय रेहेनो दोहु को भल है, मधुसूदन कर सरनो ॥५५॥
ऐसें सब बिधि समर्थ इश्वर, श्री मुख गिरा अलापी।
अहित क्योहु मेरे भक्तन कों, होय न करूं कदापी ॥५६॥
अति अपराधी होय तहुँ, जो अनन्य व्हें मोहि घ्यावे।
धेनु बच्छ ल्यो मोहे भक्त प्रिय, अवगुन क्योंहु न आवे ॥५७॥
भक्त प्रानतें प्यारे श्रीहरि, माने आप अघाको।
तहुँ मन गर्व न धरनो जनको, सत्य दीन सो नीको ॥५८॥
ओर दोष कों रोप न आवें, रुचे न कबु अभिमाना।
गोपी जन सें प्यारे तिनसों हु, भये अंतर्ध्याना ॥५९॥
म्हारे दीनता साची केवल, आइ मीले तब आई।
टरीवे मील बेको दुहु वस्तु, दीनी कृष्ण बताई ॥६०॥
जैसो हों तेसों तुम मम प्रभु, कृष्ण करूं हुं प्रनामा।
जेसो हूं तेसों मोहि पालो, महा प्रभु सुंदर श्यामा ॥६१॥

दया प्रीतम की "अकल चरित्र चंद्रिका" जो कोइ गावे।
तिनके सब संदेह मिटि जावे, श्रीहरि पदवी पावे ॥६२॥

—इति श्री कृष्णदास श्री वल्लभदासानुदास कविवर श्री दयाराम भाई विरचित "श्रीकृष्ण अकल चरित्र चंद्रिका" समाप्त।

—वही, पृ० २७१ से २७३

मुकुन्द

पद १०—राग गोड मल्हार

मघवन कोप्यो मुरारी श्री वृज पेरे।
महा परले को मेघपति आयो, सार करो ज्यु हमारी। श्री वृज०
वादल ठठ घटा घन घेरो, दामनी चलकत कारी।
आदिन अर्क तनक नही तेज को, हो गई रेन अधारी॥ श्री वृज०
उत्तर दीश थी सारिग प्रगटे, बु द परत हठारी।
सुन्दर श्याम प्रभु चरणे रे राखो, अघात परत है वारी॥ श्री वृज०
तब उछरंगे कृपा दृष्टि रे कीनी, बात हृदय मे बिचारी।
गीरी कर घरवे की मनसा रे कीनी, मुकु द महिमा भारी॥ श्री वृज०

—बृहत्काव्य दोहन, भाग, ५ पृ० ८०७

पद ११

गोवर्धन गिरधारी, प्रभु मेरे, गोवर्धन गिरधारी।
आई उठाके प्रभु उधंज लीनो, वाम कर पर ठेरा री॥ श्री प्रभु०
नद के नदन गोवर्धन हेरो, उपर चक्र धराही।
वास कयो गोवर्धन नीचे, गौ बछ हेठ चराही॥ श्री प्रभु०
सात दिवस लो वृपा भइ व्रज मे, ता पिछ हार वराही।
हे ठे घोर बाजे गोरस को अपने घेर ज्यु कराही॥ श्री प्रभु०
धवल मगल गावे व्रज वनिता, मान भग मघवन वराहा॥
आदि नारायण प्रगटे श्री व्रज मे, जाय मुकुन्द बलिहारी॥ श्री प्रभु०

—वही, पृ० ८०८

पद १२

श्री हरी चरण रेन परवारी।
कोटि कलप को सकट कापे, यम किकर थी अभय करारी॥ श्री हरी०
मुकुट मनोहर पीताम्बर घर, शख चक्र गदा वर धारी।
मकरा कृत कु डल वर्णोपरी, ऐसे विराजत मदन मुरारी॥ श्री हरी०

कोटि काम वाकी स्तुति करत है, अज सुरिनर वाकी करत ही सेवारी।
पय सुत में जैसे घृत रहत है, ऐसे अन्तर में कुंज बिहारी ॥ श्री हरि०
हृदय कमल में हरि देव जानो, एक आवे नामे गनिका तारी।
प्रल्हाद कारने नृसिंह प्रकटे, हिरण्याकश्यपु फाडो उदर विडारी ॥ श्री हरि०
अम्रीष कारन दश रूप प्रगटे, गज मुकाव्यो जुद्ध घेरे मारी।
ऐसे अनेक भक्तन हुं उधारे, मोर मुकुट पर मुकुन्द वलिहारी ॥ श्री हरि०

—वही, पृ० ८०८

पद १३—राग सारंग मल्हार

आज रथ बैठे श्री मदन गोपाल।
आइ मिले सब वृज के वासी, निरखत गोपी ग्वाल। आज०
हरित वसन घन भाइत वाघा, पाघ कुसुंबी रसाल।
मोतन माल कुसुम ओर गुंचा, कनक जडित तडित मणि लाल ॥ आज०
शुची मास शुक्ल हो तृतीया, मीले हरी जन जन चोक विशाल।
गावत राग सप्त स्वर विधवे, बीन मृदंग तान अरु ताल ॥ आज०
आए जुगल तुरी हरो पाए, चलत विमल मति गति सु मराल।
गाजत घोर घन्टा कंकनीयां, विविध मनोहर शब्द रसाल ॥ आज०
निरखी हरखी सुर वृज की बनिता, रथ राजीत भुवन प्रतिपाल।
मुकुन्द प्रेम मगन भरि निरखत, पुन्य प्रबल जाके अति भाल ॥ आज०

—वही, पृ० ८०८

पद १४—राग सोरठ

मोहन मधुवन में बीराजे।
वादर झुक आयो चौफेरो, मधुर-मधुर स्वर गाजे। मोहन०
घटा छटा घन दामनी चमकत, मोर बपैया समाजे। मोहन०
सुन्दर श्याम प्रभु मनोहर मूर्ति, देखी मदनमस लाजे। मोहन०
मुकुन्द मंद मति कहे कर जोडी, हृदय कमल में बिराजे। मोहन०

—वही, पृ० ८०८

पद १५—राग कानडो

जय वृजराज जगत सुखकारी।
निज्जन प्रेम भक्ति केरे कारण, प्रगट भये वृज कुंज विहारी ॥ जय०
कश्यप सुत तनया के तीरे, नेरे-नेरे सग सखारी।
लीला रंग अंग रम भीने, प्रेम मगन अति द्रगन निहारी ॥ जय०
वेद भेद मर्जादा कारण, तारण प्रिय रिपु शब्द उचारे।
नाम भजन अर्च्या द्रग सेवा, प्रथ ही चले सोही जन कुं ओधारे ॥ जय०

कृपा सिंधु बंधु निज जन के, अगम अगोचर अघ सें रे तारे।
त्रिगुणातीत अखंड अविनाशी, सो प्रगट भये कलि दोष निवारे ॥ जय०
पतित के पावन बरद तुहारे, ओरी सुनके तुम चरण निहारे।
अधम अति सो मुकुंद तम चरणे, भव सागर को भय अति मारे ॥ जय०

—वही, पृ० ८०६

पद १६

आ अवसर प्रभु सेवा रे कीजे।
त्रिविध ताप मिटे निज जन को, मन क्रम वचनेरे हरि रस पीजे। आ०
करुणा नायक बहु सुख दायक, लायक जनके कष्ट हरीजे।
प्रेम मगन भजन लगनी से, एहि विधि जन्म सफल करी लीजे ॥ आ०
करी सत्सग अग रस भीने, परमारथ में जो[1] कछु दीजे।
सब परिवार अर्थ के बंधु, विपति कालमा रे कोनसें रे कीजे ॥ आ०
मन क्रम वचने रे द्रढता सेवो, हृदय कमल मे रे ध्यान धरीजे।
मुकुंद त्रिविध ताप निवारन, क्रिपा करे तो भव से रे जीजे ॥ आ०

—वही, पृ० ८०६

पद १८—राग असाणो

नवल किशोर कित मिले चदावनी, कित मिले चंदावनी। नवल०
है वषु प्यारी भ्रखुभान कुमारी, मेरे मन चित कु चोर। कित०
कारि-कारि बादलीमां बिजली चमूके, मेहूला करे घमघोर। कित०
शशिवदनी के चित्त के विछु रे, सुरती रहत नही ठोर। कित०
मुकुंद मदन मोहन छबी निरखी, आनंद की गति ओर। कित०

—वही, पृ० ८१०

पद १६—राग घुमार

आज लाल खेले होरी रे, वृज की बीथनी मे। आज० टेक
इतही मीले नंद लाल ग्वाल सब, उत भ्रखमान किशोरी रे। वृज०
नागरी-नागरी रंग भरी लाई, केसु कसुबो घोरो रे ॥ वृज०
भरी पिचकारी ग्वाल सब ठारे, भारे है गुलाल को झोरी रे। वृज०
छिरकत मोहन युवति परस्पर, बोलत फाग बहोरी रे ॥ वृज०
निरखत मोहन प्रेम मगन भर, निज जनके चित चोरी रे। वृज०
मागत फाग लाग सब जन को, युवति कहे कर जोरी रे ॥ वृज०
फगुवा देत लेत सब जनकु, पूरण काम मयोरी रे। वृज०
मुकुद कहे ओ ही अवसर की शोभा, कहा वर्णवु मति थोरी रे ॥ वृज०

—वही, पृ० ८१०

पद २०

मत डारो पिचकारी रे, वृज की वनिता परमत। मत० टेक
तुम नंदजु के कुवर कन्हैया, हम गुजरी वृज नारी रे। वृज की०
और गली खेलो मन मोहन, सगरे संग, सखारी रे। वृज की०
सासु ननदी बहु विघ बोले, अवली बात विचारी रे। वृज की०
मन की वृत्ति तुम सब जानो, हम तो हो दासी तुमारी रे। वृज की०
मुकुंद कहे मोहन वृज की वनिता, हसि-हसि लेतहे तारी रे। वृज की०

—वही, पृ० ८१०

पद २१—राग सोरठ

मोहन मधुवन में बीराजे, मोहन मधुवन में बीराजे। मोहन०
बादुर झुक आयो चोफेर, मधुरे-मधुरे सुर गाजे। मोहन०
घटा छटा घन दामनी चमकत, मोर बपैया समाजे। मोहन०
सुन्दर श्याम मनोहर मुरती, देखी मदन मन लाजे। मोहन०
मुकुद मंद मति कहे कर जोरी, हृदय कमल में बिराजे। मोहन०

—वही, पृ० ८१०

नरभेराम

रासलीला

पद ५

कनैया कोकी तेरी हो, कामन गारी ॥ टेक १
जमनां तीर नीर भरने गइ थी, कंकरी गगरी में मारी हो ॥ कनैया० २
.... दृष्टि फरे छे न्यारी न्यारी हो ॥ कनैया० ३
ककरी वागी छे कानयां आवी, तेछी वारनी रही छुं हारी हो ॥ कनैया० ४
गुरु चरण प्रताप थी नरोभ, फरी फरी जाय वारी वारी हो ॥ कनैया० ५

—प्राचीन काव्य माला ग्रंथ पृ० २२

पद ७

हरिने हेते वंसरी बजाइ हो, नंदने लाले बंसरी बजाई। टेक १
वन मे चाले राग रागनी सहित, गोपिका अकलाइ हो ॥ नंदने० २
कामिनी सेज समारे कंथनी, शब्द कानमां पेठो छे आइ हो। नंदने० ३
कोइ श्यामा ए शब्द सुण्यो कानमां, प्रेम रस मांय भीजाइ हो। नदने० ४
रहे नरभेराम गुरु प्रतापे, पूरा प्रेम समुद्रे नाही हो ॥ नदने० ५

(इ) सन्त कवियों की कविताओं से संकलन

अखो

अकल कला खेलत नर ज्ञानी
जैसे ही नाव हिरे फिरे दसो दिश
ध्रुव तारे पर रहत निशानी ॥ ध्रुव ॥
चलन वलन अवनी पर वाकी
मनकी सुरत अकाश ठरानी ॥
तत्त्व समास भयो है स्वततर,
जैसे हिम होत है पानी ॥ अकल० १॥
छुपी आदि अन्त न पायो,
आइ न सकत जहां मन वानी ॥
ता घर स्थिति भई है जिनकी
कही न जात ऐसी अकथ कहानी ॥ अकल० २॥
अजब खेल अद्भुत अनुपम है
जाकू है पहिचान पुरानी ।
गगन हि गेब गया नर बोले ।
एहि अखा जानत कोई ज्ञानी ॥

—आश्रम भजनावलि, पृ० ११६

संतप्रिया

दोहरा

ओंकारथो आय हो, अकलरूप अनंत ।
कल्पितता मध्य शून्यसो, माननिता मानत ॥१॥

आद्य निरंजन आप अज, त्यां[1] कीनो अध्यारोप।
अर्धमात्रा अखो कहे, कीनो प्रकट गोप ॥२॥
ताही को विस्तार सब, भाषा कवित्त करके कहूँ।
हे चिद् अरणव अगाध, हुं[2] चोंडी चंच भरके कहूँ ॥३॥
संतप्रिया सुखवर्धनी, जाके हृदे हेत।
अखा करत आलोचना, तहाँ धर आप ले देत ॥४॥
सतप्रिया संतकुं रुचे, बड़ आशे शिवरूप।
रूप अरूपी जे[3] नरा, अनुभव अकळ अनुप ॥५॥
परब्रह्म कहत परोक्ष हे, बिन प्रत्यक्ष प्रमान।
जाकुं पिंड परचा नहीं, सो कोटि करे अयान ॥६॥

कवित्त

प्रत्यक्ष के प्रमान बिना नर, धावत धूपत तोरत पाती,
प्रत्यक्ष के प्रमान बिना, नर नाचत गावत होय रे याती;
प्रत्यक्ष के प्रमान बिना, नर खावत पीवत श्यामा सराती,
न प्रत्यक्ष प्रमान सो नारा, बिन भरतार सोहे ज्युं बराती ॥७॥
परब्रह्म राम नारायण नरहर, जाके हे नाम अनंत अपारा,
सो हरि हाज हजूर हयोहय, स्वे नर पावे जो आवे विचारा;
गुरु गोविन्द गोविन्द सोही गुरु, गुरु गोविन्द गने नहि न्यारा,
बैकुंठ ते शुकदेव गुरु बिन आयो, फरी भू भाखे सो नारा ॥८॥
सद्गुरु चरन सरन ग्रहे बिन, भवजल आए सो बहुत विरासे,
सद्गुरु चरन सरन ग्रहे बिन, वेद पढ़ें ते बंभ निरासे;
सद्गुरु चरन सरन ग्रहे बिन, दानी करन संसे परे साँसे,
सद्गुरु चरन सरन सो नारा, स्वे हरिरूप करे मन आसे ॥९॥

दोहरा

मनसा वाचा कर्मणा, हरि न भज्यो प्रिय जान।
अनन्त विषे रससें पच्यो, पुनी गयो पसारे पान ॥१०॥

कवित्त

कहा भयो कंचन कुन्दसो अंग, रंग सुगन्ध शोभा अति ओपे,
कहा भयो तान तुरंग तूरी चढ़े, ध्रूजे धरा जाके नेक कोपे;
धनद सो धन करन सो दानी, तो कहा काम सर्यो हरि तोपें,
एते गुन अवगुन भरा सोनारा, जो[4] गुरुज्ञान न पायो गुरु पें ॥११॥

---

१ । २ में ३ ` ४ ` ।

गन रिझावन वेदविद्या सब, मन रिझावन चौद विचारी,
मन रिझावन पाट पटम्बर, मन रिझावन महल अटारी,
मन रिझावन ताप तपे सब, मन रिझावन होय ब्रह्मचारी,
मन कु मेट मनातीत पावे, सो तो अखा है गुरुकल न्यारी ॥१२॥
राम रसायन पी न शवे जन, बहुत जीएँ तें कहा कीनो भगो रे,
राम की मेर चामरग राच्यो ज्यु, स्वान सुनी कीरेही लग्यो रे,
गुरु गोविन्द पहिचान न पायो, रिपु सो हेत तो सोही डग्यो रे,
ए डहक्यो डगेडग माया सोनारा, जो गुरु बेन न जग्यो रे ॥१३॥
धन-तन-त्रियासु ऐसे जडयो मन, जेसें पडयो मीन के मन पानी,
धन-तन त्रिया सो छांड[1] जात है, मन की प्रीति न होय पुरानी,
एही अविद्या घेर्यो[2] दशोदश, ज्यो जल डूबत नाव भरानी,
अब कर करतार शब्द को सेवा, जी लो सोनारा भीनेकी भान न जानी ॥१४॥
रे मन ! राम भजन की ठोरलें, भई है रग रगीली सी रामा,
सुन्दरश्याम सुनायो सुन्यो है, स्वे सत्यरूप सरावे तु श्यामा,
अबुज सी अगना अति आछी, मन मधूप पाये विरामा,
भाव भगति भरोसो सोनारा, भूधर की ठोर भई है ज्यो भामा ॥१५॥
रे मन ! राम रहे न पहचान्यो, तू कवन निंद सोयो रे गुमानी,
ओस को नीर चह तन धन जोबन, ज्यो घन मे बिजली मुसकानी,
ताही मे मोती तू पोई ले प्यारे, सई ले सद्गुरु सन्त ज्ञानी,
हसकला गुरु देवे सो नारा, न्यारा[3] रहे दूध पानी का पानी ॥१६॥
सद्गुरु सान सभाले सो सतजन, अन्य तें मन कछु ठोर न आवे,
मजन सो मल टारे उपर के, भवभजन गुरु ज्ञान बतावे,
खजन सी मति छाड सद्गुरु, अजन दे नैन घेहेन गँमावे,
गुरु गोविन्द नही नर न्यारा, सोनारा सेवे सो सबे सूझ पावे ॥१७॥
सद्गुरु मान सबे वहे सपन, खपन[4] येही के ब्रह्म न जाने,
ब्रह्मज्ञान बिना भटके नर भूले, अट्टल[5] आपा परहाथ बिकाने,
आप कोई ओर उपासन ओर ज्यो, तोलका नीर मसी[6] मध्य साने*,
ऐसें अखो कहे भये भवमे गुरु, गोविन्द कहा शीष पें उर आने ॥१८॥
ऐसे नरकु गुरु कीजे सोनारा, ज्यो न्यारा जमे सिंधु मे जलमोती,
ज्यो किमत कोई कला न पहिचाने, जल मे पहाड छिपे मध्य जोती,

---

[1] छोड, [2] घिरा, [3] अलग, [4] निर्बलता, [5] अकेले, [6] काजल,
* मिलता है।

जले ऊपरी[1] ओर धून्य अरे नहि, जो मरपूर मरी मध्य होती,
ऐसा गुरु राम राम कर छोड़े, टाले सो श्वान श्रृगाल के गोती[2] ॥१६॥

दोहरा

अच्युत गोत्र जन रामका, हंस वरन हरिरूप ।
गुरु गोविन्द कुं जब ही मिले, तब ही भये तद्रूप ॥२०॥

कवित

नीचर्य नीच कैसा कुल होता, जात वरन खपे चतुराई,
पंडित ज्ञान बड़े भट वैकुंठ, न चले ज्यों निमान बजाई;
चमार जुलाहा नाई धुनिया, दादू रैदास सेना कबिराई ।
राम सोनारा अग्नि की सी ज्वाला, मध्य पड्यो सो कीनो अपनाई ॥२१॥
नांही करम की कीच हरिजन कुं, मक्षिका न छुए जैसे चंदन कुं,
ज्ञान गगन में जात सवे गेव, एव नहि मेघ बुंदन कुं;
भीली के बोर[3] जूठे मखे भाव सों, तो कहाँ लाज लगी रघुनन्दनको,
ए[4] जेसो तेसो है हरिजन सोनारा, कियो है ज्यो नीर वंधन को ॥२२॥
जोपें[5] राम रह्यो रदिया[6], उदया है दिनकर कहाँ शशी,
विधि निषेध वपुरा को[7] कहाँ बल, जहाँ गुरु की करुना विलसी;
स्वे शुकदेव पायो गुरुभेव[8] कहाँ चंदन चरच्यो तुलसी,
अखा जैसे हैं मूककी[9] साकर, घट फूटे[10] सो जाने सोरी भो लसी ॥२३॥
ब्रह्मज्ञान बिना सुख को सीहोर[11] न पावे, ज्ञान बिना संसे नही छूटे ।
ज्ञान बिना देह को अपराधी, ज्ञान बिना नित्य थे सब लूटे;
ज्ञान बिना श्वान शुकर जैसो, ज्ञान आयो भ्रम को भांड फूटे,
ज्ञान सो गोविन्द गोविन्द सोही ज्ञान, ऐसे अखो कहे माया सें टूटे ॥२४॥
ज्ञान बिना ढूढ़े गिरिगह्वर, ज्ञान बिना पराधीन सो नंचे[12] ।
ज्ञान बिना मंजन मलधारी, ज्ञान बिना काय के केश खंचे[13];
ज्ञान बिना जुवती जन मोह्यो, ज्ञान बिना करम कोध्य न बचे[14],
जब ज्ञान गर्ज्यो संग सोनारा, मागे भ्रम मेगल[15] मद मंचे ॥२५॥

---

[1] झोंपड़ी, [2] खोजकर, [3] बेर, [4] वह, [5] जिसपे, [6] हृदय, [7] बेचारे का, [8] गुरु का रहस्य, [9] गूंगे के लिए जैसे गुड़ है, [10] जो प्रत्येक वस्तु में राम को देखता है वह जानता है कि यह इसकी ही सुरभि है। [11] झरन, [12] नाचे, [13] खिंचे, [14] दूर होता है, [15] भ्रम रूपी हाथी।

दोहरा

सर्वातीत सब जा विषे, सब समेत अब शून्य।
स्वे स्वरूप स्फुरन भयो, नाही ज्ञान नहि नून्य ॥२६॥

कवित

ज्यो जन सोयो एक सेजा[१] पर, सो स्वप्ने सत कोट भयो है,
हय हस्ती नर वाहन नरपति, सेन सुन्दर जोषिता नच्यो है,
भाई गुरु जग्यो जन सोवत, ताकत अत ही एक रह्यो है,
तेसें सखा सोया स्वप्न सव, देखत सो गुरु ज्ञान दियो है ॥२७॥
ज्ञानी ही ज्ञान पुकारे सबकु, ज्ञान को रूप अनन्त अपारा,
कोउ है कर्म धर्म के ज्ञानी, कोउ है मन्त्र-उपासन हारा,
कोउ है जोग पवन के ज्ञानी, कोउ करे पंचभूत विचारा,
जाकु सोनारा आपा पर छूटा सो, ज्ञान विज्ञान ज्यो का त्या सारा ॥२८॥
सोहागन की सीर जाने सोहागन, न जाने दोहागन[२] कन्थ विछोई,
नव नव नेह नव पल्लव नारी, उर आतुर रहत है ज्यो बछोई;
प्रत्यक्ष राम पलोपल पूरन, जानत नाही मैं कौन हो ओई,
आपा गयो गुरुभेव सोनारा, सारथे सार लीनो है ज्यो द्रोही ॥२९॥
ईतउत मन फिरे कहा तेरो, तो मे रहत सा आधार धराधर को,
तेरो समास होवे मन तोमे, जब जाने तू भेव गिरिधर को,
शब्द मे शब्दातीत बोलत, पाया परछन्दा[३] परधर को,[४]
जाने को सन्त सोनारा सीधी कळ, प्रत्यक्ष पहूँचे पराधर को ॥३०॥
पूरन ब्रह्म म्हेरे सो पूरन, पूछ्यो गिरिजा गिरिजापति सो,
पूरन ब्रह्म ठेहेराव सुन्यो जब, कह्यो आद्य पुरुष प्रजापति सो,
पूरन ब्रह्म ठेहराव कोनो है, गुरु वसिष्ठ हर जापत सो,
महाजन ब्रह्म ठेहेराव सोनारा, सत्य मान शब्द प्रजापति सो ॥३१॥
सोह प्रकाश स्वरूप को पुनी, तहां पहोचत नहि बतियाँ दन्त की,
आपा पर भग अध्यास नहि अग, सूत्र नहि तहा कहां मन्त की ॥
सदगुरु के बिन वगसे निज नेन समझ सानारा सरे सन्त की ॥३२॥
जेसो है ब्रह्म एनेएन पूरन एसो न जनी शकत हे जियरा,
कोट धाल को कला मन जानत, तेसो तो कहे न शके ए गियरा,

---

[१] शय्या, [२] विधवा, [३] छाया, [४] परात्पर को धारन करने वाले को, परमात्मा को।

जेसो रसना भाषा कर भासे, एसो तो ले न सके अगरा,
सेन गुरु की समज सोनारा, लक्ष पायो निवर्यो भगरा ॥३३॥
जहाँ कछु नांही कहां कछु थापत, शुद्ध निरंजन के मध्य ओटे,
ज्युं का त्युं सोही सहज स्वतन्त्र, कल्पना नेक सो भ्रम की कोटे;
जहाँ परपंच तहाँ पुरुषोतम, जहाँ मध्यमाग तहाँ क्षेतो करोटे,
कहत अखो यहाँ नहि चितवन, वित्त उठा विना ज्यु कोई अठोटे ॥३४॥

दोहरा

एसो लक्ष है ज्ञान को, और सबे मनकीन;
अखा सबे मनको रच्यो, मनुआ अधिक आधीन ॥३५॥
देह अभिमानी जब भयो, इत उत फेल्यो आप;
कहत अखो मन ताही सब, लोक चौद को व्याप ॥३६॥

कवित

जावत है सब लोक यहाँ से, आवत नही जन कोई फरी[१],
राय राना से बड़े भट पंडित, कोई न दे पछयो पतरी;
धन दारा सुत रहत परे, मानिनता देह संग वरी,
इतनी तो अपने नेनुं देखो, ओर अखा मन ने पकरी ॥३७॥
देहधारी कहत अलौकिक, परलोक की देह करत बतियां;
साधन संग करत देहधारी, देह लिखत पुस्तक पतियां;
स्वर्ग वैकुंठ बतावे देहधारी, कहत बनाई घर छतियां;
देखियत है सोनारा सबे इत, उनकी कोई कहे नहि रतियां ॥३८॥
इत उत मन फुर्यो है ज्युं तेरो, मन खड़ो है तो सबे सच्चो,
कारन करज सबे मन ही को, मन भयो है पवन रच्यो;
मन पवन की ले शून्य सागर मे, एसें ही खेल मच्यो,
एरी अनुक्रम अखा भयो गोचर, अचयो[२] रस उनकुं ज्युं अच्यो ॥३९॥
हे कछु ओर भई कछु ओर, अटपटी[३] आद्य अनाद्य चली,
लौकिक ओट अलौकिक उरे, लौकिक लौकिक मांही ज्युं भली[४];
सदगुरुसेन सोनारा सीधी कल,[५] जैसे ऊधडत है कदली,
वोपे रह्यो सो रह्यो बराबर, बिन समज्यो शुक बंध्यो नली ॥४०॥

दोहरा

छूट कथोर कंचन भया, गुरुकल वस्तु विचार;
आपा मेट्या आप रहे, कहेता हवा सोनार ॥४१॥

---

[१] फिर से, [२] बिना चखा, [३] अगम्य, [४] मिली, [५] कला।

कवित

मैं नही मैं नही प्यारे, तू ही है तू ही है सही,
कचुकी को बल है ज्यु कहा, हरे फिरे ज्यु आपे ही अहि।
अग भुजग गयो जब निकसो, तब जड जरा जितही तितही,
नैन श्रवन नासा अग मेरो, राम सोनारा फरे है ज्यु वही ॥४२॥
ज्यु अङ्ग[१] अहि के अङ्ग होत जरा, सो तो अङ्ग ही ले आही[१] कपजी[२],
अन्य उपाय कारन नहि करे, सहज समारी सो सेज सजी,
तैसे नर नारायण निरगुन, सगुनता ऐसे ही भजी,
गुन निरगुन अखा नहि उरे भेव पायो भव भ्रात तजी[३] ॥४३॥
जो मन मान्यो तो ब्रह्म सबे को, जो मन मान्यो तो जीव सबे,
जीव ही जीव टरत नही को जुग, अब जैसो है तैसो तबे।
देह दरसी दिनोदिन दारुन, देह के दोष तें रहे ज्यु दहे,
जो दिव्य दृष्टि दीनी गुरुदेव ने, तो ब्रह्म सोनारा सबेही फबे ॥४४॥
मन को लक्ष पलट तें पूरन, ब्रह्म जैसो को तैसो है सदा,
ज्ञान बिना भटके है जुगोजुग, ज्ञान आयो भयो ब्रह्म तदा।
अक्षर तें उलझण नहि भागत, कहा भयो पुस्तक पोठ सदा,
कहे सुने सिध[४] नाही सोनारा, स्वय हरिरूप भयो है न ज्यु रदा[५] ॥४५॥

दोहरा

चिद चराचर चिह्नि बिन, चितवत ही चित्त कहेन,
पूरन लक्षबिन पामरा, आयु घटत दिन रहेन।
पूरनता जानत नहि, लेत गुनन की ओट,
सो भव में भटके अखा, सीस तिमिर की मोट[६] ॥४६॥

कवित

ज्ञान को गत बूझत नाही बावरे, ज्ञान बिना ज्यु अज्ञान टटोरे,
देह विदेह कोनो आह मूरत, उद्योत कैसे होय मु जा बटोरे।
मित्र सुभाव इन्द्री गुन उरे, ता करी सुदासुद चाहतो रे,
देहातीत अभ्यास अनुपम, सो तो अखा है गुरुकुल ओरे ॥४७॥
सूझ न बूझ न गुझ गोविन्द की, धूझ परे देखो लोभ अडबर,
आछो सो अग उर ता तरग, शोभा सुगध रग पाट पटबर।
तनसुख मनसुख लालच य लिये, चित्र विचित्र देखी भयो गुबर,
राम बिना रोव मानो सोनारा, जैस ही अङ्क भरे कोई अबर ॥४८॥

---

[१] है, [२] पैदा हुई, [३] छोडकर, [४] सिद्धि, [५] हृदय मे, [६] भार।

जैसी रसना भाषा कर भासे, एसो तो ले न सके अगरा,
सेन गुरु की समज सोनारा, लक्ष पायो निवर्यों झगरा ॥३३॥
जहाँ कछु नांही कहाँ कछु थापत, शुद्ध निरंजन के मध्य ओटे,
ज्युं का त्युं सोही सहज स्वतन्त्र, कल्पना नेक सो भ्रम की कोटे;
जहाँ परपंच तहाँ पुरुषोत्तम, जहाँ मध्यमाग तहाँ क्षेतो करोटे,
कहत अखो यहाँ नहि चितवन, चित्त उठा विना ज्यु कोई अठोटे ॥३४॥

दोहरा

एसो लक्ष है ज्ञान को, और सबे मनकीन;
अखा सबे मनको रच्यो, मनुआ अधिक आधीन ॥३५॥
देह अभिमानी जब भयो, इत उत फेर्यो आप;
कहत अखो मन ताही सब, लोक चौद को व्याप ॥३६॥

कवित

जावत है सब लोक यहाँ से, आवत नही जन कोई फरी[1],
राय राना से बड़े भट पंडित, कोई न दे पड्यो पतरी;
धन दारा सुत रहत परे, मानिनता देह संग वरी,
इतनी तो अपने नेनुं देखो, ओर अखा मन ने पकरी ॥३७॥
देहधारी कहत अलौकिक, परलोक की देह करत बतियां;
साधन संग करत देहधारी, देह लिखत पुस्तक पतियां;
स्वर्ग वैकुंठ बतावे देहधारी, कह्त बनाई घर छतियां;
देखियत है सोनारा सबे इत, उनकी कोई कहे नहि रतियां ॥३८॥
इत उत मन फुर्यो है ज्युं तेरो, मन खड़ो है तो सबे सच्चो,
कारन करज सबे मन ही को, मन भयो है पवन रच्यो;
मन पवन को ले शून्य सागर में, एसें ही खेल मच्यो,
एरी अनुक्रम अखा भयो गोचर, अचयो[2] रस उनकुं ज्युं अच्यो ॥३९॥
है कछु ओर भई कछु ओर, अटपटी[3] आद्य अनाद्य चली,
लौकिक ओट अलौकिक उरे, लौकिक लौकिक मांही ज्युं भली[4];
सदगुरुसेन सोनारा सोधी कल,[5] जैसे ऊपडत है कदली,
दोषे रह्यो सो रह्यो बराबर, बिन समज्यो शुक बंध्यो नली ॥४०॥

दोहरा

छूट कथीर कचन भया, गुरुकल वस्तु विचार;
आपा मेट्या आप रहे, कहेता हवा सोनार ॥४१॥

---

[1] फिर से, [2] बिना चखा, [3] अगम्य, [4] मिली, [5] कला।

कवित

मैं नही मैं नही प्यारे, तू ही है तू ही है सही,
कचुकी को बल है ज्यु म्हा, हरे फिरे ज्यु आपे ही अहि ।
धग भुजग गयो जब निकसी, तब जड जरा जितही तितही,
नैन श्रवन नासा अग मेरो, राम सोनारा फरे है ज्यु वही ॥४२॥
ज्यु अङ्ग[१] अहि के अङ्ग होत जरा, सो तो अङ्ग ही ते आही[१] ऊपजी[२],
अन्य उपाय कारन नहि उरे, सहज समारी सो सेज सजी,
तेसे नर नारायण निरगुन, सगुनता ऐसे ही भजी,
गुन निरगुन अखा नहि उरे भेव पायो भव भ्रात तजी[३] ॥४३॥
जो मन मान्यो तो ब्रह्म सवे को, जो मन मान्यो तो जीव सवे,
जीव ही जीव टरत नही को जुग, अब जैसो है तैसो तवे ।
देह दरसी दिनोदिन दारुग, देह के दोप तें रहे ज्यु दहे,
जो दिव्य दृष्टि दीनी गुरदेव न, तो ब्रह्म सोनारा सवेही फवे ॥४४॥
मन को लक्ष पलटे तें पूरन, ब्रह्म जैसो वो तैसो है सदा,
ज्ञान बिना भटके है जुगोजुग, ज्ञान आयो भयो ब्रह्म तदा ।
अक्षर तें उलक्षण नहि भागत, वहा भयो पुस्तक पोठ सदा,
कहे सुने सिध[४] नाही सोनारा, स्वय हरिरूप भयो है न ज्यु रदा[५] ॥४५॥

दोहरा

चिद चराचर चिह्नि बिन, चितवत ही चित्त कहेन,
पूरन लक्षबिन पामरा, आयु घटत दिन रहेन ।
पूरनता जानत नहि, लेत गुनन की ओट,
सो भव में भटके अरा, सीस तिमिर की मोट[६] ॥४६॥

कवित

ज्ञान की गत बूझत नाहो बावरे, ज्ञान बिना ज्यु अज्ञान टटोरे,
देह विदेह कीनी चाह मूरख, उद्योन कैसे होय गुजा बटोरे ।
मित्र सुभाव इन्द्री गुन उरे, ता वरी सुदासुद चाहतो रे,
देहातीत अध्यास अनुपम, सो तो अखा है गुरुकल ओरे ॥४७॥
सूझ न बूझ न गुझ गोविन्द को, सूझ परे देखी लोक अडवर,
आछो सो अग उर तार तरग, दोमा सुगध रग पाट पटवर ।
तनसुख मनसुख लालच के लिये, चित्र विचित्र देखी ममा गुवर,
राम बिना रोत्य मानो सोनारा, जैसे ही अङ्क भरे कोई अबर ॥४८॥

---

१ है, २ पैदा हुई, ३ छोडकर, ४ सिद्धि, ५ हृदय मे, ६ भार ।

धन-तन-मन उपासे सबे को, जानत है जगदीश आराधे,
एठो सो चाल, एठो सो आराधन, एठो सो बोले बोल ज्युं आलाधे।
आतम ज्ञान नहीं गुरु को गम, भ्रांत ही छोत सारे दिन साधे,
ठाकर को ठेहेराव न पायो, माया तें सोनारा खेलावन खांचे ॥४६॥
माया के रङ्ग देखी ज्युं मनोहर, मानत है जगदीश गुसाईं,
धन-तन हय हस्ती शिष्य सेवक, जान सवे गेब जैसे घनछांई।
पंचभूत को ठाम ठर्यो चौद लोक में, कीट पतंग स्वामी सेवकताई,
नांही को अधिक नून्य सोनारा, सब चित्र चितेरा है सांई ॥५०॥
देह दरशी देह देखी जुग मोहे, भंगुरकु मानत अविनाशी,
ऊपज्या सो अलपाय निश्चे कर, कोई रहत नही भूतलवासी।
पचभूत कों परमेश्वर मानत, वाई लगी कोई गेब विलासी,
पंचातीत अलख सोनारा, जानत है कोई पंथ निराशी ॥५१॥
अन्य उपासन पेठो रदामें, जा तन है हम है ज्यु गछोहे,
अन्यही अन्य देखे सबनीको, पलभर रहत ज्यु नांही विछोहे;
अनीन को उपदेश सुने कहाँ, ज्यु लों ना अनर्थ गछोहे,
नर-नर मध्य नारायण निरगुन, सगुन सोनारा भेख कछोहे ॥५२॥
मन के पीछे फरे खट दरशन; राम पहचानत नांहीं मना,
दांही लगा बिलग्यो है अचानक, तहाँ तदरूप रोवे ज्युं घना।
पानी की सी बान परी मनही की, रङ्ग-रङ्ग में रूप धरे अपना,
मनातीत अगोचर आसे, तहाँ तो अखा मन होत फना ॥५३॥
अपरस अङ्ग रहत नांहीं बावरे, राख मके जोपें मन अछूता,
तन तपास करत नांहीं तायें, कुंजर शौच की नेर्थे पशुता।
जावत चिहीनत नहि परमातम, तावत देह कृत मे सव सूता,
आपापर छांड भयो वस्तु रूपी, तबे सोनारा सबे ब्रह्मभूता ॥५४॥
भडु[1] न जाने भलासा अनुभव, जैसी तैसी अपनी करे आगे,
नेहेचा नाही-नाहीं गुरु की गम, स्वान भूके जैसे[2] जाग कु जागे।
कर्म न धर्म न ज्ञान न बूझत, जानत नाहीं चंचल भक्ति वैरागे,
ज्ञान अखा है हंस को खावनो[3], मुक्ताफल चूग्या जाय कैसें[4] कागे ॥५५॥
संग ते रंग फरे न कुबुद्धि का, बक मिल्यो जैसे हंस की टोरी,
मराल मिले मुक्ताफल चूगे, बग बूरी बूरी मछी ढंढोरी;
त्युं ज्ञानमतां मे मिल खलज्ञानी, मन को मोड जैसे को तैसो री,
एसे नरकों नेक मत मानो सोनारा, कहा भयो दूध जैसी छाछ की गोरी ॥५६॥

---

[1] बुरा आदमी, [2] अच्छी या बुरी जगह पर, [3] खाना, [4] कौए से।

वर्ष की कोटि पच्यो पपरा, नीर मध्य सीतो रहत पर्यो,
नीर को नेक समज न लागत, टांकी लागी तव पहि्न जर्यो;
त्यों खलज्ञानी अहंकार न छांडत, अंतर मिश्न भंगार भर्यो,
एसें नरकुं फिटकार सोनारा, कर्म अरु ब्रह्म दोनो तें ज्युं टर्यो ॥५७॥
ज्ञानीसु ज्ञान कथीजे[1] सयाने, अज्ञानी सुं वाद वदे कौन मोरे[2],
अज्ञानो अंकार वाने उर अंतर, सत्य शब्द को देत मरो रे;
भीतर भिन्न भगार भरे है, बाहर बात बनावे ओरे,
संत समाज सोनारा सो न्यारा, सतभाव बिना भवभूत[3] पछो रे[4] ॥५८॥
अज्ञान कु ज्ञान माने मन मूरख, ज्ञान पर्यो कही दुरी दराजे[5],
सीखी सुनी गल[6] मारे गुसांई, ज्युं जोगपवन कुंभ खाली सो गाजे;
जीव जंजाल बला भरी भीतर, उपर आछी सी[7] बात विराजे,
सो नरकुं मत मानो सोनारा, कहा[8] कुलटा टले जो नवसत साजे ॥५९॥
कहा ज्ञान कथ्यो ममता नही छूटी, कहा ज्ञान कथ्यो निंदा मुख बाढ़ी,
कहा ज्ञान कथ्यो लक्ष्मी लक्ष लागी, कहा ज्ञान कथ्यो मनछा[9] भई गाढी[10];
कहा ज्ञान कथ्यो पीछो फर्यो पामर, ज्युं पाको[11] इन्द्रानीफल कटुकता
बउ काढी,
ज्ञान ओटे अज्ञान सोनारा, भाव गयो भूत भराडी[12] ॥६०॥
टूटो तन गान ममता मटी नहि, फूट फजीत पुरानोसो पिंजर,
जरजर अंग झूकयो तन नीचो, जैसे ही वृद्ध भयो चले कुंजर;
फटे से नेन दसन बिन बेन, एसो फबे जेसो ऊजर[13] खजर,
अजहो सोनारा रामभजन की भाल नांही, जोपें आई पहोच्यो है मजर[14]॥६१॥
एसे नरतें सरखरो भलो, जो क्षाम भयो खरता न टरी,
जरजर अंग जरत नेन नासा, जैसे गोव्म चल्यो पगरी;
जरा को जोर बढयो जिनके अग, जोवनता इससुं उगरी,
अजहुँ सोनारा टेडो न टर्यो नर, जोपें आय मिल्यो मृत्युलग जगरी ॥६२॥
योवन गयो जरा ठन्यो, सिर सेत भयो वृध कारे की कारी,
सब आपन्य घटी तन निरत घटी, मनसा ज्युं रटी कुलहा जैसी नारी;

---

[1] कहना, [2] मूर्ख, [3] संसार रूपी भूत को, [4] चाँटा लगाये, [5] गुप्त स्थान में [6] अभिमान करे, [7] सुन्दर, [8] सोलह शृङ्गार करने पर भी क्या कुलटा छिप सकती है? [9] ईच्छा, [10] दृढ़, [11] पका [12] चोर, [13] उज्ज्वल, [14] काल रूपी मार्जार।

ज्ञान कथ्यो सो तो नीर मथ्यो, आई अखा शून्यवादी की गारी,
राम न जाने कलिमल साने, भये ज्यु पुराने अविद्या कुमारी ॥६३॥

दोहरा

कहेत अखो केती कहुँ, जीव कुबुध की बात;
कोट कल्प सुधी जीए, तोहु न विषये अघात ॥६४॥
ताको आतम ऊलसे, परापार थे ब्रह्म।
कोट कर्म छिनमे बरे, येरी प्रभु को धर्म ॥६५॥
जीव न करे अघ इतनो, जे एक राम जराय।
वारो मेघ बरषे अखा, झहाँ लागी सके बघु लाय ?६६॥

कवित

भावना फिर परत जिया जान ले, भाव जेसो तेसो रूप तेरो है,
जो तुज भाव होई शिवरूपा, तो तुंही चराचर जोपें भाव फुर्यो है;
ज्यु लों मानत है आपा साचा, भूत भविष्य सत्य तो तू चेहेरो है,
कहत अखा सतभाव निश्चे कर, चित्त फर्यो तो चिद् नेरो है ॥६७॥
सुधीसीं विहीन न आवे सबन कुं, ताये रहे परपंच उपासे,
ता घरको पहेचान न आवत, जामें समात है सास उसासे;
कागद ओट नहीं जीव शिव बीच, भ्रम पर्यो लागो माया तमासे,
कहत अखो गुरुगम बिना नर, कालके हाथ बिकानो निकासे ॥६८॥
धोखे के धंध परे ज्युं सयाने, अयाने ब्रेहे ताकी कौन चलावे ?
धोखे परे परलोककुं ताके, धोखे परे ध्यानी ध्यान लगावे;
धोखे परे ज्ञानी आप को थापत, धोखे परे देही दूर बतावे,
गाम नहि कहा सीम सोनारा, सहज कथा कथो द्वैत बढ़ावे ॥६९॥
संसे संसार साचा कर लीना, संसा मटे सोई सान बिचारो,
नाद न बिंद, विसतार न वाचा, ता दिन कोन कहाँ थे ज्युं न्यारो;
आप हुए तें ठाठ ठठ्यो है, आप मटे तें मस्यो ज्युं पसारो,
शून्य सोनारा विचार सो सुन्या, शून्य लखे सो लखनहारो ॥७०॥
पिंड ब्रह्मांड का भेद को भेदे, तो वेद वदन सबे बिलावे,
देहदरशन दीओ मुख आगे, प्रतिबिंब ब्रह्मांड तबे सत्य कहावे;
जब आ दृश्य धङ्क अल पानो आग थें, तब जगत जंजाल की कोन चलावे,
सच सोनारा समाया ताही में, जा घरकुं निगम नेति-नेति गावे ॥७१॥
नाहम् ज्ञानी अज्ञानी सयाने, मानी न ध्यानी कब हम हुए,
पानी पवन अगनी ओर अवनी, अबर यें नाहीं को दिन जुए;

ज्यो गेब घटा घन गरजत घेरा, वर से विलावे तो कहा कछु मूए,
अखा आनद आपे आप करता, देह देखे सो देवकु खूए ॥७२॥

मदिर की मनसा नहि जाको, कदर सेवा तो ताही भली है,
मदिर कदर दोउ नहि जहाँ, बूझ की सूझ तो ताहु चली है।
पथ चले सो तो पथ समारे, पछी कु तो सो अटक टरी है,
सोवे अखा सो जाग्रत चाहे, जाग्रत कु तो जाग्रत मिली है ॥७३॥

नाम अरु रूप सकल जन ठहरे, पडित जाण भक्त अरु ज्ञानी,
कारज कारन दोउ विवरजीत, ता घर की विरली दे जो निशानी।
भ्रात के भ्रम भूले जन सारे, पानी के चदही, स्थिति ठानी,
होवे अखा उसी देश के सानी, और क्या जाने पुरान के मानी ?७४॥

ज्ञान अरु ध्यान सयान सबे कृत, भक्ति वैराग माया की ठगोरी,
घघा का फद बढे जो दिनो दिन, टारत नाही न फामर भोरी;
सहृज के नये हेज मे पहेज कहा को, आप नहि कहा व्याप सचोरी,
एह सूझ की बूझ सबन तें न्यारी, कृत की बूझ अखा है ज्यु थोरी ॥७५॥

ज्ञान का गहेन लगे बहोतेरे, ध्यान के घोखे घूनो वही सारो,
भगत के भ्रम भटके जो भये, पण अवगत की गत रहत जो न्यारी;
कृत्य की कलक छपी है जो छानी, अहकार की ओट परी है जो भारी,
ग्रहन छोडन एहो वस्तु खडन, कहत अखा जो पुकार पुकारी ॥७६॥

बिदये कद कियो जन पैदा, छद करी छुपियो सब माहाँ,
नेननी देखे बेननी बोले, श्रवननी सुने सब चहेन जे जो हा।
नापेद में केद कर्या जन पैदा, केद नापेद[१] करत कोई काहा,
आपे तू खुदी खुदा भी तू आपे, नाहीं अखा इस ठाहा[२] उस ठाहा ॥७७॥

जाक नेन-नहीं सब नेन ही देखे, बेन-नही सब बोली सो बोले,
कान-नही सब करन ही याके, नासा-नहीं सब वास तो ओले।
व्योम की ओटे तू आप सहराई, फोम घरी कही व्योम नी खोले,
अखा भेख खेलारा साइया, बुघ का फेर कपोल कपोले ॥७८॥

भेख की टिक चली खट दरसन, भेख नहि तहाँ टेक किना की,
टेक की टेक चली जो दशो दिश, टेक हमारी तो है जो फनाकी;
नेति-नेति कर निगम जहाँ रहे, टेक छूटी तहाँ बहोन जनाकी,
एसो बूझ अखा घर काना, टेक गई है तिनो दिना की ॥७९॥

---

[१] जो पैदा नही हुआ है, [२] स्थान।

ज्ञान गयंद[1] चढ्यो नर नीके तें, लोकन की बक चित्त न आवे,
ज्युं बुंद की घडी पहाड़ न टूटत, चोट अनेक करी जो धावे;
चित्रलता को रस को देखत, तो औरन की वहो कौन चलावे,
चेतन निंद के भोगी अखा, कहां श्वान शृगाल के भक्षकु खावे ॥८०॥

जीव रीझे अरु खीजे तो कहा है, बूझ गयो मेरो कहा जो टूढेगो,
ज्युं जल बुद पड़े बहुतेरे, कहा बुद के जोर उद्यान बढेगो ?
ज्यों दिनकर दीप दिखावे को मूर्ख, कहा दीप बिना याको रथ अढेगो ?
चढा श्रो अता कहां नावकुं तारे, सोही तरेगो जो पे नाव चढेगो ॥८१॥

लढ[2] कहो कोउ, भंड[3] कहो, पाखंड कहो, ओरे कहो जो भिखारी,
सज्जन कहो, दुरिजन कहो, चोर कहो, कोई कहो ब्रह्मचारी;
काहु को पाव टिके नहि तहां लों, जहां जाई कीनी असे जो पधारी,
जिने जेसो देख्यो तिने तेसो घ्यायों, वहोत करेह जो विचार विचारी ॥८२॥

रहेणी की कहेणी चलावे सबे सो, रहेणी की बात न बूझे संसारा,
जे जिनकुं परलोक उमेदा, अही लोक की आस करे न पसारा;
नाम ही भूत भविष्य का सोचा, वर्तमान का काल चलावन हारा,
कहेत अखो गेब रहेनी हमारी, ज्युं बादल तें नभ न्यारे का न्यारा ॥८३॥

कहां रहेणी[4] कहुं कहां सहेणी सहुं, कहेणी[5] कहुं कहां जैसे का तेसा,
कालो पीलो लाल सवज[6] श्वेत, अभ्र गगन गेब नभ एसे का एसा ।
बाबुर[7] करो दुरगंध पंचामृत, वहनि जरावत नांहीं अंदेशा,
कहत अखा जाकुं प्रगट पाईयत, ताकुं कहेवां इत केशा संदेशा ॥८४॥

माला न पेरुं टीका न बनाउं शरणे न जाउं मैं कोउ किसी का,
आपा न मेटुं, थापा न थापुं, मैं मदमाता हूं मेरी खुशी का;
भिस्त न दोजख दोउ न चाउं, ना चाउं नाम न रूप किसी का,
है-नहीं की संघ्य पदी जो अखा की, जानेगा जे कोई डेर उसी का ॥८५॥

सोणां की[8] बरढ[9] बकत जन सारे, जागृत की बतियां कछु ओरे,
ज्युं सूरज को मरो[10] भाद अंधेरा, देखावन को जन रहे जो बटोरे;
तरनी की दृष्ट कीनो जब थें तब, जेसे को तेसो मघ्य ठोरे,
एसो ज्ञान के आगे अज्ञान सोनारा, नागोह पहेरे घोवे कहाउ निचोरे ॥८६॥

---

[1] ज्ञान रूपी गजेन्द्र, [2] गंवार, [3] भ्रष्ट, [4] सहन करना वह, [5] कहना (=बात), [6] हरा, [7] एक जात की मिठाई, [8] सपनों की, [9] [10]

चद राहु गत्य है जीव शिवकी, चदराहु कुज देत दिखाई,
भिन्न परे राहु दृष्ट न आवत, सग मिले बतियाँ लोक गाई,
इन्द्रिय तत्व तन्मात्रा चतुष्टे, या वस्तु की आभा बनी आई,
भात की भ्रम भूलो जन कोउ, कोविदजन ते अखेमति पाई ॥८७॥
चित्तकी चलक चलके ज्यु बहुतेरे, चित्र चितेरी आप भयो है,
चितेरा चतुर चले चाल एसी, जो चित्त चले ओप एन रह्यो है,
जलके जो के ज्या चन्द्र चपलता, सहेजे चपल चन्द कह्या जो कयो है,
चैतन की चिह्नीन जो एसी अखाकी, जो चित्त अचित मे गेब गयो है ॥८८॥
अब ध्यान धरी कहो कौन को निहारु, जो प्रगट खेल को आप खेलैया,
भक्ति करी करी भोग लगाउ, सो प्रगट भोग को आप लेवैया,[1]
गुन निर्गुन को विचारो कैसे, जो विवेक विचार को आप करैया,
वाम[2] फाम[3] चाहा[4] अपनी सो, एसे अखा गइ दईया[5] मैईया[6] ॥८६॥
सोई भगत भगवन्त भरोसे, खेडत है भर खुटा[7] के महीया,[8]
सो सतज्ञानी रहत आप आधारा, लागत नाही प्रभुता शून्य बहिया,
इन्द्रिय अचल चलत नहि कबहु, कोट मध्य कोई करे उपईया,[9]
अखा वलेव[10] के सो बामन, जो धान माने को देखी बडाईया ॥६०॥
ना मुंही वणज व्यापार उपासन, ना मुही मत्र गुरु नाही चेरा,
ना मुंही रस रसायण आवत, ना गुटका अजन देव देहेरा,
लालच लोभ की बोली न बोलु, मैं हूं तुमारा कि हो तुम मेरा,
एसी गेबकी बान परी जो अखा की, हठ परहठ नाही सेहेजे नर वेरा ॥६१॥
रानीकु मानी कहे सोई बावरे, रावरी रोनकु रक कहा जाने,
नरपति नेक[11] न माने न्यूनाधिक, कुल की क्रिया जो सुभाव ही ठाने,
ज्या[12] घनघटा करी गरजन गेहेरा, केहरी प्रान तजत हाठ माने,
एसें अखा कल्पो कोउ कैसा, ज्ञानी की गत्य गोविंद पहिचाने ॥६२॥

दोहरा

लक्ष वडो है ज्ञानी को, अखा न चिह्नीनत[13] कोय ।
हारद हाथ आवत नहि, ताथे असभावना[14] होय ॥६३॥
ज्यो बहुमूली हीरा वन मे, दूर थे देख्यो जात ।
डर्यो वटाउ[15] प्रेत मानी, अखा अधेरी रात ॥६४॥

---

[1] लेने वाला, [2] वामा, [3] रग, [4] इच्छा, [5] देव, [6] माया, [7] खूंटको, [8] पृथ्वी, [9] उपाय, [10] थके, [11] भला, [12] जहाँ, [13] पहिचानता, [14] विपरीत, [15] मुसाफिर ।

त्यूं रहेणी करणी ज्ञान की, मेचक[1] लागे जंत।
गुण छांडे अवगुण ग्रहे, जानत नांहीं महंत ॥६५॥

कवित

संत की निंद करत जन भंडु, सो थानत है अपने घर कूता,
वेरीकुं[2] सोण बूरा करनेकुं, नासिका निज काटी सो आप विगूता;[3]
ज्यों पारोंसी को मन्दिर जार[4] ने मूर्ख, आपनो भुंप[5] लगाय के सूता,
कहत अखा कुबुद्धि नर जेते, ओर अकाजकुं आप भे[6] मूता[7] ॥६६॥
निंदक नेक नारायण न जानत, ठानत है ओगुन मुख निंदा,
काग कुकर कपूर मानो विष्ठा, अन्तर सहेज सुभाव का गन्दा;
सुन्दर सरमध्य खर नहि नहावत, मर्दन छार कीने थे आनन्दा,
कहत अखो सतसंग न लागत, कुबुध कुटिल नर मति का मन्दा ॥६७॥
संसे को बाण लग्यो सबके तन, मार लिये सब माया आहेडे,[8]
मारे हे वंचक श्रोता सबको, ज्युं तरुवर फल दारे पवेड़े;[9]
ज्युं बिछुआ जनमे बहु बालक, ए ही वपरय वाको तन उघेडे,
कहत अखो बेठे ब्रह्म भरूखे, सो संतनिकु माया नहिं छेडे ॥६८॥
राम हीं राम जपे सो राम है, नाम कहे नित्य सो श्यामसुन्दर,
श्यामनी सुरत चली सुरलोक में, ताथे फर्यो गिरि सेवत कन्दर;
जब ऊलट फर्यो नर निज उर अन्तर, कोट कलारवि पावे सो चन्दर;
कहत अखो गुरु ज्ञानी सेवे बिन, राम न पावे जो देखे पतन्दर ॥६९॥[10]
देखे सब अंजन माने रंजन, रंजन मन कों बाहे ते वाहायो,
तायें भयो नहि भव को भंजन, नाम पुरंजन मान कहायो;
संतजन साहे न सद्गुरु बहारा, मंजन माटी मलीमली नायो,
कहत अखा जहां नहि स्वर व्यंजन, सो बावन बास को हाथ न आयो ॥१००॥
आप ही राम रमे जो रमावत, सत्य कहुं हुं दुहाई पिता की,
चेतनरूप चराचर चलकत, मानिनता मन छत[11] छताकी;
जहाँ उद्योत भयो है अचानक, सो नरकु सता है परातीत[12] ताकी,
कहत अखा एसो वेदवचन है, ओर कु चलावे जो मन मताकी[13] ॥१०१॥

---

[1] काली अंधकार मय, [2] दुश्मन की नींद, [3] उलझ गया, [4] स्थान को, [5] द्वार, [6] भय, [7] हुआ, [8] शिकार में, [9] फेंके, [10] पर्दा, माया का पट, [11] छत का छाता, अभिमान भी मन का ही घिरावा है, [12] तक, [13] मान्यता।

दोहरा

मनकी सुरत है सामनी, रहत पूरवकु राम।
कहत अखा गुणरजना, मान कियो आराम ॥१०२॥

कवित

राम न रीझे जो दान अनुपे, राम न रीझे अजान खेलवना,
नाचन गावन थें राम न रीझे राम न रीझे पानी पाहान मेलना;
आश्रम वरन भरोसे को भूलो, कविकलारस करत केलवना,
कहत अखो मृगवारि झकोरतें, मानत है हम गंग झेलवना ॥१०३॥
जो गावन थें गिरिराज रिझावत, तानथें पथ्थर को करे पानी,
पडित सो परजापति पुलकत, सरसती सुनतेही जोत सरानी;
सिधीथें सुरसुमन को समारे, और प्रह्लाद करत उर आनी,
कहत अखो बिन आप पहीचान, मानो स्वप्ने की लक्ष्मी सत्य मानी ॥१०४॥
निराधार रहे सो सबके आधारा, आधार रहे सो तो है जियरा,
करत्रिम वसतु तेल पूछ[१] बाती, बयार तें दरपत रहे दियरा;[२]
आरम अरक जतन बिन झलकत कोट सुधाकर सो सियरा,
कहत अखो स्थित भई तज्ञको,[३] जहाँ बिराजत है गियरा[४] ॥१०५॥

दोहरा

अब कहु परब्रह्म पीठ का, वस्तु विश्व को भेद।[५]
रूप अरूपी वही रमे, जे जगत दुर्लभ देव ॥१०६॥
सर्वाङ्गी प्रकरण कह्यो, कवित चोरासी चोज,[६]
बीस कह्या मध्य दोहरा, कोई ज्ञानी देखे खोज ॥१०७॥

ब्रह्मलीला

राग सामेरी

चोखरा १

ॐ नमो आदि निरजन राया, जहाँ नहि काल कर्म अरु माया,
जहाँ नही शब्द उच्चारण न जता, आपे आप रहे उर अता ॥१॥

छंद

उर अन्तर मे आप स्ववस्तु, ढिग नही माया तबे,
अन्य नहो उच्चार करिवे, स्वस्वरूप होही जबे ॥१॥

---

[१] पीछे, [२] दिया, [३] तज्ञों की, [४] वाणी, [५] भेद, रहस्य, [६] युक्ति।

मिथ्या माया तहां कलियत अध्यारोप किनो सही,
अर्धमात्रा स्वभाव प्रणव सो, निगुण तत्त्व माया भई ॥२॥
आप ज्यो के त्यों निरंजन सर्व भाव फैली अजा,
ज्यों चुम्बक देखके लोह चेतन त्यों द्रष्टोपदेश पाई रजा ॥३॥
परम चैतन आदि निरंजन अकरता पय सो सदा,
अजा अल्प अर्वाक अंजन, भो जगत पल में तदा ॥४॥
सगुण ब्रह्म सो स्तुति पदारथ, दृष्ट पदारथ स्वामिनी;
अजा ब्रह्म चैतन्य घन में भई अचानक दामिनी ॥५॥

चोखरा २

ऐसे आप सगुण ब्रह्म स्वामी ऐसे ही अंश भयो बहुनामी।
आप फेलाव किनो ग्रही माया सहज लोग करी सुत तीनुं जाया ॥१॥

छंद

जाये तीन सुत जगत कारण, सत्त्व रज तमसदि भये।
पंचभूत अरु पंचमात्रा, तमो गुन केरे कहे ॥१॥
देव दश अरु उभय इन्द्रिय, बेग उपजे रजहीं के।
भये चतुष्टय सत्त्वगुण के नाम दिनो कर अजहीं के ॥२॥
रजो गुन सो आप ब्रह्मा, तमोगुन सो रुद्र हे;
सत्त्वगुण सो विष्णु आये, सगुनब्रह्म पहुँचो चहे ॥३॥
चार पंचक अरु चतुष्टय, एक प्रकृति मूलकी।
आप को परिवार वढ़ायो, भई माता स्थल की ॥४॥
चली आवे कला चितकी बन्यो पुरुष विराट ए।
कहे अखा माया कहो, के कहो परब्रह्म घाट ए ॥५॥

चोखरा ३

ऐसेई अंश चल्यो अविनाशी, ताकी भाँति भई लक्ष चोराशी;
निर्गुण ब्रह्म सगुन भयो ऐसें; ताको ओर कहीजें कैसें ॥१॥

छंद

ओर नहि कोई कल्प हुरितें, ज्यां पानि को पाला भयो;
जोई निर्गुन सोई सगुन है, नामरूप आपे नयो ॥१॥
नाम नहि ताके नाव सब है, रूप नहि ताके रूप सबें;
कारज कारन ओर नांही, रूप अरूपी व्हें फवे ॥२॥
सगुन वेत्ता निर्गुन को है, निर्गुन पोषक सगुन को;
ज्यो पुरुष की परछांहि दर्पन, आनन समर्यो जंन को ॥३॥

जड को रूप चैतन्य लीनो, चैतन्य ज्यों को त्यों सदा;
रूप बिना खेल फब्रत नाही, आप बन्यो अपनी मुदा ।।४।।
सहज इच्छा बानक बन्यो है, अन्य नहि कोउ आपतें;
कहे अखा अहंकृति दुजो, मान लीनो व्यापतें ।।५।।

चोखरा ४

ऐसो रमन चाल्यो नित्य रासा, प्रकृति पुरुष को विविध विलासा;
जैसें भीत रची चित्रशाला, नाना रूप लखे ज्यो विशाला ।।१।।

छंद

बिशाल दर्पन भीत[१] कीनी, और स्वच्छ सत्यस्वामिनी;
ताही के मध्य भाति भासी, वैसि सत्य सुहावनी ।।१।।
त्यों अजा के मधी भाँति नाना, वस्तु विशेष ही भासी है;
आत्मा अकर्त्ता अभोग अवयव, जानत जीव विलासी है ।।२।।
प्रकृति पुरुष के जोग जंतुन, मिथ्या पुरुष प्रकट भयो,
सो आद्य नाहीं अंत्य नाही, मध्य मानी तापें रह्यो ।।३।।
संशय मिथ्या विपरीत भावना, जब लागी जो नर करें;
तब लगो नाना देह धरही, माया मे ऊपजे मरे ।।४।।
पिंड पर सो मोह पायो, पुरजन तातें भयो;
कहे अखा यह जीव उत्पत्ति, मान मिथ्या ले रह्यो ।।५।।

चोखरा ५

सदा सर्वदा नाटक माया, नाट्य चले देखे पर ब्रह्म राया;
सो सब अपने शिर जन्ता, तातें न आवही जीवको अंता ।।१।।

छंद

अंत न आवही कृत्य भावही, रंजना देहसो सदा;
में ममता कर आप पोखे, त्यो त्यो मन पावें मुदा ।।१।।
स्वरूप जैसो पुत्र वध्या, कर्म नित ऐसे करे;
आकाश की नित्य मोट बाँधे, भण्डार ले अपना भरे ।।२।।
अजाये नर सुभट योद्धा, ताही की सेना रची;
गाधर्व नगरी जीवीवें को, चले राय सुन्दर सुचि ।।३।।
जय-पराजय नित्य पावे, हर्ष-शोक हृदे विषे;
तन मनके आनन्द कारन, कर्म मादक नित भखे ।।४।।

---

१ दीवार।

असंभावना विपरीत भावना, ताही के हिय में रही;
कहे अखा ये जीवन लच्छन, उत्पत्ति स्थिति याकी कही ॥५॥

चोखरा ६

होता नहीं अवे नाहीं आगें, मिथ्या भ्रम भ्रमीवेकों लागे;
ज्यों देहके संग छाया होई, सो मिथ्या ना सांची सोई ॥१॥

छंद

नाही मिथ्या नाहीं सांचो, रूप ऐसो जीवको;
जन्म भरन औ भ्रमन संशय चल्यो जाई सदैव को ॥१॥
ताही अचानक चेतना जब, ऊपजे नरके विषे;
जन्म मरन औ भोग सुख दुःख, काल कर्म फल को लखे ॥२॥
यही विचार गुरुतें आयो, आतुरता ऊपजी खरी;
चरन कमल पर शीश धरके, सेवा स्तुति अतिशय करी ॥३॥
कीनी जु नवधा भक्ति भावे अधिकार परते गुरु कही;
प्रेमातुर वैराग केवल जेसी कही तेसी ग्रही ॥४॥
कहे अखा महा वाक्य गुरु को, ऊग नीकसे आपसे;
ज्ञान अर्ककी जोन्हुसो कल, रह्यो नही मन मापसे ॥५॥

चोखरा ७

जैसे अंड पिंड फूटें विहंगा, और रूप भयो औरही रंग;
आगें अंडमध्य गंदा पानी, चलन हलन ताकी कोमल वानी ॥१॥

छंद

वानी कोमल अंग खेचर, भूचर भावना सब टरी;
तैसें जत प्रसाद गुरुते, अहंता अपनी गिरीं ॥१॥
यथारथ स्वस्वरूप हरिको, हरिजन के उर में बस्यो;
सांख्य योग सिद्धान्त पायो, कह्यो गुरु त्यां[१] अभ्यस्यो ॥२॥
तत्व मसि जो वाक्य श्रुतिको, गुरु कृपातें सो भयो;
साद्य जीव मिथ्या कह्यो, तब ऐसें को ऐसो कह्यो ॥३॥
आप परवित्र खेल देख्यो, नित्य नाटक संभ्र मैं;
अरूप मध्य स्वरूप भास्यो, ज्यों पुतरिका खम्भ मे ॥४॥
कहे अखा ऐसोई जाने, वाई के घट उपजै,
जैसें को तैसो भयो जब मध्यतें अहंता तजै ॥५॥

---

[१] यहां ।

चोखरा ८

महाजन जाने महाकल मेवा, जो पर ब्रह्म पर्यो सत्य मेवा;
ज्यां[१] चुबकतें चेतन भयो लोह, जीव पनो ताको यो छेवा ॥१॥

छंद

लोहा गयो बिच वल अजाको, ताहीतें चेतन भयो;
अघा अचानक नेन पायो, द्वन्द्व बिचतें टर गयो ॥१॥
स्तुति पदारथ नयन देख्यो; दृष्ट पदार्थ गया बिला;
मिटी देहकी भावना अब, स्वयं चैतन व्है चला ॥२॥
ध्येय ध्याता अरु करन कारन, माया के मध्य जो सही;
रज्जु लगी सो भुजङ्ग भ्रमहे, बिनु रज्जु केसो अहि ॥३॥
प्रोढी वेको प्रताप बड़ हे जानही बिरला जना;
आगे पाछें ओर नाही; आप बिलस्या आपना ॥४॥
कहे अखा ए ब्रह्मलीला बड़भागी जन गायगो;
हरि हीरा अपने हृदय मे अनायास सो पायगो ॥५॥

ये मनका कैसा इतबारा रे ?

ये मनका कैसा इतबारा रे ?
चेतन के कोइ मत रहो सारा रे ?
ये मनका कैसा इतबारा ? ये मनका०
छिन छिन ढग पलटे ये मनका।
छिन इतवार नही ये तनका।
तातें अर्थ होवे क्यो जनका ?
ये मनका कैसा इतबारा ? ये मनका०
जा ही मशाला है वा, पानी।
तिसको तो जीव सके न जानी॥
मोहे अज्ञान कौरत की वानी।
ये मनका कैसा इतबारा ? ये मनका०
काय, कर्म बादल की छाया।
तिसको 'सत' मा ने मोह माया।
कल छटकी, और बाप बिलाया।
ये मनका कैसा इतबारा ? ये मनका०
सत् और झूठ न होवे था पा।
तिस को हुना मानु आपा।

---

[१] जहां।

आप अखा समज्या रे अमापा।
ये मनका कैसा इतबारा ? ये मनका०

—अप्रसिद्ध अक्षयवाणी में श्री अखाजी की जकडी, पृ० ८३

मुज कामिन का तू कामी रे !

मुज कामिन का तू कामी रे।
तू बहुरूपी, घननामी रे।
मुज कामिन का तू कामी रे।
मुज कामिन का तू कामी रे ॥ मुज कामिन का०
लट काका ! तू मीता रे।
तैं बहुविध लटका कीता रे।
तैं सबमें दरसन दाता रे।
मुज कामिन का तू कामी। मुज कामिन का०
हेज दीआ मुज सांई रे।
मुखे मुख नेन मीलाइ रे।
तब थे लाली पाई रे।
मुज कामिन का तू कामी रे। मुज कामिन का०
मुज रूपे तुं बोले रे।
घन फरते पियु डोले रे।
कौन मुझी के तोले रे।
मुज कामिन का तू कामी। मुज कामिन का०
मल पतडी हुं चालूं रे।
मन मौजे हूँ महालूं रे।
पियु है अखा के स्यालूं रे।
मुज कामिन का तू कामी। मुज कामिन का०

—वही, पृ० ६४

१३ पंचरंगी मेरा चोला रे !

पंचरंगी मेरा चोला रे।
सो पहिन्या है ठोला रे ॥
पंचरंगी मेरा चोला रे।
पंचरंगी मेरा चोला ॥ पंचरंगी०
सब आभूषण मेरा रे।
सोल सिंगारा सेरा रे।

तु हसी बहो तेरा रे।
पचरंगी मेरा चोला॥ पचरंगी०
मेरा प्रीतम रसिया रे।
मुज वेसे तू वसीआ रे॥
मुज देखी लोक हसीआ रे।
पचरंगी मेरा चोला॥ पचरंगी०
हूँ साइया! तुज साथे रे।
तूहि मेरी आथे रे।
तैं खेल बनाया साथे रे।
पचरंगी मेरा चोला। पचरंगी०
तैं साध अनेरी चाही रे।
ते तु जरा वन ताई रे।
कीआ अखा मोछाइ रे।
पचरंगी मेरा चोला॥ पचरंगी०

—वही, पृ० ९५

२९ क्या जाने लोका काला रे?

क्या जाने लोका काला रे?
घेन मयी सोलाल गुलाला रे।
क्या जाने लोका काला? क्या जाने०
मोहे पियु सेजु पर मीलीया रे।
तबकी सो रस उजलीआ रे।
क्या जाने लोका काला? क्या जाने०
लालन! तु राता! मैं माती रे।
लालन! तु दीपक! मैं बाती रे।
तु तो न्यारा! नही सगाथी रे।
क्या जाने लोका काला? क्या जाने०
लालन, तुज चलते मैं चालु रे।
लालन, तुज हलते मैं हालु रे।
मैं तो एक मेक होय वहालु रे।
क्या जाने लोका काला? क्या जाने०
लालन! तु मैं तुज माही रे।
तब जीत पडी आ दा ही रे।

तब अखा आप सराही रे।
क्यां जाने लोका काला ? क्या जाने० —वही, पृ० १११

पद ६—भजन

अब मोए आनंद अद्‌भुत आया।
कीया कराया कछु बी नाहीं, सेजे पियाजी कु पाया।
अब मोए आनंद अद्‌भुत आया। टेक
देश न छोड्या, वेरु न छोड्या, नहीं छोड्या संसारा।
सुता नर निद्रा सें जाग्या, मीट गया स्वप्ना सारा।
अब मोए० ॥१॥
कृपा नाल अंतर सें छूटी, गोला ज्ञान चलाया।
आल अटक फोज सब निकल्या, दुर से अज्ञान उडाया।
अब मोए० ॥२॥
भला कहे कोई बुरा कहे, अपनी मति अनुसारा।
खारा मोरा लोहा पारस पर, सोन भया अखा सोनारा।
अब मोए० ॥३॥

—भजन सागर सिंधु, पृ० १३

प्रीतमदास

७ ज्ञाननुं अंग

ज्ञान विना अभिमान की, टले न अहता आड।
कहै प्रीतम निज ज्ञान का, जाहेर झंडा गाड ॥१॥
ज्ञान रवि घटमें उदे, टाले तिमिर अज्ञान।
प्रीतम मोटम ज्ञान की, भाखे श्री भगवान ॥२॥
गीता के अध्ये सात में, ज्ञान शिरोमणि कीन।
प्रीतम पारथ कुं कहा, कृष्ण चंद्र प्रवीण ॥३॥
एकादश उद्धव प्रत्ये, करी ज्ञान की गोष्ट।
कहे प्रीतम रघुवर प्रत्ये, कह्यो जोग वसीष्ठ ॥४॥
सनकादिक शंकर सदा, रहे ज्ञान में लीन।
कहे प्रीतम पूरण सदा, ज्ञान गुरु की सेन ॥५॥
ज्ञानी को जीवन सुफल, सबही कुं सुख रूप।
कहे प्रीतम ज्ञाने मीटे, माया भ्रम तम कूप ॥६॥
ज्ञान गीरा ते उचरे, ज्ञान तणो उपदेश।
कहे प्रीतम ज्ञाने टले, बहुरूपी राग ने द्वेष ॥७॥

एक चराचर आतमा, अपना तुल्य सब कोइ ।
कहे प्रीतम को उपरे, दुष्ट भाव नव होय ॥८॥
अपने पग से पग सबे, अपने प्राण से प्राण ।
अपने मुख से मुख सबे, प्रीतम एह प्रमाण ॥६॥
अपने नैन से नैन सबे, अपने करन से करन ।
अपने अंग से अग सबे, प्रीतम ए दुख हरन ॥१०॥
सागर माही होत है, ले हेरी लोढ तरग ।
कहे प्रीतम एक ब्रह्म में, उपजत ह बहु रग ॥११॥
बाजी भूप तडाग के, नीर भिन्न नव होय ।
कहे प्रीतम एक आतमा, ज्ञान दृष्टि करी जोय ॥१२॥
उग्र दशा है ज्ञान की, ने कोई जाणे भेद ।
कहे प्रीतम वर्णन करे, निशदिन चारे वेद ॥१३॥
ज्ञानी कर्म करे सबे, अतर नहि अहमेव ।
कहे प्रीतम भीतर नहि, उपर सकल अवेव ॥१४॥
ज्ञान गुरु ते पाईए, गुरु है ज्ञान स्वरूप ।
कहे प्रीतम ज्ञाने मीले, अखिल भुवन के भूप ॥१५॥
निन्दा स्तुति का करी, चंदन अथवा छार ।
कहे प्रीतम दु:खे नहि, दिल में एक लगार ॥१६॥
शत्रु मित्र समान चित्र, सरखु कचन लोह ।
कहे प्रीतम ज्ञानी विषे, नहि ममता मद मोह ॥१७॥
सोल वरसनो सुदरी, नख शिख सजे शणगार ।
कहे प्रीतम मेला रहे, न मले विषय विकार ॥१८॥
खड्ग काढी शिर पर रहे, मान कु निरधार ।
प्रीतम भय उपजे नहि, ज्ञान लक्षण सार ॥१६॥
छल प्रपच करे नहि, सबही मे शुद्ध भाव ।
कहे प्रीतम पूरण रहे, कोय दो कोच ले जाव ॥२०॥
वस्तु छुपावे नहि कशी, नहि चोर शाहुकार ।
कहे प्रीतम एक आतमा, सबही सरजन हार ॥२१॥
ज्ञान विना बहु गरबडी, उपजे अनत अपार ।
कहे प्रीतम ज्ञाने समे, भासे ब्रह्माकार ॥२२॥
ज्ञान-ज्ञान सबही कहे, आतम ज्ञान सो ज्ञान ।
कहे प्रीतम पारसमणि, और सबे पाषाण ॥२३॥

भरत ऋषभ शुकदेव जी, दत्त कपिल त्रिपुरार।
गरक रह्यो ते ज्ञान में, प्रीतम प्रेम अपार ॥२४॥
भक्ति जुवती जे ज्ञान है, सोइ ज्ञान शुभ सार।
कहे प्रीतम परमारथी, ज्ञानी पुरुष उदार ॥२५॥
दया करे सब दुःख हरे, देवे निर्मल ज्ञान।
कहे प्रीतम प्रेमे करी, भूकावे अभिमान ॥२६॥
ताको सुख मे क्या कहुँ, ऐसो अवरन कोई।
कहे प्रीतम त्रिभुवनपति, भक्तन कुं बस होय ॥२७॥

—प्रीतमदास जी की वाणी, पृ० ११० से १११

२० नारी निंदानुं अंग

नारी कुं निंदुं नहि, निंदु अवगुण एक।
कहे प्रीतम कहते गये, आगे पुरुष अनेक ॥१॥
नारी नरक की खाण है, शास्त्र कहें सब कोय।
कहे प्रीतम प्रभु भजन से, परम पवित्र होय ॥२॥
नारी चार प्रकार की, ज्युं नाणा की रीत।
कहे प्रीतम कर जुगत सु, जाणा बुझकर प्रीत ॥३॥
मोहोर रुपैयो तांबायो, कोडी नाणा मांहि।
कहे प्रीतम यह दाम है, सबहि बराबर नांहि ॥४॥
सती पूरी पतिव्रता, कुलटा कहीए नार।
कहे प्रीतम सोई समज के, वाको संग निवार ॥५॥
अमृत सीचे एरडे, जुगते जवासा पाय।
प्रीतम कोद्र काले करी, अमृत फल नव थाय ॥६॥
सो वरस सेवे धीमलो; तोय न भागे भूख।
कहे प्रीतम विषय भोगवे, तोये दुणा दुःख ॥७॥
नारी निर्दय कठोर अति, कठण कृपाण की धार।
कहे प्रीतम नर काटतां, कछु न लागे वार ॥८॥
नारी को अपराध नहि, पुरुष पातकी होय।
कहे प्रीतम एक हाथ सुं, ताली पडे न कोय ॥९॥
नारी प्यारी लगत है, तब लग विषय विकार।
कहे प्रीतम कर दूर सें, नारी कुं नमस्कार ॥१०॥
हरि की माया मोहनी, प्रगट नारी निज रूप।
कहे प्रीतम मोहे सबे, दानव मानव भूप ॥११॥

नारी नेह उपजावही, मिथ्या प्रपच प्रीत ।
कहे प्रीतम सबहि हरत है, ज्ञान ध्यान गुण चित्त ॥१२॥
नारी नहि ए नागणी, नर मेडक निरधार ।
कहे प्रीतम केते ग्रस, लेखा नहि लगार ॥१३॥
लालच लोभ दिखावहि, अति उपजावे भाव ।
कहे प्रीतम ज्यु मुपक पर, मीनी माडे दाव ॥१४॥
नेण वेण मोह बाण है, प्राण कियो बेहाल ।
कहे प्रीतम मुसाफरे, मीनी के मन ख्याल ॥१५॥
मजरी के मुख थकी, उदर नासे आप ।
कहे प्रीतम मुखे मरे मीन का, उदर कु क्या पाप ॥१६॥
नारी नदी स्वरूप है, प्रबल विषय को पूर ।
कहे प्रीतम केते गये, तासे रहियो दूर ॥१७॥
नेणे काजल नाक नथ, वेणी वसीयर जाण ।
कहे प्रीतम घु घट करे, हरे पलक मे प्राण ॥१८॥
कहेत कामरू देश मे, करे पुरुप कु बेल ।
करे प्रीतम सब देश म, एहि निरतर खेल ॥१९॥
नर मुरख माने नहि, कीजे कवन उपाय ।
करे प्रीतम हाथे करी, पडे जाल में जाय ॥२०॥
बधन बीजे बहुत है, नारी सभी नहि कोय ।
कहे प्रीतम छुटे नहि, जे कोइ बधन होय ॥२१॥
मुख से मीठा उचरे, अतर ओर बात ।
कहे प्रीतम जुदी न होय, करै दया दुइ घात ॥२२॥
परमेश्वर के पथ में, नारी डर यो पास ।
कहे प्रीतम अध बीच से, उडावे आकाश ॥२३॥
मारग छुटा दो मिलो, कनक काता कहेवाय ।
प्रीतम बात भुलावहि, जिधर तिधर ले जाय ॥२४॥
बात पीत कफ आध लई सप्त धातु को देह ।
कहे प्रीतम नर मूढ़ जे, करे तेरसु नेह ॥२५॥
मास लपेटया चरम से, उपर आछा रग ॥
कहे प्रीतम भय पावही, जबही उघडे अग ॥२६॥
स्त्री पुरुष आनन्द मय, सबही हरि को रूप ।
प्रीतम जाकु ज भावना, ताकु ताफल रूप ॥२७॥

—वही, पृ० १३४ से १३६

पद ७७—राग प्रभात

प्रभात भयो प्राणपती, प्रेमे प्रभु जागो। टेक
दंत धावन करो कांन, मांखन रोटी मागो॥ प्रभात० १
शिश समारो पाघ पहेरो, अंग धरो वायो।
चंद्र वदन दर्शन दइ, दुनिया दुःख भागो॥ प्रभात० २
भयो प्रकाश अरुण उदे, आलस उंघ त्यागो।
प्रीतमना स्वामी श्याम, तुमसुं स्नेह लाग्यो॥ प्रभात० ३

—वही, पृ० १८६

पद ७८—राग प्रभात

जागीए गोपाल लाल, मेरे प्राण प्यारे। टेक
आपके अद्भुत खेल, रूप अनेक धारे॥ जागीए० १
मुदक को अस्वार एक, दुंद दंत भारे।
शिश हु के सूंढ वाके, शिव सदन निहारे॥ जागीए० २
मोर को अस्वार एक, खटवदन बिचारे।
अंग-अंग अधिक रंग, संग सेन सारे॥ जागीए० ३
वृषभ अस्वार एक, कंठ नाग कारे।
संग है सुकुमार नार, कोटि काम वारे॥ जागीए० ४
हंस वाहन चतुरवदन, वेदहु उच्चारे।
स्वेत हस्ती सप्त सूंढ़, शीश चमर ढारे॥ जागीए० ५
द्वार आये दर्शन दियो, नंद के दुलारे।
सुरनर मुनी मगन भये, बोले जे जे कारे॥ जागीए० ६
गान तान छंद भेद, करत नृत्य भारे।
प्रीतम के स्वामी पर, सर्वस वार डारे॥ जागीए० ७

—वही, पृ० १८६

रविदास

भजन १

देखा रे देखी मत करो अह रे, सान गुरु की है न्यारी।
बार जा गली सब है भूलन की, अंतर की गत है न्यारी॥ टेक
बिना सुरत नट खेल करत है, दोर दगे भोंपर डारी रे।
भोजन पाये जायगा जीव सें, एक पलक सारा जुग हारी रे॥
देखा रे देखी० १

कोइ कहे श्रीकृष्ण पुरण ब्रह्म, सोलसों गोपी नावे हारी रे।
ऐसा देखी कोइ आप दौडावे, तो नरकें जावे नरनारी रे॥
देखा रे देखी० २

राजा जन के आतमा चिन्ही, राज कीनो लुब्धा टाली रे।
एक हाथ माया के कर पर, दुजे हाथे अग्नि जाली रे॥
देखा रे देखी० ३

बिना समज मन सब मे खावे, उदर भरन के अधिकारी रे।
ज्ञान तो न जाणे विषय रस माणे, दे खप्पर मे एकाकारी रे॥
देखा रे देखी० ४

ऐसा रे संत कोइ सम दृष्टि रे वे, सोहि संतन की में बलिहारी रे।
कहे रविदास और जग मे घूता, खेल करत पण होय बोहारी रे॥
देखा रे देखी० ५

भजन ११—राग जील परज

आतमा निरखो रे निरवाण॥ टेक
सतगुरु के परताप ज्ञान अनुभव उर जागया रे।
पपियल मीन विहंग, खोज कर भ्रम जो भागया रे।
प्रत्युत्तर सदगुरु करे, जाको कला अनत।
वेद बुद्धि बुद्धन लहे, जाको जाणे विरला सत॥ आतमा० १
नाभि पवन को मूल, मन अष्ट कमल माहि रे वे।
त्रिपुटी वाको स्थान, दोइ मिल त्याहि समावे रे।
शब्द शुन्य से उठत है, फेर शुन्य मे समाय।
बुंद लीन भयो नादमा, नाद निरन्तर राम॥ आतमा० २
जीव की शक्ति ग्यान, शिव की शक्ति माया रे।
इन दोनो से मिल, अखड अद्वैत अजाया रे।
जीव शिव कहेवाय नही, ने हम तुम नही कोइ हाम।
वश्रीक पद परमातमा, सो निजानद निज धाम॥ आतमा० ३
पच तत्त्व के मांय मलीने, जीव कहावे रे।
देह इन्द्रिय मन प्राण, मलीने माप वधावेरे।
सोरंग वस्तु अगाधरे, लीपे छीपे ना सोय।
घट-घट परगट रमि रह्या, बूझे विरला कोय॥ आतमा० ४
ए सतगुरु को देश, निगम नेति का गावे रे।
ब्रह्मा विष्णु महेश, खोज के पार न पावे रे।

निजानंद को अनुभवे, तो नाम रूप को नाश ।
ब्रह्म मगन होइ बोलिया, सो अणछता रविदास ॥ आतमा० ५
—वही, पृ० ८०४

भजन १२

दल दरियामां हमेश न्हाना, कादव कपड़ा क्युं धोता ।
पतिव्रता घर नार पद्मणी, गुण कासे मन क्यों म्होता ॥ टेक
श्राध सरावतां कहिक जुग वही गया, मुवा बापकुं क्यों रोता ।
मामा कुं आदर नही देता, मुवा पछी मुख नही जोता ॥ दल० १
खावे पीवे ने मारे खासडे,[१] माल मूरखा क्यों खोता ।
ऊगे त्यां कवु न वावत, कलरमें बा क्यों बोता ॥ दल० २
आंब वृक्ष की छांय तजीके, आक वृक्ष पर क्यों सोता ।
हंस सभामां कवुन वेसता, बगल साथे खावे गोया ॥ दल० ३
करी ले बन्दगी साया साहेब की, अमर रे वे तेरा तोता ।
कहे रविराम गुरु भाण प्रतापें, फेर अवसर नहीं होता ॥ दल० ४
—वही, पृ० ८४०

भजन १४

जो रे संतो भेद आगम का बूझो । टेक
कैसे सद्गुरु समरियें, · क्युं कर लीजे नाम ।
कहां तमोने निरखियें, तमे[२] कहां छो[३] आतमाराम ॥ जी रे० १
श्वासो श्वासें समरियें, . अहनिश लीजे नाम ।
सुरत निरत में निरखियें, तो घट-घट आतमाराम ॥ जी रे० २
कहां से विजुरी करे चमुका, कहां से ज्योति जागे ।
कहां सत गुरु की नोबत बाजे, कहो क्यां आप विराजे ॥ जी रे० ३
आप तेजसें करे <u>गबुका</u>, त्रीकुटी ज्योति जागे ।
गगन मंडल में नोबत बाजे, तखतें आप विराजे ॥ जी रे० ४
कहां से आया कहां जायगा, कहां तमारूं धाम ।
आ काया पलमां पडि जाशे, पछे ठोर बतोवो ठाम ॥ जी रे० ५
हम आया है दूर से, अमरापुर है धाम ।
सुरत चडी अस्मा ने ठेरानी, ब्रह्म हमारो ठाम ॥ जी रे० ६

---

१ ... २ ... ३

कौन शब्द से धून लगाई, कौन नाम निरधारा।
खीमदास रविदास कु बुझे, माँहे खेलोके वारा ॥ जी॰रे॰ ७
सत्य शब्द से घून लगावो, उरघ नाम निरधारा।
रविराम सत्य भाण प्रतापें, ओह सोहथी अपारा ॥ जी रे॰ ८

—वही, पृ॰ ८०५

भजन १५—राग परज

मैं सिपाइ सतगुरु साहबका रे, लहुँ टोप बख्तर पेरी[1] । टेक
शील संतोष का बख्तर पेहुँरे, लेअ समशेर सतगुरु केरी।
सात साहेर का धुंट भराअूं, मारूं काल दुशमन वैरी। मैं॰ १
सिंह बकरी भेली चरावुं रे, राजा रंकको एक सेरी।
पाँच पचीस कोई जानन पावे, ब्रह्म मेल में जोऊँ हेरी ॥ मैं॰ २
सत्य शब्द की लगी खुमारी रे, शुन्य शिखर सुरता मेरी।
पार ब्रह्म के परचे खेलुं, करूं टेल संत सबूरी ॥ मैं॰ ३
अरघु[2] राज्य ने अरधा दुआइ रे, होइ छाप पातशा केरी[4]।
कहे रविदास सतगुरु के आगे, मागुं मौज चाकरी मेरी ॥ मैं॰ ४

—वही, पृ॰ ८०६

पद १—ठुमरी

रमता राम हमारा नाथ जी, रमता राम हमारा रे।
ज्यां ठेराअूं त्यां हरि नांही, ऐसा अपरमपारा रे। टेक
कोई कहत है नामि निरंजन, को कहे हृदय प्रकाश रे।
कोई कहे नाशा के अग्र है, कोई कहे भृकुटि वास रे ॥ रमता॰ १
कोइ कहत है नैन झूले, ए दरमे दरसाय रे।
कोइ कहत है दश में द्वारे, अकल कल्या नव जाय रे। रमता॰ २
अनेक क्ये आपके उर मांही, सुन गुण के मैं फूल्या रे।
करता जुग मे सब कचराणा, किनहु न पाया निज मूला रे। रमता॰ ३
रोम रोम अनेक ब्रह्मंडा, घट घट हरि बोले रे।
आप ही खोजे आप पारस मण, खबरबिना दिन तोले रे। रमता॰ ४
निराकार निर्लेप निरंजन, लेरो विन सब लेरो रे।
रवीदास ग्रही सतगुरु शरना, पुरुष निराला पेखे रे ॥ रमता॰ ५

—वही, पृ॰ ८०६

---

[1] पहनकर, [2] साथ में, [3] आया, [4] को।

राजे

काफी कानडो

हरि से हेत राखो रे भाई।
जन किसी का कोई नहीं तेरा, जग की जानो झूठ सगाई ॥ हरि०
सुख का तो सब कोई सगा है, लाखो लोक मिले घर आइ।
अंत की बेर अलेख वी आशा, बेठे रहे बाप और माइ ॥ हरि०
कुटुम्ब कबीला अनमिल जाते, तोरी नही तलब कराइ।
जो जाने तो चेत सवेरा, ये दुनिया है भव दुःख दाइ ॥ हरि०
बेवड[१] कोट करे बलवंती, फरती खोदावे और खाइ।
लाख जतन करे जीव जाशे, एक समे पड़ेगी धाइ ॥ हरि०
जाशे[२] बाप ने जाशे बेटा, जाशे मा और जाशे जाइ।
एक लाख पुत्र सवा लाख नाती, ए रावण की खबर न पाइ॥ हरि०
एकीला आना एकीला जाना, तातें कछु एक करो भलाइ।
राजे का प्रभु अंतरयामी, अधम ओद्धारण है रघुराई ॥ हरि०

—नवीन काव्य संग्रह, पृ० १५१

अंते पडेगी काची[३] रे काया।
गर्व न करो मूर्ख मन मेरा, दुनिया देखो फरती छाया। अंते०
तेरा घर की खबर न तोकुं, गा घर से जीव है आया।
साचा साहेब तुने विसार्या, झूटे जग से जोडी माया ॥ अंते०
नित उठी निंदा करे पराइ, गोविन्द का गुण कबुन गाया।
प्रीत नहीं परमेश्वर साथे[४], झूडी प्रीते प्रीत लगाया ॥ अंते०
साधु संगत में नव बेठा, आठे पहोर धंधा में धाया।
एक रोज जंगल को जाना, मनने मीथ्या नाम धराया ॥ अंते०
जोबन जावे बुढापा आवे, तो भी मूरख मर्म न पाया।
काले केश हुए सब धोले[५], तो भी नाहि भजे रघुराया ॥ अंते०
हरिभक्ति भूतल में कोनी, तीने साहेब का पटा मिलाया।
राजे का प्रभु अंतरजामी पार्ण आया सोही निभाया ॥

—वही, पृ० १५१

वनज करो रे भाई वनजारा।
बातो माहि बहु दिन बीते, जोतां जावे ये जन्मारा। वनज०
पोठी सब है हराये हरसे, भावे भेलावे माल पिमारा।
पांच पचीस संगे बनजारा, मोटा नायक नाम तुमारा ॥ वनज०

---

[१] दुगुना, [२] जाएंगे, [३] कच्ची, [४] के साथ, [५] सफेद।

समा सवारी लाप चलेगो, मत राखो लोको कु उधारा।
चोपे करो चुकादा सबही, तब होवेगा छूटक बारा ॥ बनज०
खेप लाखेणी लुणस[1] भरीए, अत की वेरा ये सब खारा।
ऐसी व्होरत कीजे वाल्ह, जाम होवे लाभ अपारा ॥ बनज०
दो दश दाणी बैठा बाटे, वाहा नाही होवे नकारा।
सोका साहेब लेखा मागे, जो जाका दस बेके सारा ॥ बनज०
पथ का पार कछु नही आया, हाय हाय सब करत गवारा।
राजे का प्रभु अतरजामी, पार उतारे सजन हारा ॥ बनज०

—वही, पृ० १५२

जीवण

जागदा कोइ आ घटमा, परखदा कोइ आ देह मा।
झननन इननन इनक झालरी वाजे। जागदा०
बोले बोलावे सव घट बोले, सब घटमा रह्यो समाई।
ज्या[2] जोउ त्या[3] तेवो दिसे, थिर करी थाणे रसो ठेराइ ॥ झन०
विना ताल एक तन मन मर तु बा, विना मोहन मोरली वजाई।
विना अरीसे[4] आप सुझे, बिना दीपक ज्योत जलाई। झन०
एही दुकाने दहदह वाजे, कर विण वाजा ओर सरणाई।
विना दाडीआ नोबत वागे, ऐसा है कोई वो घर जाइ ॥ झन०
जाप अजपा जागे नाहीं चादो सूरज पहोंचे नही तांही।
साची टेक सो ते घर जाव, आपोआप[5] रहे ओल खाइ। झन०
नव दरवाजे नवे राम छे[6] दशमे महेल रह्यो देखाइ।
ते[7] महेलमा राम ही बोले, आप ही त्यागी वो घर जाइ ॥ झन०
अक्षरातीत ने अर्ज करु छु, अखड ये हा अवाज सुनाइ।
दास जीवण सतो भीम के चरणो, मजरो मानो गरीब सुख दाइ। झन०

—नवीन काव्य दोहन, पृ० १६५

धीरो

पद १—राग धोल

दम का भरोसा मत कर भाई, साधन करदा साइ।
साधन करदा साई, मैं वारी वर्या दमका ॥ टेक १
पाव पलक का खबर न जाणे, करे काल की आश।
धीर पर जमडा जडप रहे, होयगा जगल वास ॥ दमरा० २

---

[1] नमक से, [2] जहाँ, [3] वहाँ, [4] दर्पण, [5] अपने आप, [6] है [7] उस।

हस्ती घोडा माल खजाना, कोइ काम नहीं आवे।
अचेत होकर कब बैठा हो, पीछे थी[1] पस्तावे ॥ दमका० ३
सद्गुरु के शरणे जाई, चरणे शीश नमावो।
आधीन होकर निश दिन रहेनां, जमकी त्रास मिटाई ॥ दमका० ४
जे आ आश जानेकु माई, रहनेकु थीर नाही।
सद्गुरु धारा भगत बतावे, रोगी भगवान भलाई ॥ दमका० ५

—धीरो बृहत्काव्य दोहन, भाग ३, द्वि० सं०, पृ० ७३६

बापु साहेब गायकवाड

पद १०

सांइ का मीलने का तो सबकु लगे प्यारा रे।
भाइ रे सांइ का मीलने का तो सबकु लगे प्यारा ॥
ए तो भेद रख्या हेगा प्यारे न्यारा रे।
भाइ रे सांइका मीलने का तो सबकु लगे प्यारा ॥ टेक १
माल जो हुता सो घर का धंणी[2] सब ले गया।
मूरख खेत ठुंठ मुआ सारा।
एम[3] हिंद मुसलमान मक्के और द्वारका।
दोर दोर के पीछे हारा रे ॥ भाइ रे सांइ का० २
वज्जु तवज्जु करके जो निवाज पठता।
हिन्दु नाहा धोके मन मारा।
पण[4] मन नहिं मुआ सैतान संसे हेगा।
सच्ची बूटी मिले जबही मरे पारा रे। भाइ रे सांइ का० ३
माया नदी कुं कोइक पार जावे।
ऐसी जबरी जो हेगी धारा।
बापु नाम नाव बैठा सोइ पार जावे।
आखर डूब मुआ हेगा जो तारा रे ॥ भाइ रे सांइ का० ४

—प्राचीन काव्यमाला, भाग ७, पृ० ६

निरांत

पद २—राग प्रभात

नाम धणी को सबसें नीको, अनुभवी जन अधिकारी है।
सब देशन को सब गुरु दाता, मंगता भेख भिखारी है ॥ टेक

---

[1] से, [2] स्वामी, [3] इस तरह, [4] पर।

महा मर्मीजन मर्म न जाने, नाम लखी गत न्यारी है।
सद्गुरु साहेब दया करे तो, पल मे पार उतारी है॥ नाम० १
थाक्यो पंडित थाह ना पावे, बुडो बुद्धि बिचारी है।
जोगी जोग जुगत बिना हारे, खुशी पें सब खुवारी है॥ नाम० २
बावन अक्षर बूझत नांही, बेद पुरान विचारी है।
खट दरशन मत खेल तपास्या, कहा बडे आचारी है॥ नाम० ३
मुल्ला काजी मरम नां पावे, हक विना मत हारी है।
दोउ दिन पर सच्चा साहेब, नाम धनी परवारी है॥ नाम० ४
नाम नां चीने सो नर नुगरा, कहा साधु संसारी है।
निरांत नाम अभे अविनाशी, पाया प्रेम पसारी है। नाम० ५

भजन सारसिन्धु पृ० ५१७

पद ३—राग प्रभात

बड़े गुरु वाकी जाउं बलिहारी, कहा सेवक कुं सिखलाया।
पास अंधे की अंधा आया, अंधा राह चलाया॥ टेक
बन्दा कहावे छुरी चलावे; एही फलकुं फुरमाया।
किया कराया दोउ दो भ्रख जाएगे, हक नाम कुं नां पाया॥ बड़े० १
भगवा कहावे मुंड मुंडावे, दिल अंदर नहिं दरशाया।
और सब समे वहे जात है, अलख नाम कुं नां पाया॥ बड़े० २
सन्यासी सो सब कर नासी, नों गाया पद परसाया।
गउमंत्री मे जन्म गुमावे, मूल मन्त्र का नां पाया॥ बड़े० ३
जोगी कहावे जोग द्रढावे, गगन मंडल मे मठ छाया।
जोत जोख कें जन्म गुमावें, आप अलख कुं नां पाया॥ बड़े० ४
जंगम कहावे कान फरावे, देवी देवकुं मिल चाया।
आश अधूरी बहे जात है, देवी नाम कुं ना पाया॥ बड़े० ५
ब्रह्म कहावे जनोउ सुहावे, खट्ट करम नित निरमाया।
एही करम कर बहे जात है, नेह करम कुं नां पाया॥ बड़े० ६
जनि कहावे सुवांग सुहावे, शील भाव दान तप भाया।
धरम बखानी वहे जात है, नेह धरम कु ना पाया॥ बड़े० ७
भेख कुल का बडा बनाया, कुल भ्रूंको न काया।
कुल भ्रूट तो सतगुरु कीवे, सब देखो उनकी माया॥ बड़े० ८
सद गुरु वाके शिर सतगुरु है, घर गठ पट परखाया।
निरान्त नाम इनुं का कहीए, विमल विमल वेदुं गाया॥ बड़े० ९

—वही, पृ० ५१८

पद ९—राग धनाश्री

राम समर मन मेरा, अब तु राम समर मन मेरा।
एक दिन अंते उठ चलेगो, कोई नहीं साथी तेरा रे ।। टेक
अवसर आवो[१] बहु नहीं आवें, समजी समजी ने सवेरा।
पंड पलकमां पलट जायेगो, जंगल होयगा डेरा रे ।। अब तु० १
वेद पुराण शास्त्र सर्व बोले, हरि ने भजे ते भलेरा।
बीजु कंइए कामना आवे, सब साहेबी गा बोछेरा रे ।। अब तु० २
कोण[२] सुकृत मनुष्य देह पायो, बहोत फर्यो तु फेरा रे।
हजु[३] चेत मूल मत भाई, माथे मरण का हेरा रे ।। अब तु० ३
जनम मरण कर्म जाल कटेगो, मिटेगा कालका घेरा रे।
निरांत नाम ग्रहे सदगुरु का, नामे होयगा निवेरा रे ।। अब तु० ४

—वही, पृ० ५२७

पद ११—राग कल्याण

बाजीगर का बडा तमासा, सब देखन कु आइ।
बाजीगर कु कोइ ना देखे, चित बाजी से आइ ।। बाजी० १
खेल खेलन का खूब बन्या है; अचरत बरनी न जाइ।
नर नारी कोउ नजर चूके, खुसी में मान पाती आइ ।। बाजी० २
साची ने साची झूटी है, ऐसी जुगत बनाइ।
तीन लोकमां ऐही तमासा, रांक राव रीझाइ ।। बाजी० ३
खेल खूबमां दुनियां खुशी, ऐसी खेल खीलाइ।
ते तो सबही झूठा जानो, जानत जग भरमाई ।। बाजी० ४
तीन देव आदे सहु दुनियां, ए सब बाजी बनाई।
बाजी सें सबका मन माना, बाजीगर नां पाई ।। बाजी० ५
जड चेतन का ऐसा खेला, अटूट चाल चलाइ।
निरांत नाम बाजीगर न्यारा, बाहेर भीतर पाइ ।। बाजी० ६

पद १४—राग आशावरी

राम रस पीवे सो जन पुरा, शंत में कोइ एक शूरा ।। टेक
राम रस ने प्रेम पियाला, पाका पात्र न फूटे।
आप पिए औरन कु पिलावे, तल भर तामे नव खूटे ।। राम रस० १

---

[१] ऐसो [२] कौन, [३] अभी।

रस मतवाला रूप बखानु, मगन रहे मन माही।
त्यागी तनकी शुद्ध बिसारी, छाक चढी भय माही॥ राम रस० २
गगन गुफामे योगनि ग्यान का, आप रहे एकीला।
अन्य देव वाके दिल्ल नाही, नहि गुरु नहि चेला॥ राम रस० ३
अनन्त कला वा तन के माही, उलट समे ससारा।
निरातदास देख्याता माही, तीन लोक से न्यारा॥ राम रस० ४
—वही, पृ० ५२६

पद २१—राग गोडी

आप चिन्या बिन अन्धा, जगत सब आप चिन्या बिन अन्धा।
पठवे गणवे आद लेऊँ, सबही उपा का धधा॥ टेक
मत्र जत्र भेरव भवानी, वीर जोगणी जदा।
उत सगत करी आप भुलायो, परे है काल की फदा॥ जगत० १
खट दरशन मली खेल गयो, कहावे साहेब का बदा।
उन सबे आप लखे नहीं आयो, भेख घरहीं भीखदा॥ जगत० २
प्रपंच मे सब पच पच हारे, सरो परो समरदा।
सारे असार की सूझता पाइ, चढ़ है खोट की खघा॥ जगत० ३
सद्गुरु पावे अलख लखावे, छूटे सकल कुल बधा।
निरात नाम आपको पायो, एही सार करी सघा॥ जगत० ४
—वही, पृ० ५३३

पद २२—राग गोडी

आज कालमा दुनिया देखो, पानी की सारी।
नरनारी को ओर न रेशी, जाहान लगी है भाहारी॥ टेक
मोत वडा सबके शिर ऊपर, कौन रक कौन राजा।
प्राण सबका पवड रहा है, सबकी लेगा माभा॥ आज० १
कोइ कहे अब किस विधि करीए,[1] सब दोर में आया।
दश दरवाजा बध लिया है, काल रह्यो गढ़ छाया॥ आज० २
तीन लोक मे ओहो तमासा, सब के शिर पग दाया।
एक जगे ऐसी सद्गुरु की, वहाँ से काल भगाया॥ आज० ३
उस जगेपर जाने जीवडा, ओहे अमर निशानी।
निरात नाम नमे सद्गुरु को, पूर्ण पद निरवानी॥ आज० ४
—वही, पृ० ५३३

---

[1] करें।

पद ६२—राग गोडी

दुनियां मरड मू की दो मन की, फेरफार नहिं, फना होइ जायेंगे।
नही भरोसो तन को, दुनियां मरड मू की दो मन को ॥ टेक १
कहाँ से आये ने कहाँ तुम जाओगे, खोज करोने उनको।
दो दिन की जिंदगानी सारु,[1] कहा करो तुम धन को ॥ दुनिया० २
संसार सुख स्वप्नावत देखो, कोइ जगे नहिं किनको।
सब कोइ देखत जाना होयगा, रहेने नहि होय एक दिन को ॥ दुनिया० ३
फूल फूल्या सो कल करमायेगा,[2] जाता नहि बेर जोबन को।
निरांत नाम गुरु का ग्रही ले, सहु सुधरे एसो जन को ॥ दुनिया० ४

—प्राचीन काव्य, भाग १०, पृ० ५६

पद ७

मैं तो प्यारी पिराने पियु की,
जातां जान हमेरे जीव की ॥ टेक १
रही अरस परस एकता मलो,
सुख पियाजी को मुख कहो न शकुं कली,
धिक धिक कहीए एवी नार ने,[3]
दियो पियाजी को सुख वीसार ने ॥ मैं तो० २
कीनो सनगार उपर नाव की,
रही अतर और सभाव की।
मइ दुर्मति दोहोदश धावती,
व्यभिचारिणी पियाकु ना भावती ॥ मैं तो० ३
ऐसी नार पिया की अनेक छे,
तामे कोइ कोइने काइ टेक छे,
पतिव्रता समोवड[4] को नहि,
वृत्ति वशी रही पियु के मही ॥ मैं तो० ४
प्रेम वंती ने पियु की चाहना,
ब्रेहेवती ने ब्रेहेनो लोचना।
आतुरवंती ने आतुरता घणी,[5]
एवी विजोगवंती बोहोघणी ॥ मैं तो० ५
पिया कोण मिलाया कीजिए,
याके आधीनता होइ दीजिए।

---

[1] के लिए, [2] मुरझाएगा, [3] को, [4] समान, [5] बहुत।

कीजे तन मन अरपन ताही कुं ।
मोहे पिया मीलावे वाही कुं ।। मैं तो० ६
ऐसी जानी गुरु आये आपसु,
जैसे स्वाति छीप सभावसु ।
निरात दया करी दास ने,
आप पिए मीलाओ हरी आशने ।। मैं तो० ७ —वही, पृ० ६१

पद ७२

बड़ी आश कीइ तेरे नाम की, मन मेहेरमकुं लागी है ।
मन मेहेरमकु मेहेरम मलिया, भूल भरम की भागी है ।। १
उलटी सुरता चढी गगन मा, तदवत् यइ तन त्यागी है ।
सत सामी सत बनी सोहागन, जीवन भरमां जागी है ।। २
बिन बस्ती वां बसती कीनी, उन्मनी घर अनुरागी है ।
नौतम नारी पियाकु पियारी, पाई मोज बिन मागी है ।। ३
सदा सोहागन वाकुं कहीए, नरखत नाम सोरागी है ।
निरांत नाम अमूलक पाया, सोइ पुरुष बडभागी है ।। ४

—वही, पृ० ६५

पद ७४

सद्गुरु की महिमा बडी, ग्यानी जन गत पावे ।
जगत पावन ए परमातमा, गुरु देव कहावे ।। टेक।।१
अन्य देव उनथे भये, भये दस अवतारा ।
ब्रह्मा आदे विश्वना, स्वामी सरजण हारा ।। सद्गुरु की० २
तीन देव तासें भये, भये सकल ब्रह्मांडा ।
इंड पिंड उनथे भये, गुरु आप अखंडा ।। सद्गुरु की० ३
आद अंत गुरुदेव है, गुरु की सब माया ।
निरात निर्मल नाम है, गुरु देव सरसाया ।। सद्गुरु की० ४

—वही, पृ० ६६०

पद १०५

नाम बिना बहु कृत कमाये, जैसे नीर ओस को पीवे ।
बोहोत पीवे पण[1] प्यास न जावे ।। नाम० १
जप तप नीम वरत बोहो करनी, नाना विध के नित्य ठरावे ।
वर्म जाल से कबहु न छूटे, ज्युं बालक पे खेल खेलावे ।। नाम० २

[1] पर ।

पद ६२—राग गोडी

दुनियां मरड मू की दो मन की, फेरफार नहि, फना होइ जायेंगे।
नही भरोसो तन को, दुनियां मरड मू की दो मन को ॥ टेक १
कहाँ से आये ने कहाँ तुम जाओगे, खोज करोने उनकी।
दो दिन की जिंदगानी सारु,[१] कहा करो तुम धन को ॥ दुनिया० २
संसार सुख स्वप्नावत देखो, कोइ जगे नहि किनको।
सब कोइ देखत जाना होयगा, रहेने नहि होय एक दिन को ॥ दुनिया० ३
फूल फूल्या सो कल करमायेगा,[२] आता नहि बेर जोबन को।
निरांत नाम गुरु का ग्रही ले, सह्यु सुधरे एसो जन को ॥ दुनिया० ४

—प्राचीन काव्य, भाग १०, पृ० ५६

पद ७

मैं तो प्यारी पिराने पियु की,
जातां जान हमेरे जीव की ॥ टेक १
रही अरस परस एकता मली,
सुख पियाजी को मुख कही न शकुंकली,
धिक धिक कहीए एवी नार ने,[३]
दियो पियाजी को सुख बीसार ने ॥ मैं तो० २
कीनो सनगार उपर नाव की,
रही अतर और सभाव की।
भइ दुर्मति दोहोदश धावती,
व्यभिचारिणी पियाकु ना भावती ॥ मैं तो० ३
ऐसी नार पिया की अनेक छे,
तामे कोइ कोइने काइ टेक छे,
पतिव्रता समोवड[४] को नहि,
वृत्ति वशी रही पियु के महीं ॥ मैं तो० ४
प्रेम वती ने पियु की चाहना,
प्रेहेवती ने प्रेहेनी लोचना।
आतुरवंती ने आतुरता घणी,[५]
एवी विजोगवंती बोहोघणी ॥ मैं तो० ५
पिया कोण मिलाया कीजिए,
वाके आधीनता होइ दीजिए।

---

[१] के लिए, [२] मुरझाएगा, [३] को, [४] समान, [५] बहुत।

कीजे तन मन अरपन ताही कु'।
मोहे पिया मीलावे वाही कु'॥ मैं तो० ६
ऐसी जानी गुरु आये आपसु,
जैसे स्वाति छीप सभावसु।
निरांत दया करो दास ने,
आप पिए मीलाओ हरी आशने॥ मैं तो० ७ —वही, पृ० ६१

पद ७२

बड़ी आश कीइ तेरे नाम की, मन मेहेरमकु' लागी है।
मन मेहेरमकु मेहेरम मलिया, भूल भरम की भागी है॥ १
उलटी सुरता चढी गगन मां, तदवत् थइ तन त्यागी है।
सत सामी सत बनी सोहागन, जीवन भरमां जागी है॥ २
बिन बस्ती वां बसती कीनी, उन्मनी घर अनुरागी है।
नौतम नारी पियाकु पियारी; पाई मोज बिन मागी है॥ ३
सदा सोहागन वाकु' कहीए, नरखत नाम सोरागी है।
निरांत नाम अमूलक पाया, सोइ पुरुष बडभागी है॥ ४

—वही, पृ० ६५

पद ७४

सद्गुरु की महिमा बडी, ग्यानी जन गत पावे।
जगत पावन ए परमातमा, गुरु देव कहावे॥ टेक॥१
अन्य देव उनथे भये, भये दस अवतारा।
ब्रह्मा आदे विश्वना, स्वामी सरजण हारा॥ सद्गुरु की० २
तीन देव तासें भये, अभे सकल ब्रह्मांडा।
इंड पिंड उनथे भये, गुरु आप अखंडा॥ सद्गुरु की० ३
आद अंत गुरुदेव है, गुरु की सब माया।
निरांत निर्मल नाम है, गुरु देव लखाया॥ सद्गुरु की० ४

—वही, पृ० ६६०

पद १०५

नाम बिना बहु कृत कमाये, जैसे नीर ओस को पीवे।
बोहोत पीवे पण[1] प्यास न जावे॥ नाम० १
जप तप नीम वरत बोहो करनी, नाना विध के नित्य ठरावे।
कर्म जाल सें कबहु न छूटे, ज्यु' बालक पे खेल खेलावे॥ नाम० २

---

[1] पर।

करत है ए छूटन को माद, त्यम त्यम बपरा बोहोत बंधावे।
मूरख मन समजत नहि ए सो, कोडी ग्रहे ने हीरा गमावे॥ नाम० ३
बिन कीमत का एहे पसारा, गांधी[१] वस्तु बोहोत वसावे।
निरांत नाम गुरु नहि चीना, बोहोत बस्तमे बस्तु न पावे॥ नाम० ४

—वही, पृ० ६५

पद १०६

हम है वाही देश के वैरागी,
बिना सद्गुरु कोइ जाइ शके नाही,
सद्गुरु आध अंत कहे तागी।
वही देश ते सब चली आये,
दूर परे दुमंत नाहीं भागी॥ हम है० १
अमर लोक से दुनिया आइ,
महाजल मीन परी है आघी।
छीलर में सब खुश रहे हैं,
जल घरे जब मरे तन त्यागी॥ हम है० २
जनम मरन ता जन कुं नाहि,
जाकु चोट शब्द की लागी।
निरांत नाम लख्या वाही देशी,
जाई मले मनवा जो जागी॥ हम है० ३ —वही, पृ० ९६

[ज्ञानोपदेश]

पद १५—राग आशावरी

राम रस पीवे सो जन पूरा, शत मे कोइ एक शरा। टेक १
राम रस ने प्रेम पियाला, पाका पात्र ना फूटे।
आप पीए औरन कु पीलावे, तल भर तामे नव खूटे॥ राम रस० २
रस मत वाला रूप बखाणुं, मगन रहे मन मांही।
त्यागी तनकी सुद्ध बिसारी, छाक चढ़ी भय नाहीं॥ राम रस० ३
गगन गुफा मे चोगान गियान का, आप रहे एकिला।
अन्य देव वाके दिल नाहीं, नहीं गुरु नहि चेला॥ राम रस० ४
अनंत कला वा तनके मांही, उलट समे संसारा।
निरांतदास देख्या ता मांही, नित लोक से न्यारा॥ राम रस० ५

—वही, पृ० १२३

[१] पंसारी।

पद २८—उच्च प्रभात

नाम बीना कछु न मीले, ग्यानी जन गत पावे।
नाम मीले जाइ नामकु रे, नाम नाम लखावे ॥ टेक १
अगम अगोचर नाम है, नाम निरगुण कावे।
सिर गुण सोइ सत नाम है रे, नामे सब धावे ॥ नाम० २
पीर पेंगम्बर ओलिया, अल्ला ईसम पढावे।
ईसम ईसम के आसरे, काजी कलमा सुनावे ॥ नाम० ३
ईसम नाम दोउ उपरे, भला वाही कु लहीए।
निरात निर्मल नामकु, कहो कैसा कहीए ॥ नाम० ४

—वही, पृ० १३३

पद २९—उच्च प्रभात

राम नामका पारखु, कहो कैसे पावे।
हसन की छत कहाँ मीले रे, बग बहोत मील आवे ॥ राम० १
काजी पंडित पढे घने, ध्यानी सब धावे।
सिद्धान्त कु रामजे बिना, कछु हाथन आवे ॥ राम० २
खट दरान मिलो जोगहि, अजा एक ना पावे।
भिन्न भिन्न भेखी भये, खट राह चलावे ॥ राम० ३
आध अन्त मध्य एक है, दूजा नहि दरसावे।
निरात निर्मल नाम है, गुरु देव खावे ॥ राम० ४—वही, पृ० १३३

पद २३

परम धाम पद राम नामको, सदगुरु अलख लगावे रे।
नध[1] समोवड कहेवा सरखु, आप आप दरशावे रे ॥ परम०
शेप शारद मुनी नारद रटत है, शिव सुमाध सुवावे रे।
वेद आद लेइ वरणव करता, वणव्यामां ना आवे ॥ परम०
वर्ण असरमा तो रह्यां विमासी, नित्य करम नी रमावे रे।
खट दरसन भली[2] खोज करत है, मूल परम नव पावे रे ॥ परम०
सो जान जोगी जपे अजापा, खट रसना गुन गावे रे।
खर अक्खर पर नरख नामकु, उलट निरन्तर धावे रे ॥ परम०
सोही जनकी मे जाउ बलिहारी, सो मेरे मन भावेरे।
निरात नाम नरखपद पूरन, सुमरन मही समावे रे ॥ परम०

—बृहत्काव्य दोहन, भाग ४, पृ० ६४८

---

१ २

पद ३१

प्रीछो भाई सन्त सुजाण, रूप श्री राम नो[1] ।
पायो पदारथ देह, मही मणी नामनो ॥
नाम तणो प्रवेश, चराचरमां जुवो ।
नाम तो अनादी कन्द, वधी वेल जुग हुओ ॥
वदे भाइ वचन बिचारी, संचो करी नामनो ।
शब्दमां सुरती मेलावो,[2] मकान सुन गामनो ॥
त्रवेणी के घरमा, भली रह्यो नाथ शुं ।
पूजा प्रेम आचार, अनोपम भात शुं ॥
अवरतणी[3] होय आश, समज के परहरी ।
तमो आपमां आप देदार, नाम लिख्वे करो ॥
सतगुरु के परताप, पाइ ए गति पलकमां ।
निरांत निरंतर जोइ, समइ रह्यो अलखमा ॥ —वही, पृ० ६५२

रविदास

पद २

कोइ जागंदा-स्वप्ने की लेहेर, समागरे-कोइ जागंदा । टेक
एक दिन जागा क्या भया रे, स्वप्न घेन मदमाती ।
जेसा चन्दा बीज का प्रगट्या, फिर अंधारी राती रे ॥ कोइ० १
समज्या नहीं सद्गुरु को समस्या, निरख्या नहीं नीराटा ।
खोज खबर दील खोज्या नहीं रे; उघड्या नहीं कपाटा ॥ कोइ० २
गावे बजावे करे कलोला, हरदे न पड्या छेदा ।
जैसा पथ्थर पाणीमां रे, कदी न भीतर भेदा रे ॥ कोइ० ३
मारग बंका कर ले डंका, नही कायर का कामा ।
सत शब्द सत् गुरु का ग्रही लो, देख तमासी नामा रे ॥ कोइ० ४
कहे रविदास सत भाण प्रतापे, समज समज मन मेरा ।
शुं सुतो चोराशीमां, अफल फरेगो फेरा ॥ कोइ० ५
—बृहत्काव्य दोहन, भाग ७, पृ० ७६८

पद ५

आत्मा निरख्यो रे निरवाण, आत्मा ॥ टेक
सत् गुरु के परताप, ज्ञान अनुभव उर जाग्या ।
परि उतर सद्गुरु कहे, जाकी कला अनंत ।
वेद बुद्धि बुध ना लहे, समजत विरला सन्त ॥ आत्मा० १

नाभि पवन का मूल, मन अष्ट कमल दल माही।
त्रिकुटी वाको स्थान, दोहू मील तहाँ समाई॥
शब्द शून्य उठत हैं, पुन ही शून्य समाय।
नाद लीन भयो बिंदु मे, बिंदु निरन्तर रहाय॥ आत्मा० २
पच तत्त्व के विषय, मिलि कर जीव कहाया।
देह इंद्री मन प्राण, मान सोइ माहे बधाया॥
साहु ब्रह्म अगाध है, लीपे छीपे नही सोय।
घट घट परगट रम रह्या, चीने बीरला कोय॥ आत्मा० ३
जीव की शक्ति अज्ञान, शिव की शक्ति माया।
इन दोनो तें भिन, अखण्ड अद्वैत उजाया॥
जीव शिव कहेवा नही, हम तुम नहीं कोइ राम।
व्यतिरेक पद परमात्मा, निजानन्द निज धाम॥ आत्मा० ४
ए सद्गुरु को देश, निगम नेती कर गावे,
ब्रह्मा विष्णु महेश, खोज कोइ पार न जावे।
निजानन्द कु अनुभवी, नाम रूप को नाश,
ब्रह्म मग्न होइ बोली आ, अणछता रविदास॥ आत्मा० ५

भोजो भगत पद—३

अब तो भजन करना मन भाई।
कुटुब कबीलो तारे काम नहि आवे, एक साचो राम सगाई॥ अब तो०
भुखे जीवे धन भेलु कीधु, ठाशी भरियु पर साही।
पा दमडी तारे सग नहि चाले, हाथ घसतो जाई॥ अब तो०
काम क्रोध मोह मदमा मो ह्यो, चढो रे कर्म केरी काई।
मर्द घणा तेरे आरे मुलकमा, लुटी लेशे रे लुगाई॥ अब तो०
आ तन तारो काल उडी जायगो, जैसे वटोलियो[1] वाई।
अब का दायो फारि नहि आव, पछे[2] मन पछताई॥ अब तो०
सर्व तीर्थ सद्गुरुजी ने चरणे, ले नित्य गगाजल नाई।
कालनो त्रास कवी नही लागे, आ तन अनभे थाई॥ अब तो०
शु[3] सुतो तु चेत अभागी, आ देह त्ते उत्तम पाई।
भो जो भक्त कहे गुरु प्रतापे, एक लेनी गोविन्द गुण गाई॥ अब तो०
—बृहत्काव्य दोहन भाग ५, पृ० ६२६

पद—६

सतो पामी हु[4] प्रीतम प्यारा।
दिलमा दरशया देव निरजन, हता जीवन जग सें न्यारा॥ सतो०

---

१ ... २ ... ३ ... ४ ...

एक समय मुज पासे हरि आव्या,[1] अनहद रूप अपारा।
प्रीति हतो[2] कांइ पूर्व जन्मनी, निरख्या नन्द कुमारा॥ संतो०
कोमल काया ने[3] वदन सुकोमल, क्यांरे कहुँ करतारा।
मारी सेजे में मुख लीधुं तो पामुं नहि कांइ पारा॥ संतो०
चले न चूके कच्छु आवे न जावे, निर्गुण रूप निराकारा।
भोजो भक्त कहे गुरु प्रतापे, समरूं सरजन हारा॥ संतो०

—वही पृ० ६२७

पद—७

संतो निर्गुण की गति न्यारी।
समश्या हे सद्गुरु की जे[4] समजे, ते[5] थाय सुखकारी॥ संतो०
अडसठ तीरथ करी घेर आवे, ओही रे अनुका चारी।
प्रीति बिना पालव तजी वेसे, तोय मले नहिं रे मुरारी॥ संतो०
जोगी जति ने तपसी सन्यासी, रह्या छे ध्यान मां धारी।
फल मीठा केने हाथ न आवे, पछे रह्या छे है येसें हारी॥ संतो०
सात पाताल एकवीश ब्रह्मा, रह्या सवे राम उचारी।
सद्गुरुना प्रताप विना भाई, भेद समजवो भारी॥ संतो०
भोजो भक्त कहे गुरु प्रतापे, सूइ से छे संसारी।
जाग्या सो नर जग में जीत्या, एक प्रेम पियुगर्ति न्यारी॥ संतो०

—वही पृ० ६२७

पद—८

संतो मूल रे ग्राहे तो फल पाये।
तरणि तत्त्व प्रेम प्रकाशो, तो तेजमां तेज मली जाये। संतो०
ऊँचा ऊंचा तरवर गगन में, फले हे पंखियाँ वेगलुरे।
कंइ कंइ पक्षी बसुधी गयां, फल मीठेरां दूरे॥ संतो०
मूल ग्रह्युं सव थया भया, चढन की गत नाहीं।
रख्या एग स्पर्श्या नहीं, हाँस रही मन मांही॥ संतो०
मूल ग्रह्युं मोटे मुनिवर, जो सद्गुरु चरण चित लाये।
भीलड़ी भावे आपे चाली आये, जो मोटम मान गमाये॥ संतो०
इन्द्रकु इन्द्रासन आप्यो, ब्रह्माए ब्रह्म रचायुं।
संत समर ये सागर पीधो, लइ रे न्याये वसायुं॥ संतो०
अमर वरसे ने सरोवर छलियां, नरपति नीर भरी नाये।
भोजो भक्त कहे गुरु प्रतापे, अमर पटो लखाये॥ संतो०

—वही पृ० ६२८

---

[1] लावे, [2] थी [3] ... र [4] ... [5] ...।

पद ९

सतो मुनिवरे मन समजाया ।
समजी चाल्या शब्द सदगुरु का तो, पर ब्रह्म कु पाया ॥ सतो०
पाँच कुमारी पचीश कुवारी, काम क्रोध हठाया ।
हृद बेहृद अनगत गति आवी, कर्म बिनानी काया ॥ सतो०
कर्म धर्मनी भ्रमणा भागी, एक लालन सें लेहे लागा ।
अबला[१] हुता ते सबला[२] कीघा, लखिया फेर लखाया ॥ सतो०
सुरता साधीने चाल्या अक्षासी, अनहद नाद बजाया ।
वाघ हुता सो अते उठी धाया, जई रूपमा रूप समाया ॥ सतो०
सूक्ष्म वेदमा सुरता पहोती, बावन बार बुझाया ।
भोजो भक्त कहे गुरु प्रतापे, जन्म मरण मे ना आया ॥ सतो०

—वही, पृ० ६२८

पद १०

सतो कोय बूझे बावन हारा ।
जाके हृदय गुरुगम प्रकटे, सो जन खेले चोघारा ॥ सतो०
पाँच पचीश पर ब्रह्म सें उपजे, कोइ शाणा समजी जावे ।
सोय दिऐ सोय रमे एकीला[३], आपे नाव चलावे ॥ सतो०
नयन कमल सें निरख्या नटवर, खोल्या कर्म कपाडा ।
दिलमा दरश्या देव निरजन, नकरा हुआ नराडा ॥ सतो०
अकल कला केना कल्यामा नावे, अनुभवे एने बूझे ।
उँ सोहं शब्दने ओलखे[४], तो चौद लोक तेने सूझे ॥ सतो०
झलकत ज्योत ने नूर अपारा, मान जहरे मिलाया ।
भोजो भक्त कहे गुरु प्रतापे, रूप मे रूप मिलाया ॥ सतो०

—वही, पृ० ६२८

होरो १

नाथ मोरी अरज सुणो[५] अविनाशी ।
हूं[६] तो जनम जनम तोरी दाशी ॥ नाथ०
सती सभामा श्याम सभारे, त्रिकय तोरे सग राची ।
पारखु पलमा देजो पातलिया[७], नहि तो हुवे थाशे हाशी[८] ॥ नाथ०
आ समय तो अर्जुन जेवा, ते पण रह्या छे तपाशी ।
भीमसेन बेठा भूमि खोतरवा, पीठ फेरवी गया पाछी ॥ नाथ०

---

[१] औंधे, [२] सोधे, [३] अकेला, [४] पहिचाने, [५] सुनो, [६] मैं, [७] भगवान, [८] मजाक.

पांडव तो पृथ्वी ने हार्या, हस्तिनापुर तणा वासी।
अबला नारी एम पोकारी, जीवन तमने हुँ जाची ॥ नाथ०
भीड पडी हवे आवो भूधरजी, वनिता कहे व्रजवासी।
भोजो भक्त कहे भक्त वत्सल, प्रेम तणो छे पियासी ॥ नाथ०

—वही, पृ० ६३५

होरी २

पत राखो पांचाली पोकारी, ना मोही जानत है नो धारी।
नाथ मोरी अरज गुणो अविनाशी ॥
दुर्योधन आ दुःख पठाये, कलपत राजकुमारी।
केश पकड़ के लाये सभा मे, जैसे निर्मल कोइ नारी ॥ नाथ०
भीम ने द्रोण करण सब बैठे, कौरव अंध कचेरी।
सबकी मति हरि एसी मीले, केणे न बात बिचारी ॥ नाथ०
उठे भूप रूप पर आये, अंबर लेत उतारी।
खेंचत चीर वीर सब देखत, नव गति श्याम संभारी ॥ नाथ०
अर्जुन भीम, नकुल ने सहदेव, रह्या छे हिंमत हारी।
विश्वनाथ विलंब न कीजे, अब मोय लियोनी उगारी ॥ नाथ०
वनितानां वचन वज्र सम लागे, गरूडे चढ्या गिरधारी।
धाये नाथ अनाथ की व्हारे, भोजन भव दुःख तारी ॥ नाथ०

—वही पृ० ६३५

पद ६

संतो निरगुण की गत न्यारी।
समश्या है सद्गुरु की जे समजे, ते थाय सुखकारी ॥ संतो०
अडसठ तीरथ करी घरे आवे, ओही मनुका चारी।
प्रीति विना पालव तजी बेसे, तोय मले नहि रे मुरारी ॥ संतो०
जोगी जति ने तपसी सन्यासी, रह्या छे ध्यान मां धारी।
फल मीठा केने हाथ न आवे, पछे रह्या छे हैये से हारी ॥ संतो०
सात पाताल एकविस ब्रह्मा, रह्या सर्वे राम उचारी।
सद्गुरुना प्रताप बिना भाई, भेद समजवो भारी ॥ संतो०
भोजो भगत कहे गुरु प्रतापे, सुइ रिछे संसारी।
जाग्या सो नर जग में जित्या, एक प्रेम पियु गत प्यारी ॥ संतो०

न क ' दो ' भ ६ प ७३१

मन बुद्धि अहंकार चित्त में, पंच विषय है मेरा ।
ए लालच में तु लपटाया, आप न लह्या अनेरा ।। तामें कौन० २
जन्म जरा दुःख रोग शोक भय, धर्म सकल वपु केरा ।
पेट काज बहु पाप करत है, फिरत कर्म का प्रेरा ।। तामें कौन० ३
देह इन्द्रिय मन प्राण नहीं तु, रूप अनुपम तेरा ।
कहे छोटम निजरूप विचारे, फिरे न भव में फेरा ।। तामें कौन० ४
—वही, पृ० १६०

पद ३४—राग वही

अलख नाम धुन लागी गगन में, मगन भया मन मेरा जी । टेक
आसन मारी सुरत दृढ धारी, दिया अगम घर डेरा जी ।। १
इंगला पिंगला दोनु छांड के, सुक्ष्मणा मध्ये धारा जी ।
तरवेणी मे तार मेलाइ, अजपा नाम उचारा जी ।। २
जंत्र अनाहद बाजे अहोनिश, होत नाद भनकारा जी ।
घन बिन अद्भुत होत गर्जना, वरसे अमृत धारा जी ।। ३
कोटि-कोटि रवि शशि की शोभा, झगमग ज्योति उजाराजी ।
जन छोटम सद्गुरु प्रतापे, दरस्या अलख दीदारा जी ।। ४
—वही, पृ० २६१

पद ४८—कीर्तन राग वही

समरण सोहं का सोंहं का, ज्यां बजे अनहद डंका । टेक
आसन बांधी सुरती सांधी, चतुर दिल चित लाया ।
मुलाधार पृथ्वी रङ्ग पीला, देव गणपति राया ।। समरन० १
अक्षर चार विचारो ईन मे, वंश पस वरणा ।
खट शो जाप अजपा जपके, उनकु अरपण करणा ।। समरन० २
उतपत द्वारा खटदल सारा, श्वेत रङ्ग जल जान्या ।
चतुरानन की ज्योति जगाइ, खटहजार दीया दाना ।। समरन० ३
खटदल में खट अक्षर देखो, बं भं मं का वासा ।
से हं लक लखो लक्ष सें, खेल वन्या है खासा ।। समरन० ४
नाभि सरोजा दस दल खोजा, तेज तत्त्व का तापा ।
लाल रङ्ग में लक्ष्मी नायक, खट हजार जहाँ जापा ।। समरन० ५
ड ढं णं तहाँ अक्षर दरदा, तं थं दं धं वासा ।
नं पं फं कु फिरकर पेख्या, कव्या कर्म का पासा ।। समरन० ६
हृदे विचारा द्वादश आरा, शिव शक्ति का ठारा ।
नील रङ्ग मारुत का मांही, झगमग ज्योति उजारा ।। समरन० ७

खट हजार तहाँ जाप अरपना, कं खं गं घं वरणा।
नं च छं जं जाहां निवासा, भं, भं टं ठं ठरणा॥ समरन० ८
कट्ठे कंजा पोड शरंजा, पत्र कह्या परमाना।
शम रङ्ग आकाश तत्वका, जीव ज्योति का ध्याना॥ समरन० ९
सहस्र जाप तहाँ जपो अजंपा, पोडप वरण विचारा।
अं आं इं ईं चं ऊं ऋं लृं लृं ए ऐ सारा॥ समरन० १०
ओ औ अं अः उनके मांही, ए स्वर खटदश कहावे।
इनका ध्यान धरे नर जेही, सो भव जल मे नावे॥ समरन० ११
भृकुटी चक्र द्वं दल पतरे, वाके निर्मल रंगा।
हं क्षं अक्षर रहे निरन्तर, चिद् शक्ति के संगा॥ समरन० १२
सहस जाप तहाँ करो निवेदन, परम तुरीपद तांही।
बजे अनाहद नाद निरन्तर, अमृत बरसे ज्यांही॥ समरन० १३
ब्रह्मरंध्र का भेद अपारा, दल हजार तांहां दरसे।
सहस्र जाप तहां जपो जुगत सें, परम ज्योत कुं परसे॥ समरन० १४
सब अक्षर अव्यक्त रहे तांहां, अकल अनोपम रंगा।
कोटिक रवि शशी तेज कहावे, परम पुरुष के संगा॥ समरन० १५
उनके आगे लक्ष अलौकिक; सद्गुरु भेद बताया।
छोटम श्री गुरुदेव प्रतापे, अचल अभय पद पाया॥ समरन० १६

—वही, पृ० **१६९**

पद ५९—राग नाफी

श्री कृष्ण वसन्त विहारी, मन मोहन मंगल कारी। टेक
दिव्य स्वरूप अनन्त शक्ति धर, सृजनहार सुखकारी।
निरालम्ब निरलेप निरंजन, चैतन्यमय अविकारी।
अजब गति नाथ तिहारी, श्रीकृष्ण वसन्त विहारी॥ १
इच्छा सें ब्रह्मांड बनाये, गुंजामय तत्व पसारी।
सरजे पाले और सहारे, निरखो काल कछु न्यारी।
ब्रह्म को महिमा भारी, श्री कृष्ण वसन्त विहारी॥ २
स्थावर जगम जात की, रमणिक रचना न्यारी।
रूप रङ्ग आकार अनुपम, निरखो भये नर हारी।
धन्य तु बहु गुनधारी, श्रीकृष्ण वसन्त विहारी॥ ३
ललित खेल लिलारौं कीनो, मुनी मन मोहन कारी।
जन छोटम ऐसें प्रभुजी को, वारवार बलिहारी।
ध्यान ऊपर लीनो धारो, श्रीकृष्ण वसन्त विहारी॥ ४

—वही, पृ० १७५

पद ६१—राग होरी

विभु देव वसन्त विहारी, मन मोहन मंगल कारी। टेक
दिव्य स्वरूप अनन्त शक्ति धर, साजनहार सुखकारी।
निरालम्ब, निर्लेप, निरंजन, चैतन्यमय अविकारी।
अजब गति नाथ तिहारी ॥ विभु देव० १
इच्छा से ब्रह्मांड बनाये, गुनमय तत्त्व पसारी।
सरणे पाले और संहारे, निरखो कला कछु न्यारी।
ब्रह्म को महिमा भारी ॥ विभु देव० २
स्थावर जंगम जातु जात की, रमणिक रचना न्यारी।
रूप रङ्ग आकार अनुपम, निरखी गये नर हारी।
धन्य तुं बहु गुन धारी ॥ विभु देव० ३
ललित खेल लीलासें कीनो, मुनि मन मोहन कारी।
जन छोटम ऐसा प्रभुजी कों, बारम्बार बलिहारी।
ध्यान उर लीनो धारी ॥ विभु देव० ४
—वही, पृ० १७६

पद ६२—राग होरी

खेले कोइ आनन्द होरी, ओंकार तार ग्रही दोरी। टेक
इनमें गंगा इनमें जमुनां, बीच में खेल मचोरी।
देव सकल तिहां देखन आये, स्तवन करत कर जोरी।
दुरमद दानव टोरी ॥ खेले० १
बिन करताल मृदंग बजावत, बिन मुख गावत होरी।
बिन तनु तान मिलावत अद्‌भुत, अटको[1] दृष्टि सब छोरी।
चित चिद्‌रूप भयोरी ॥ खेले० २
विश्वनिवास विशाल विमल गुण, अचल रह्यो एक ठोरी।
ताको ध्यान धरत दृढ मन सें, पातक पुंज गयोरी ॥
पुन्य को उदय भयोरी ॥ खेले० ३
सरजनहार सदोहित सुन्दर, व्यापक देव रह्योरी।
जन छोटम परसद वा पदकुं, तिहां मन मग्न भयोरी ॥
भरम सब दुर गयोरी ॥ खेले० ४
—वही, पृ० १७६

---

[1] रुकी

अर्जुन भगत

खोज

कहाँ मिलेगा स्वामी ? सखीआँ, कहाँ मिलेगा स्वामी ?
काया भई मेरी कामी ! सखीआँ, कहाँ मिलेगा स्वामी ? टेक
देश देशका देवल ढुंढा, दिलमें बनी दिवानी।
अडसठ तीरथ अफफल फेरा, नहि पुरुषोत्तम पामी। सखीआँ०
भारत और महाभारत ढुंढा, ढुंढी अमृत बानी।
चार वेद चौरासी ढुंढो, सब घर मामो मामी॥ सखीआँ०
जप तप त्यागी बनी बेरागी, काया किनी न कामी।
जड़ जंगल में अंग जलाया, नहि वेदना वामी॥ सखीआँ०
तीन लोक और चौद मंडाना, ढुंढा ठाम कठामी।
परनी तकवो पीअर में भटकी घर घर करत गुलामी॥ सखीआँ०
हुँ गुणग्रामी मैं शीश नामी, क्षमा करो मेरी खामी।
जेही पतनी का पियु नहि पासे, उरमें रहत हरामी। सखीआँ०
नहि था जोगी, नहि था भोगी, नहि था नामी अनामी।
मेरा पियुकी खबर बतावे, अरजुन अन्तरजामी॥ सखीआँ०

—अरजुन वाणी, पृ० ५

मेरी क्या मति रे मेरम मेरी क्या गति ? गुरु गोविन्दा
गुरु गोविन्दा ने देश जवा मेरी क्या मति ? टेक
नहि पानी पवना नहि जमी असमाना,
नहि सूर चन्दा नहि दिपक बती गुरु गोविंदा,
गोविन्दा ने देश जवा मेरी क्या मति ?
नहि पंथ पोथ नहि, नहि जोश जोती,
नहि तप तीरथ, नहि जोग जती, गुरु गोविन्दा,
गोविन्दा ने देश जवा मेरी क्या मति ?
ऋषि अठ्यासी नहि सिद्ध चौराशी,
साते मुनीजन मुवा मथीरे मथी, गुरु गोविन्दा,
गोविन्दा ने देश जवा मेरी क्या मति ?
नाम निशानी नहि, अंगनी अेधानी,
आतम आंख विना ढुंढुं अति, गुरु गोविन्दा,
गोविन्दा ने देश जवा मेरी क्या मति ?
नहि पाय पाखो नहि, नहि अंग खाखो,

नहि देश दुनिआं नहि, दिवान पति, गुरु गोविन्दा
गोविन्दा ने देश जवा मेरी क्या मति ?
नहि सुन शब्द नहि, नहि घून ध्यानी,
अरजुन वाणी नहि छानी छती, गुरु गोविन्दा,
गोविन्दा ने देश जवा मेरी क्या मति ?

—वही, पृ० १४

अनुभव

नींद नहि पल घडी, शबद में जिन कुं खबरां पडी । टेक
अविगत में कुछ गत नहि पावे, सृष्टि क्युं सांपडी ।
एक पलक में खलक बनाया, अकलित बातां अडी ॥ शबद में०
वड[1] के बीज में भर्या सबो यड डाल पात पांखडो,
ब्रह्म बीजक में जगत जमाया, बुभेल कोइ बातडो । शबद में०
लम्बो दोरी खेंचत गोरी, धर फरती गरगडो,
लम्बी सुरता शबद में बांधी, धरे शिर पर पाघडो ! शबद में०
आडी[2] नदीआं नीर भरी वहेतो, पंखी ने क्या पडी ?
एक पलक में पार पराजे, नहि बेसे नावडी ! शबद में०
एक शबद तो एसा आवे, बहु सासु वहु वढी,
एक शबद तो एसा आवे, सुनतां सन्मुख खड़ी ! शबद में०
मनभरी माप्यो राम न जान्यो, रावन उठ्यो रडी,
अरजुन गावे वैकुंठ जावे, क्या बातां है बड़ी ! शबद में०

—वही, पृ० १८

अम्मर जोत जलाया रे, अवदु आतमहीरा उडाया ! टेक
अंध अस्मानो अगोचर धरमां, सतगुरु सूर उगाया ।
अवदु आतम हीरा उडाया ॥
आसन तरकुटी अधर अनोपम, तरवेणी तीरमां न्हाया ।
दिल रे मदिरमां दरशन दीठां, नाम रूप नरखाया ।
अवदु आतम हीरा उडाया !
नाभी नगरमांय गुंज गलन है, प्रेमना पाया रोपाया ।
रोम-रोम वह व्यापिक वामें, सुन शिखर पर आया ।
अवदु आतम हीरा उडाया !
ज्ञान दीपक दिवी देह पर मूक्यो, वन-वन शोध चलाया ।
आबूगिरि गढ भीतर जातां, उनमुन अम्मर आया ॥
अवदु आतम हीरा उडाया ।

---

[1] बरगद, [2] टेढ़ी

अनहद वाजा विरोधी रे वागे[1], सुरताए ताल बजाया।
तरत करी नर नाम अनामी, बक नार सें जगाया।
अवदु आतम हीरा उडाया!
आतम अरजुन ज्ञान गुरू का, लेकर अम्मर ओडाया।
भाव बिना भव दुःख न मांगे, प्रेम करी पद गाया।
अवदु आतम हीरा उडाया!
—वही, पृ० २१

कोई बडा बाजीगर आया! नहि जादु नहि झूठ।
जगत मे अजबी इलम लगाया! टेक
नहि नोबत नहि नाद नगारा, नटवी नाच नचाया,
नहि मतर नहि ततर जतर, छतरीश[2] राग सुनाया। कोई०
उन मुन एक तत बनाया, तत मे पच मिलाया,
सेवा साधन बिन आराधन, कोटिक बन रही काया। कोई०
नहि बुंद नहि बीज चीज बिन जमी असमान जमाया,
नहि सूरज चदा कु थमा, अधरोअधर चलाया॥ कोई०
नहि बादल घनघोर गगन मे, अनहद धन बरसाया,
नहि ऋतु तरुवर तिन पूना पेर पेर पाक पकाया। कोई०
क्या से आवे क्या उड जावे, भूल्या जग भरमाय,
पडित काजी करे जक[2] झाभी[3], नहि परपच परखाया। कोई०
एक पलक मे खलक बनाया अलख मे सकल बनाया,
अरजुन उसमे क्या जग जाने, अकलित खेल खेलाया। कोई०
—वही, पृ० २२

मेरे गुरु बताया गली, से वागन चकला मुकी चली। टेक
चली पवन की ल्हेरी सुरता-सागरमायी छली,
पवन गया फिर मिट गई ल्हेरी, महासागर बिच मली। सेवा०
तरुवर मे नहि ततु जतु, क्या[4] से निकली कली?
मनवा माली बहुत मथे, फल जाता आवो फली। सेवा०
सतगुरु मणि बाग बनाया, बोय पारस पीपली,
कल्पतरु कु फल आया, क्या करू आवा[5] आबली[6]? सेवा०
न्हाना धोना लखना पढना, ठालो परपच टली,
एक अगनी ज्या प्रगट भई, जगल की लकडी जली। सेवा०

---

[1] बाजे, [2] छत्तीस, [3] बहुत, [4] कहाँ, [5] आम, [6] इमली,

कीरतारे क्या खेल मचाया, जग ढंग थापी थली,
पथरा मिट्टी पड्या रह्या, ओर ढीली वस्तु ढली। सेवा०
राम नाम नी[1] उठी गर्जना, भइ घन में बिजली,
अरजुन ज्ञानी सिंधु समाणी[2], आकाश की आमली। सेवा०
जीमिआ जंतर बाजत मोरली, नाचत मुरता खड़ी खड़ी,
अखंड धर्मी धन गुरुदेवा, लगी शिखर पर खरी झडी। टेक
कैसा तमासा नरभर नरखो, देखी कमल में जडी दडी,
अधर तखत पर तपीआ जोगी, बैठा गफामां घडी मढ़ी। जीमिआ०
दशमी बारी उघाड़ी उरमें, जोयो तमासो फरी चढ़ी।
ओहंग सोहग सडक उपर, अनहद गाडी गरगडी। जीमिआ०
आदि अनादि अंतर बीच में, वाकी शाखा बडी बडी।
अपार गिनतां पार न पावे, आठ ठाठ में मणि जड़ी। जीमिआ०
देखो देवलमां देह वैराटे, निगु'न बातां जरी जरी,
सो मणकी एक शल्या तोडे, मणि नीपजे बडी बडी! जीमिआ०
शुभ मूरत के शुभ चोघडीआं, नहि आवेगा फरीफरी,
परमेश्वर के पद के पाये लागे, अरजुन लरी लरी! जीमिआ०

—वही, पृ० २५

मैं तो मेरे जाते, मैं तो मेरे जाते।
चलो कोई आते, में तो मेरे जाते॥
मालवे का एक मार्ग, जे आवे ते जाते।
रंक राय भले थाय, उंच नीच नाते॥ चलो०
कोई सभी सांज चले, कोइ मध राते।
दिन रात चलें जात, कोइ परभाते॥ चलो०
कोइ भूख्या भूख्या कोई खांड खाते।
कोइ लिया लुखा सूका, कोइ घृत पाते॥ चलो०
भेदु विना भूला पडे, चलो मेरी साथे।
जंगल मे जाना पडे, चोर लूंही लाते। चलो०
आजकाल जाना पडे, कौन थार थाते।
बडे बड़े भूप गये, महा मदमाते॥ चलो०
बीत गया वायदा ने[3] तेड लिया ताते।
अरजुन तो अब चलें ज्ञानी पद गाते। चलो०—वही, पृ० २६

भेद मालडी लीआ ढालडी, अरजुन अब नहि डरता है।
जूठ बात जग मे नहि बोलु', सतगुरु शिरपर रखता है॥ टेक

[1] को, [2] समान, [3] और

जय राजा को मुवा हुवा जब जीव राजा लइ जाता है ।
मुडदा[1] जाता चलकर मशान जाता जीवता नर जल जाता है ॥ भेद०
रेयत बैठी राज चलावे, राजा वन बन फिरता है ।
सतवादी कु शुली चडावे, चोर कजीआ चूकाता है ॥ भेद०
डबगर बाजे नरघा नाचे, जतर ताल मिलाता है ।
गुनका बैठी गायन सुनती, न्यारा खेल मचाता है ॥ भेद०
बिना तोप से भया भडाका, कीडी[2] कु जर लडता है ।
पखी फद मे पड्यो पारधी, शिकार सिंह कु जमता है ॥ भेद०
पूर बपोरे अघोर रजनी, रानी गोथा खाता है ।
अरजुन बैठा ओर भाभ में, जल मे अगनी जलता है ॥ भेद०

—वही, पृ० ३१

पढ़े नाम सो पक्का पडित, पढ़े नाम सो पक्का । टेक
पुरातन सें पडित काजी पोथी पढ-पढ थक्का ।
उत्पत्ति का मर्म न पाया, क्यांसे आया कक्का ॥ पडित०
बिना भेदका वेद कु भणकर[3] भाभी करता जक्का ।
ध्रुपद की हुशियारी रखता, चित्त में खेंचे चक्का ॥ पडित०
कोई कासीकेदार किलावे, कोइ मसीद कोइ मक्का ।
आंख बिना अहसे पे धाया, खाया धरनी धक्का ॥ पडित०
बिना खबर से क्या तम खोजें ! शब्द सुने सो सच्चा ।
चार वेद ने चौदे विद्या, कोट भणे सोई कच्चा ॥ पडित०
अम्मर जोडा रहेगा तेरा पढी ले नाम का नक्का ।
मेरी मरदाँ पीओ पीआला, अरजुर छकभर छक्का ॥ पडित०

—वही, पृ० ३४

चौराशी चोगान रान मे भेदु बिना नर भमता है ।
अवन गवन मे असख ऐसा, अरजुन जुग वही जाता है ॥ टेक
तरुवर तन अवतार भया, जब जगल बैठा बसता है ।
अघोर निद्रा अग अधारा, देही विचारा दमता है ॥ चौराशी०
पशुजात पेदाश भया जब घर-घर उदर भरता है ।
नहि रामा नहि माया माणे, अफफल[4] फेरा फिरता है ॥ चौरासी०
काम नाग और खग बग पखी, जद्द जगल मे भमता है ।
अपरम पापी पडे चौराशी, जीव जन्तु कु जमता है ॥ चौरासी०
मनुष्य देह मुलदार मिला, जब गुरु बिन गोथा खाता है ।
अमृत जल तेरा मुखमा आया, थुकु कर मुखमा से
चुकता[5] है ॥ चौरासी०

[1] मुर्दा, [2] चींटो, [3] पढ़कर, [4] निष्फल, [5] रखता है

भेदु विना नर भगती करता, क्युं कर पार उतरता है।
मिली नाव ने नहि खेवटीआ, अघर जल में डुबता है ॥ चौरासी०
जन्म मरण मे अखंड आतमा, अरजुन फिर अवतरता है।
सात वार एक सूरज है, फिर शनिश्चर गिनता है ॥ चौरासी०

—वही, पृ० ३६

नगर नाम निशान बंदा, ए ही शबद घर जाना। टेक
नहि ज्यां[१] देवा, नहि ज्यां सेवा, नहि गुरु और ज्ञाना।
नहि पोथी पुराना पढना, नहि काजी कुराना ॥ बदा एही०
नहि ज्यां दरिया[२], नहि ज्यां डुंगर[३], नहि वस्ती वन राना।
दुर देश के नाम नसीका, नहि राणा दिवाना ॥ बदा एही०
नहि ज्यां चंदा, नहि नवखंडा, नहि भूमि सूर माना।
नहि गगना पवन और पानी, नहि मुक्ति मेदाना ॥ बंदा एही०
सरग नरक नहि वैकुंठ वासा, नहि ठाम ठिकाना।
कोध काल कष्टी नहि करनी, नहि भक्ति भगवाना ॥ बदा एही०
आद अन्त नहि उतपत प्रल्ले, नहि जुग जुग जमाना।
निर्गुन शिर्गुन नहि दो देवा, आपोआप पिछाना ॥ बदा एही०
बंदा बेठा बंदगी कर ले, बिन बाचा गुन जाना।
अरजुन सूता सुनम्हेल मे, नहि आना नहि जाना ॥ बंदा एही०

—वही, पृ० ३७

सत गुरु नाम निशान बतावे, अंधा नर चल जाता है।
और मथन मत करना बन्दा, भेदु बिना नर भमता है। टेक
रहेणी रहेता साहेब मिलता, बालक रहेणी रहेता है।
बालक मरता फिर अवतरता, वेद पुराणे कहेता है ॥ सत०
रूप निहाले राम मिले तब मेघ रवि दरशाता है।
कुरान पुरान का कोट मचावे, पलक खड़ा नहि रहेता है। सत०
पंच धूप की धुणी जलाता, तपीआ तापे तमता है।
सूका काष्ट मे जैसा जन्तु, सघली देही जलाता है ॥ सत०
न्हावे धोवे पदवी पावे, मीन गगानीर न्हाता है।
दान पुन मे देव मिले तब, दरिया मोती देता है ॥ सत०
सुरता सुत में म्हेल मचाता, मनवा ध्यान लगाता है।
स्वप्ना में सुखपाल मिले तब, दुनियां क्युं दुःख सहेता है ? सत०

---

[१] जहाँ, [२] समुद्र, [३] पहाड़ी

जात जात का रग मिलाया, जात जात मिल जाता है।
निरात नाम का अरजुन चेला, अग मे अग मिलाता है॥ सत०
—वही, पृ० ३७

दूर से दूर मेरा देश है, परा पार से पारा हो।
गगन घटा अवनी नहिं, नहि नवलख तारा हो॥ दूर से०
बस्ती नहि वरण चारकी, नहि छतरे अढारा हो।
एक वाणी वलगे नहि, भारत भव भारा हो।
सोह शब्द सुरता नहि, नहि मनवा विचारा हो॥ दूर से०
चतुरे बनाया चारनी, कचरा मिट्टी चारा हो।
जैसा जगत जूदा हुआ, रानी मूरख न्यारा हो॥ दूर से०
सूरज चले महा सुन मे, आसे पासे उजारा हो।
रजनी सूरज नहि साँपडे, आदे अते अधारा हो॥ दूर से०
वाल जुवानी जरा नहि, नहि वार ववारा हो।
उतपत अत प्रल्ले नहि, नहि है जुग चारा हो॥ दूर से०
अरजुन वाणी उचरे, बावन घर बहारा हो।
सतगुरु मेरा सुनत, दूजा क्या बुझे व्हेरा हो॥ दूर से०
—वही, पृ० ४६

क्यु नरखेगा राम ? मन तु क्यु नरखेगा राम ? टेक
बिना नामका नगर बसाया, अधर धरा एक धाम॥
नवलख तारा नहि उजीआरा, गगन को बीच मे गाम॥ मन तु०
जामनी क्यु कर दिनकर दरसे ? दिन क्यु दरसे जाम ?
तुरीयातीत में तन नहि पहोचे, तन मन बिना न काम॥ मन तु०
बडा हुआ कोई हकीम, क्यु कर दे आकाशो डाम ?
अनहद केरा अत न आवे, क्या ठरावे ठाम ? मन तु०
परजापत पा बोज उठावे, गर्धव जात गुलाम।
जइ उकरडे[1] उदर भरतो, नीमकलूण हराम॥ मन तु०
नहि है काया नहि है, माया नहि हाउ नहि याम।
नहि रूप ने नहि है रेखा, नहि धोला[2] नहि श्याम॥ मन तु०
मेप राश मे जन्म धर्यो है, अरजुन मेरा राम।
राशी आदे हे अविनाशी, कैसा धरावु नाम॥ मन तु०
—वही, पृ० ४६

बोध

पाउ पलक में मरता, मन तु[1] क्यु मगरूबी करता। टेक
चना के काजे मन ललचा कर, मर्कट मूठी भरता॥
पकड गले मे फांसा डाला, घर घर फेरी फरता॥ मन तु०
महासागर मे मन मस्ताना, बोत ही जलचर चरता।
जमरा माछी जाल चलाता, ओर मगर मुख पडता॥ मन तु०
राजा होकर रैयत ऊपर, वोनो गुमानी धरता।
काया पडी पस्ताचा साकुह, गद्धा थई अवतरता॥ मन तु०
दो दिन का देखाव जगत का, ताबुत जल में तरता।
मात मात का रूप बताता, बहेता जल मे डुबाता॥ मन तु०
मधुर मोज करे मन मावे, फुल गुलाबी पुलता।
सूर आथमें खरी पडेगा, खील्या फुल सब खरता॥ मन तु०
दो पडीआं की बीच में आया, देखो दाना दलता।
बिल्ली आगे उंदर[2] खेले, अरजुन देखी डरता॥ मन तु०

—वही, पृ० ८५

सुरता घरमें सुमरन करना, ध्यान गुरु का धरना। टेक
गुरु बिना नर ज्ञाना कैसा? शबद बिना क्या सुनना?
नाव बिना क्या नदी उतरना, पाउं बिना क्या फिरना? सुरता०
फौज बिना क्या करे फिसारा, बान बिना क्या लडना?
हाम बिना क्या हिंमत चलना? ढाल बिना क्या धरना? सुरता०
रवि बिना क्या उर उजीयारा? तुंबी बिना क्या तरना?
भेदु बिना क्या भरम मिटावे, ठाम बिना क्या ठरना? सुरता०
भेदु बिना बोत भूला भटकता, स्नान[3] पुजा क्या करना?
गुरु-गंगा घर बैठा न्हाना, क्या काशी में फिरना? सुरता०
सुरता तीर तरवार तकाबी, सुन-शिखर गढ चढना,
दिया सदेश नहि-अंदेशा, पुरा गुरु से लडना॥ सुरता०
सर्पबाल के शिकार करते, माया खाय मस्ताना।
गरुड बाल के प्रेम रस पीते, अरजुन नीर अस्माना॥ सुरता०

—वही, पृ० ८७

उडायो रे। मूढ़ने ऐसो फाग उडायो। टेक
बालपना में बोत ही खेल्यो, जुवानी में अभिमान आयो।
वृद्धापना मे ध्रुजवा[4] लाग्यो[5], तोए नहि हरिगुन गायो॥
मुरखे आखो जनम गुमायो! मूढ ने ऐसो फाग उडायो। उडायो रे०

---
[1] तु [2] चूहा [3] स्नान

रात दिवस धधा में मचायो, रगित म्हेल बनायो।
नहि दान दीघा, नहि खान पीघा, कजुस बोत कमायो।
नहि पाइ सग मे आयो। मूढ ने ऐसो फाग उडायो। उडायो रे०
पड मे पतग जीव व्होत फुनायो, दीपक रूप देखायो।
दिल माय जाने दोस्त हमेरा, दोप ने वाथ भीडायो॥
पछी[1] आपे अग जलायो। मूढ न ऐसो फाग उडायो। उडायो रे०
मास बरात को मर्म न पाये, झूटी रमत रमायो।
गुलाल भूलामो मेरा लगामो, आखरे रोली जलायो।
फरी पीछो चोर्याशी आयो।
मूढने ऐसो फाग उडायो। उडायो रे०
शब्द सरोदा को सूर मिलायो, घ्यान म ढोल वजायो।
अरजुन जोगी गुलाल उडावे, सते बसन्त सुनायो।
मुरख पाछु मरन न पायो, मूढ ने ऐसो फाग उडायो। उडायो रे०

—वही, पृ० ६६

सामान्य

मैं पखी बीन पाख के, पर है सतगुरु ज्ञान।
मन पवन के आसरे, अरजुन उडु आसमान॥२६
अनादि अरजुन दोय है, एक कवि किरतार।
सुरत नुरत का फेर है, अते एका कार॥२८
मेरा नाम कु म जपु दूजा नहि है देव।
सुरता अरजुन घोरता, मुरता सतगुरु सेव॥३०
देख अरजुन एक उगीयो, सबके शिर पर सूर।
अघाकु अघ कोप है, पडियासे बहु दूर॥३१
मणि अरजुन देखा नही, करता माणेक मूल।
कबका नामे काटलु, कहे भारत मा भूल॥३२
माय मर्द मस्तान है, रामजनी का वेश।
छेला वन के छेतरे, अरजुन दोनु देश॥३३
काया कसोटि जीभ की, तोनु शब्द धराय।
अरजुन पारख चोकशी, वस्तु अमुल बताय॥३४
दिया दधि मे डूबकी, मोती मिला अमूल।
मन मेरा जाणे सही, क्यू कर भाखु खूल॥३५
दिल मे दरीओ उलटयो, डूब्यो सब ससार।
नाम नाव के आशरे, अरजुन उतरे पार॥३६

[1] वाद में

ज्ञान गाय गुरुदेवकी, अरजुन आंचल चार।
बछरा धावे दूध कुं, क्षणगा शोणित धार ॥३७
वरख वघे धातु घटे, जुग जुग जुदा जाय।
अदल अनादि एक है, अरजुन क्यूं बदलाय ॥३८
संत हमेरा वेठीआ, कबज किया कस्तूर।
आई बास अरजुन कुं, बिना दिठे दुःख दूर ॥३९
गाय खाय[1] छे घास कुं, घृत निपावे गाय।
अरजुन तो जुगते जमे, गाय सो लुखा खाय ॥४०
दिल में रखता दीनता, मुख में रखता राम।
अरजुन जपता नाम कुं, वाका मे हुँ गुलाम ॥४१
——से नेन निघा करे, सहस्र उगे सूर।
अरजुन गज घोडे चडे, देश हमारो दूर ॥४२
रवि कवि दोनुं करे, सुन अरजुन उजास।
देशन देखे देव का, नेना बिना निरास ॥४३
दिन उगे दुग्धा धरे, रेन सुवे संसार।
अरजुन जुग जुग जागता, निरांत होय निरधार ॥४४
अरजुन संत बसत है, गावे राग अनुराग।
नहि जोता होली जले, जग खेले बेफाग ॥४५
अरजुन तरुवर उगीउ, काम करी विश्वास।
मूल काप्या विन नहि मिटे, उग्या को अभ्यास॥४६
घट में अर्जुन घर जले, चौदिश लागी ल्हाय।
किस वस्तु कुं कहा डीए, किसकुं दिए जलाय ॥४७
नास्तिक नर नमता नहि, आस्तिक उडी जाय।
दोनुं रस्ता दूर है, अरजुन क्युं पहोंचाय ॥४८
दीप ढुढे दीप सें, अंधा ढुंढे अंध।
अरजुन जन्म एले[2] गयो, दिल दरवाजो बंध ॥४९
बिन बाचाकी बात है, क्या बुजे बधार।
अंग बिना अरजुन है, क्या नरखे अंधार ॥५०

—वही, पृ० १२२

बोलो बे बिसमिल्ला, पकडो पल्ला -ए- अल्ला। टेक
राम रहेमान का रख ले रोजा, चलो मसीदे मुल्ला।
सत्त नाम का निमाज पढ ले, अंतर बीच रसुलिल्ला ॥ पकडो०

---

[1] खाती है [2] व्यर्थ

गौतम नारी है व्यभिचारी, नाहक होइ अहल्या ।
रामचरन का परस भया है, सेजे तिर गइ शल्या ॥ पकडो०
राम सभा मे साकूट बैठे, कौन कटेगा गल्ला ।
देवदर मे उदर जई बेठा, क्या बल चलता बल्ला ॥ पकडो०
आज काल मे मरन मारगे, चल गये भूपत मल्ला ।
महमूद सरखे गये मशाने, को दाटा को जल्ला ॥ पकडो०
मेरा तेरा मत कर प्यारे, झूठा है सब जल्ला ।
गागर कानी, भरीआं पानी, खाली रोता खल्ला ॥ पकडो०
खुदा की बंदगी कर ले बंदा, मानो बात मुसल्ला ।
अरजुन ज्ञानी नाम पिछानी, आदे अंत अचल्ला ॥ पकडो०

—वही, पृ० १३२

कुंडलीआ

गंगा बन मे व्हेत है, मील गइ साहेर संग ।
गगा म्हातम मीट गयो, भक्ति हो गई भग ॥
भक्ति हो गई भंग, भव सागर मे मलीयो ।
आरे आव्यो आज, पूर में पीछो पडीओ ॥
अरजुन कहेता यार, रह्या सतगुरु के संगा ।
बन में व्हेती गंग, नाम है निर्मल गंगा ॥
ज्ञानी सुन ले ज्ञान कुं, नहि अवनी आकाश,
अखंड एक दीपक जले, त्यांही हमेरा बास ॥
त्यांही हमेरा बास, श्वास का नहीं शरीरा,
जूग जूग का जोग लीया ज्युं दास कबीरा ॥
अरजुन कहेता यार, नरख ले नाम निशानी,
नहि अवनी आकाश, ज्ञान कुं सुन ले ज्ञानी ॥

—वही, पृ० १३६

आज काल जाना मशाना ।
तुं चेत मन, आज काल जाना मशाना ।
स्हाज पडे सबी फुल फरमाना, कायकुं फुलकुं फुलाना ।
तुं चेत मन, आज काल जाना मशाना ॥
आदि ने अनादि घर घोर मे बधाना, कायकुं हवेली चणाना ।
तुं चेत मन, आज काल जाना मशाना ॥

कुंभार क्या घड़्या घाट माटी में मिलाना, लक्ष कोटि दटाना जलाना।
तुं चेत मन, आज काल जाना मशाना ॥
बड़े बड़े भूप गये राजपूत राना, रंक राय वैद्य वृद्ध न्हाना।
तुं चेत मन, आज काल जाना मशाना ॥
सतगुरु के चरणे नमी राम नाम गाना, अरजुन तुं भूल मत खाना।
तुं चेत मन, आज काल जाना मशाना ॥

—वही, पृ० १५८

झूलणा छंद

सार संसार में पार पिछान ले, जान ले जगत क्यां जात समात है।
ज्ञान सूरमान से जान अज्ञान तुं, कौनसा वाट मे उतपति थात है।
दुःख देंदार में ढुंढता चार में, पार अपार का पार क्युं पात है?
सुन बे सुन अरजुन कौतक कहे, ल्हेर में ल्हेर साहेर समजात है ॥

—वही, पृ० १५६

३

आश कर आश दीन दास उपासना, एक अविनाश कैलास में खेलते।
उठीओ सूर दूर देश मे देख ले, पेख ले पूरनूर फिजर में फेल ते ॥
ज्ञानी के गाम में नाम मुकाम में, संत शूरा पुरा रंग में रेलते।
सुन बे सुन अरजुन अंधा हुआ, पाणी ताणी घणी विनो बेल ते ॥

—वही, पृ० १६८

२२

मृग कि मीटी में कुच्छ मिला नहि,
नाभिकमल से कस्तुरी पाया।
गौरी के गोस में दोप विशेष है,
घृत में जगत जीवत जाया ॥
खार विकार अपार दघी मध,
मोतन पर्वत माल पकाया।
अर्जुन वाणी में बीत खचीत है,
निर्गुन सें निज नाप निपाया ॥

—वही, पृ० १८१

लंचिगलता छंद

कथ कहेत कवी किरतार सुनो,
तु ने एक अती अवगुन कियो।
निच पापी की पाप प्रगट भयो सत,
साधु की पास छुपाइ गयो।
कट कजुस कु धन धाम दियो,
दार दातार कु दु खियार कियो।
अरजुन ऐसो अवगुन कियो,
तेरी जिक्र नही ताकु जीभ दियो।।

—वही, पृ० १८५

मनहर छंद

२०

काया मे कीतरि वसे ताकु नही जानी शके,
मुरख समज बिन मुक्तगति मागता।
चद्र मणी चकोरनु चित्त है खचित पण,
कोई वाले हजुर मे हस्त नहि लागता।
प्रेम भरी पतगीयु दीपक मे पडे कदी,
दीपक मिले दिवाना तुर्त तन त्यागता।
कहे अरजुन सुन मुक्तगति मागे कौन।
अहोनिश जगत मे जुगोजुग जागता।।

—वही, पृ० २१७

पद १—भजन

वक नाल रस पिया, योगेश्वर वक नाल रस पिया। टेक
पिया अमीरस अमर भया, त्रिपुटी तकिया किया। योगेश्वर० १
तृषा तन में आप पिवन की, ले लगनी सें लिया,
मन मगन भया चढी खुमारी, त्यारे रोमरोम रम रह्या।। योगेश्वर० २
नाभिकमल मे उलटा पवना, डेरा दिल पर दिया।
खट चक्र भेदिने चढिया, जब घर गगन मे क्रिया।। योगेश्वर० ३
अधर तख्त पर सतगुरु मेरा, तुरत सुरत ने लिया।
नूर निरजन नजरे निरख्या, त्यारे दरस देदार भया।। योगेश्वर० ४

अणी अगर पर आसन करीने, भजन करे भय गया।
दास अरजण संत जीवण चरणे, राम रस भरीने पिया ॥ योगेश्वर० ५

—भजन सार सिन्धु, पृ० १४

मनोहरदास

पद १—राग जंगलो

एक निरंजन सब जग स्वामी सच्चिदानन्द । एक० टेक
जाकी शक्ति प्रताप तें रचत बिरंची लोक।
विष्णु पालत हरत शिव, आप सदा अशोक ॥ एक० १
सूर्य प्रकाशत सकल को, अमृत पोखत अंन।
मेघ वृष्टि बहु करत है, सबको देत अनंत ॥ एक० २
पवन जीवावत प्रान कों, अगिन पचावत अंन।
पान करावत जल अवनि देत, विविध भोजन्न ॥ एक० ३
जाकि अविद्या शक्ति में, देव मनुज पशु जाति।
आवागमन करते सबे, विलसत है बहु भांति ॥ एक० ४
देखत बोलत सुनत सब, समज करत बहु काम।
पावत सब शुभ अशुभ फल, भटकत है बहु धाम ॥ एक० ५
आप सदा निर्लेप है, सबको साक्षी रूप।
सचराचर व्यापक अजर, अमर अनंत अनूप ॥ एक० ६
सो स्वरूप जो समझ ही, भेद रहित अविनाश।
मनहर खेलत मग्न हो, छूटत माया पाश ॥ एक० ७

—मनहर पद, पृ० ७६

पद १०—कवित राग विलावल

ब्रह्म रूप गुरु नर मुख सें कहत पुनी,
कछु न लहत कैसो गुरु ब्रह्म मानिये। टेक० १
आप भिन्न ब्रह्म महे ब्रह्म सो बतावत है,
ऐसो गुरु जीव अनुभव हीन जानिये। ब्रह्म० २
आप तो अभेद लहे, शिष्यन कों भिन्न कहे,
ऐसे दुगाबाज ही को, ज्ञानीन बखानिये ॥ ब्रह्म० ३
ज्ञाता ज्ञेय भिन्न लहे, ज्ञेय रूप ताको नहीं,
प्रगट प्रमान ऐसो, कैसे न प्रमानिये ॥ ब्रह्म० ४

त्रिविध वृत्ति को ज्ञान, विषय में है प्रमान।
तैसे चिद कहे वाको, जुठो पहचानिये ॥ ब्रह्म० ५
त्रिपुटी को ज्ञान पशु, आदि सब जीवन में।
तामे गुरुताई न काहू की मन आनिये ॥ ब्रह्म० ६
सोई गुरु ब्रह्म लहे, ब्रह्म सें अभेद आप।
चिद घन व्यापक लहीये जाकी बानियें ॥ ब्रह्म० ७
भय को मिटावे माया पाशतें छुड़ावत है।
मनोहर ऐसो सद्गुरु शिष्य जानिए ॥ ब्रह्म० ८

—वही, पृ० ८८

पद ११

कोइ कहे ज्ञानी जो सकल व्यवहार जानें,
कोइ कहे सब शास्त्र जाने सोई ज्ञानी है। कोइ० १
कोइ कहे ज्ञानी काल भूत अरु भावी जाने।
कोइ कहे ज्ञानी करामतहू को खानी है ॥ कोइ० २
कोइ कहे ज्ञानी ज्यो सकल जग माने सोइ।
बोलत विविध ऐसे मिथ्यामति ठानी है ॥ कोइ० ३
ब्रह्म को लहे अभेद जैसे बोले चारो वेद।
मनोहर सोइ सत्य ज्ञानी की निशानी है ॥ कोइ० ४

—वही, पृ० ८८

पद १२—राग काफी

कौन देव तोय पालत है नर कौन देव को धावत है। टेक
नाथ विमुख नित्य फिरत दिवाने, कल्पित घाट बनावत है ॥ कौन० १
सकल इन्द्रि को प्रानपति सोइ, वायुरूप श्रुति गावत है।
सकल इन्द्रि के देव वायु सें, उपजत वाही समावत है ॥ कौन० २
सोइ वायु सब जग मे व्यापक, हरि को प्रान कहावत है।
सोइ हरि सब जग को पालक, सबको साक्षी सोहावत है ॥ कौन० ३
बाहर भीतर सब घट व्यापक, सकल वस्तु उपजावत है।
सकल जीव का जीव सोइ प्रभु, सबको ओइ जीवावत है ॥ कौन० ४
ता बिन कोइ देत नहि तोकु, लेन कोइ नहि पावत है।
उदर पिशाच मूढ लही तोकु, जड को लार भ्रमावत है॥ कौन० ५

देवदत्त घन तनकों कैसें, करो पाखंड गमावत है।
मनोहर मनुज जन्म बे कीमत, वेर वेर नहि आवत है॥ कौन० ६

—वही, पृ० ८६

पद २५

कहा फूल वैठे होजी तकिया लगाय। टेक
इह तन सुन्दर थीर न रहन को, छिन छिन छिजत जाय। कहा० १
स्त्री धन पुत्र मित्र यम मुखतें, को नहि सकत बचाय॥ कहा० २
रथी अतिरथी सब द्वारा रहि ठाडे, यातें कछु न बसाय॥ कहा० ३
हरि बीन हरि न सकत भय भव को, सकल देव सुर राय॥ कहा० ४
तन धन को अभिमान विशार हुं, चिद व्यापक उर लाय॥ कहा० ५
सच्चिदानन्द ब्रह्म सम जानत, ताकों काल न खाय॥ कहा० ६

—वही, पृ० २५

पद ४१

हम खेलत नाथ के संग, आपन दूर कछु। टेक
कबहु संयोग में कबहु वियोग मे, कबहु बने एक रंग।
कबहु खीयाल में कबहुक हाल में, मस्त बने बेढंग॥ आप० १
निकट न योग में दूर वियोग में, सम व्यापक है अभंग।
जहां देखे तहां ओइ विराजत, करत न संग न जंग॥ आप० २
रंग बेरंग में भंग अभंग में, व्यापक और असंग।
चौद लोक कूं ओइ खिलावत, सबकूं देत उमंग॥ आप० ३
सात्विक वृत्ति सें संत लहत है, जाकूं प्रीति उछरंग।
अज्ञ पशु कछु जानत नांही, जैसे कोट पतंग॥ आप० ४
ऐसे नाथ सें वाजी करें हम, ज्यों जल और तरंग।
सच्चिदानन्द ब्रह्म में आपा, मेंटी के खोवे अंग॥ आप० ५

पद ५५

एसो नर तोकूं हरीने बनायो, काम वश विमुख फिरत वहो रायो। टेक
साक्षी सकल घट नाथ विराजहीं, ताकूं न ढूंढन धायो।
मूरख रंजन घाट बनाय के, पंथ चलाये फुलायो॥ काम० १
निज स्वरूप प्रीतमा में जगत से, कोइ सुन्यो नहि पायो,
आप क्षुद्र बनि सबकूं बिगाडे, पूर्व तंत्रहु गमायो॥ काम० २

कलियुग रूप आप बनि बैठो, वेदकू चहत डुवायो ।
भोग सदोष चपल जीवन लीये, महा अपराध कमायो ।। काम० ३
गोग कू इज्य नकल खर की लहे, कृष्ण जु श्रीमुख गायो ।
तैसें ही बनि पूनी वेसें ही लोग कू, करि कै चाम पुजायो ।। काम० ४
शंकर शरन बिना कोन बूझही, उपनीपद ज्यो बतायो ।
सच्चिदानन्द ब्रह्म सोइ उलटीके, नाहक देह बहायो ।। काम० ५

—वही, पृ० ११३

पद ५६—राग काफी होरी

बोली पढ पडित बनि आयो, आयोरी,
अमीत अभिमान बढायो । बोली० टेक
काम क्रोध जीतन की विद्या, बूझत काम बढायो ।
धन के कारन करत खुशामत, नर सूकरपें धायो ।
शास्त्र को नाम लजायो ।। बोली पढ० १
नारी को तन यौवन देखत, मरकट ज्यो बोहो रायो ।
नेननि जारे नाचत कूदत, बोध वचन बिसरायो ।
करत उनको मन भायो ।। बोली पढ० २
लोग मिलाय व्यास बनि बेठो, मूछ ही ताव चढायो ।
सबही रिझाय कै धाम धुमसें, पुनि ते सोइ घर आयो ।
नेक नही मन समुझायो । बोली पढ० ३
त्यागी को नाम सुनत मुख मोडत, दोडत जहाँ ललचायो ।
नाथ स्वरूप न आवत उर में, दाम चाम लपटायो ।
जैसो बेग ध्यान लगायो ।। बोली पढ० ४
वेद बचन विचार करी मन मे, सद्‌गुरु शरण न आयो ।
सच्चिदानन्द ब्रह्म बिन जानें, समझ बूझ भटकायो ।
काल के पाश बधायो ।। बोली पढ० ५

—वही, पृ० ११४

पद ५८

जाने बिन नर आप भुलायो, भुलायो ।
फिरत ज्यो बैल बगायो ।। जाने० टेक
जैसे मृगजल देख कोइनर, बिन समुझे ललचायो ।
दोडत दोडत पाउँथके पुनी, बुंद हाथ नहि आयो ।
फेर दिल में पछतायो ।। जाने० १

जैसे तोता स्याल करत ही, लकडी फीरत उलटायो ।
पांउं न छोडत मय के लीने, आप ही आप बंधायो ।
पुरुष ने आन छुडायो ।। जाने० २
तैसे निज स्वरूप सें उलटी, विषय वृत्ति पर धायो ।
चार खाण में भटकत भटकत, अजहु पेट न भरायो ।
पंथ को पार न पायो ।। जाने० ३
तो पुनि सद्‌गुरु शरण न आवत, नहि कछु मन शरमायो ।
सच्चिदानन्द ब्रह्म सें भडकत, ज्यों हेवान हरायो ।
फेर घर अपुने न आयो ।। जाने० ४

—वही, पृ० ११५

पद ११५

बोले श्रुति वहाँ तुमहीं पुकारी, बूझो बूझो इमानी यार रे । बोले० टेक
कर्म सकाम को दाम प्रगट है, नरक लोक का द्वार रे ।। बोले० १
करत मनही सो छीन में पाकीजे, संग बिना करनार रे ।। बोले० २
गुरु के शरन में जाके सगुन सो, पावे हरि एकतार रे ।। बोले० ३
थिर मन वन्य के ध्यान लगावही, पावे विभूति सार रे ।। बोले० ४
सच्चिदानन्द ब्रह्म रूप बनीं पुनि, पावे माया पार रे ।। बोले० ५

—वही, पृ० १५१

काजी अनवर मीयां 'ज्ञानी'

भजन ५

साधु आतम सिद्धि करो

साधु आतम सिद्धि करो, सभी सिद्धि को तम बिसरो ।। टेक
अग्नि खावे अग्नि में न्हावे, अग्नि में करे पथारी रे भाइ,
अग्नि होकर अग्नि में मिल जाय फिर निकले सिद्ध भारी ।। साधु० १
जल मे घुसकर कोरे निकले, जल पर चलने लागे रे भाइ,
जल मे जाकर जल बन जावे फिर जल मे से जागे ।। साधु० २
पवन पैं चाले पवन पर बैठे पवन पर अद्धर सोवे रे भाइ,
पवन में मिलकर पवन हो जावे फिरकर परगट होवे ।। साधु० ३
मिट्टी मे मिलकर मिट्टी हो जावे, मिट्टी बीच समावे रे भाइ,
यहाँ समावे कहीं जा निकले फिर यहाँ पर आवे ।। साधु० ४

आकाश मे जा अलोप हो जावे जड न रहेवे काया रे भाइ,
शस्त्र कोई चले नही उस पर तब वो सिद्ध कहाया ॥ साधु० ५
एक शरीर के अनेक बनावे, ज्या धारे वहाँ जावे रे भाइ,
जो कुछ मोसे वचन निकाले, ओहो तुरत हो जावे ॥ साधु० ६
तब हम उसको सिद्ध विचारे और सिद्ध सब खोटो रे भाइ,
दुनिया भीतर ढोंग चलावे बात बनावे मोटी ॥ साधु० ७
तीन काल की बात बतावे, चौदे लोककी जाने रे भाइ,
अपनी काया अमर राखे, तब सिद्धि परमाने ॥ साधु० ८
रिद्धि सिद्धि छोड के सतो, आतम ज्ञान विचारो रे भाइ,
अपने स्वरूप को आप पिछानो और अपना भव तारो ॥ साधु० ९
जन्म मरण फिर नही है सतो, ज्ञानी कहेते वाणी रे भाइ,
इस पिंजर से जिस दिन छूटे, फिर नही आवे प्राणी ॥ साधु० १०

—अनवर काव्य, पृ० ६

भजन १४

तेरा भेद सभी न्यारा

तेरा भेद सभी न्यारा तेरे बिन नही कोसे यारा। टेक
किसी के तही तु कुछ समजावे किसी को कुछ बतलावे रे भाइ।
किसी के तही कुछ और कहे तु करता अपना धारा ॥ तेरा० १
एक लाख चौबीस हजार पेगंबर थे तुज प्यारे रे भाइ।
कभी जादे तु जाने पण सब सबके रस्ते न्यारे ॥ तेरा० २
सबसें छेल्ले नबी महमद तेरी तरफ से आये रे भाइ।
सब दीनो को मनसुख करके तेरे हुकम सुनाये ॥ तेरा० ३
चौबीस तीर्थंकर जैनी हो गये उनका ओर था खासा रे भाइ।
एकसो आठ अवतार कहा गये उनका जूदा तमाशा। तेरा० ४
ज्ञानी आरफ और वेहवारी शरइ सुफी सालीक रे भाइ।
तरेह तरेह के भेद किये तें तु है सबका मालोक ॥ तेरा० ५
वलीउं को कुछ ओर ही सुझा, आशकों का रग दूजा रे भाइ।
जानो तें सब कोये तमाशे भेद कीने ना बुजा ॥ तेरा० ६

—वही, पृ० १५

भजन १८

गुरु की महिमा कहा न जावे

ज्ञानी गुरु गुण गावे रे गुरु की महिमा कही न जावे जी । टेक
गुरु की महिमा कही न जावे, गुरु गुण महा भारी रे भाइ,
गुरु हमारा मालक मौला, गुरु का मैं भिखारी ॥ ज्ञानी० १
गुरु से और कोई बडा न जानु ज्ञान गुरु मन धारू रे भाइ,
तन मन धन कर गुरू को अर्पण जीव गुरू पर वारू ॥ ज्ञानी० २
गुरू की सेवा करू मैं निशिदिन गुरू के चरण पखालु रे भाई,
गुरू हुकम के आधीन होकर बाट गुरू की चालु ॥ ज्ञानी० ३
गुरू ने जो कुछ ज्ञान बताया मन मे दृढ़ कर राखु रे भाई,
गुरू वचन को निश्चे मानु और न दूजा भाखु ॥ ज्ञानी० ४
गुरु पीर मुरशद को जानु और न दूजा कोइ रे भाइ,
जो गुरु मुजको ज्ञान बतावे, सतगुरु मेरा सोइ ॥ ज्ञानी० ५
गुरू की नात और जात न देखु, गुरू के देखु गुण को रे भाइ,
जो गुरु रब को समजा होवे और समजावे भुज को ॥ ज्ञानी० ६
गुरू के अवगुण कभी न देखु, उसमें मैं क्या जानु रे भाइ,
अपनी बुद्धि ओछी समजु, गुरू कहे सो मानु ॥ ज्ञानी० ७
मडा ज्यु होवे जीतु के वश यु, गुरु वश हो जाउं रे भाइ,
चाहे मारे या जीता छोडे मैं सब मे सुख पावु ॥ ज्ञानी० ८
जो कुछ करे हुक्म गुरू मुज पर, उस पर शीष नमावु रे भाइ ॥
गुरु से कुछ अंतर न रखु गुरु हाथ बेचावु ॥ ज्ञानी० ९
गुरू बिना कभी न पावे नुगरा मूढ बिचारा रे भाइ,
ज्ञानी को जब सतगुरु मिलाया, भेद बताया सारा ॥ ज्ञानी० १०

—वही, पृ० २१

भजन २३

अजब बना एक तारा

साधु अजब बना एक तारा हो जी,
जाका अलख बजावनहारा, मेरे संतो । अजब० टेक
साधु सुरता का तार नुरत की है खुंटी,
यामे सोहं शब्द जणकारा, मेरे संतो । अजब० १
साधु संत का है तुंबा सुखमण की है नालो,
यामें निश्चे मसो को समारा, मेरे संतो० । अजब० २

साधु शील की खाल सतोष की मेखा,
वामे ज्ञान घोडी का सहारा, मेरे सतो० । अजब० ३
साधु भजन का रग भाव की है कलगी,
जामे हरि जनने ज्ञान विचारा, मेरे सतो । अजब० ४
साधु तार मिला के बजावन लागे,
बाजा तु ही तुंही का रण कारा, मेरे सतो । अजब० ५
ज्ञानी इस ही राग मे मगन होइ रहेते,
पीते प्रेम रस मन धारा, मेरे सतो० । अजब० ६

—वही, पृ० २६

भजन २५

हुवा मन मस्ताना

सुरत हमारी छेल छबीली, मनवा हमारा मस्ताना ॥ टेक
सुरत हमारी शिखर चडी ओर,
देख अलख दरबार, हुवा मन मस्ताना ॥ १
नव दरवाजे बंध किये ओर,
दशमा खुल गया द्वार, हुवा मन मस्ताना ॥ २
पाँच इन्द्रि को बस कर लीनी ओर,
गगने चडाया तार, हुवा मन मस्ताना ॥ ३
ज्ञानी आपा बिसर गये ओर,
देख लिया दिदार हुआ मन मस्ताना ॥ ४

—वही, पृ० ३०

भजन ३५

क्युं रहेता गाफिल

समज मन मेरा रे क्यु रहेता गाफिल ?
कोइ तेरे जब काम नही आवे, आव बने मुश्कल । समज० टेक०
जतर मतर दोरा धागा ए है, सब ठग विद्या,
सच्चा मुसलमान होय तो प्यारे ढुंड कलमे को कल ॥ समज० १
माल खजाना काम नही आवे, मालक की दरघा मे,
जमडा तुम को लेने आवे, घडी न जावे टल ॥ समज० २
जो कुछ तुम को करना होवे करले आज घडी में,
इस काया का नही भरोसा, आज पडे के कल ॥ समज० ३

हाथ से नेकी मुख से नेकी, पाउं से नेकी कर जा,
ए सोदा तो मुफ्त है मिलता, जब तक है हलचल ॥ समज० ४
ज्ञानी तुम दुनिया में आके कुछ तो सुरत समालो,
सुरत जो चुका बाजी हारा, निकल गइ वो पल ॥ समज० ५

—वही, पृ० ४४

भजन ३६

मत हो तुं मगरूर

समज मन मेरा रे मत हो तुं मगरूर,
जो मगरूरी आयगी, तुजको होवेगा हक सें दूर। समज० टेक
गरीब आजीझ खाकी पुतला तुं है बहोत झइफ,
ऐसी गरीबी याद करके, रहे तुं रब सें हजुर ॥ समज० १
हरदम हक्की याद में रहेना, कोइ घडी मत भुल,
सांसो सांस तुं नाम समर ले, मो पर बरसे नुर ॥ समज० २
आखर तो मरना है तुज को, गाफील मत रहे यार,
गोर अंधारी भीतर तुजको, जाना होगा जरूर ॥ समज० ३
वहाँ तेरा कोइ सग न साथी ना मुनस गमख्वार,
करनी तेरी साथ आयगी, अनवर येहे दस्तुर ॥ समज० ४

—वही, पृ० ४४

भजन ६६

गुरु ने मुजको ज्ञान बताया है।
गुरु ने मुजको ज्ञान बताया रे मेरे मन अचरज आया जी,
साहेब मेरा मुजमे समाया रे गुरु ने दरश दिखाया जी ॥ टेक
मन दरिया की मोज में रे हीरला लगा मेरे हाथ,
अंतर खोजा मैं आपका, वामें मिलिया मुजे दीनानाथ ॥ गुरु० १
बासण में ज्युं दुध है रे म्यान मे ज्युं तलवार,
खल के मे ज्युं तेरी देह है, ऐसा काया मे कीरतार ॥ गुरु० २
दरिया घडे में समा गया रे, ज्युं बीज में बड का झाड,
सुइ के नाके में ज्युं हस्ति समाया, युं तुण के ओठे पे प्हाड ॥ गुरु० ३
काया हमारा है घोडला रे आत्मा है असवार,
चाहे उधर वाको ले चले, वाका कोइ न पाया पार ॥ गुरु० ४
काया हमारा म्हेल है रे खासा झुरखेदार,
वामें हमारा वास है तख्त तीर्थ तीरखुटी द्वार ॥ गुरु० ५

काया हमारी गोदडी रे, ओढे फिरे दिन रात,
ज्ञानी कहे हम ओर हैं, नही काया हमारी जात ।। गुरु० ६
—वही, पृ० ६२

श्री नृसिंहाचार्य जी

पद १—राग गोडी

सद्गुरु तारनहारा, भज मन सद्गुरु तारनहारा,
जो चहे भव जलपारा, भज मन० ।। टेक
जी ही पद रटत तूने दिन ब्रह्मा, काटत कर्म बिकारा,
शिव शक्ति अरु रोष शारदा, जामे होत सुखारा ।। भज मन० १
देव इन्द्र विष्णु जग पालक, पावत जासु किनारा,
यह सब जीव रसातल जाते, जान ग्रही बालय उगारा ।। भज मन० २
योगी मुनि ऋषि निशदिन ध्यावे, जीन पद याही दिदारा,
रवि शशि आदि ग्रह सब जाकी, सभा मैं निरधारा ।। भज मन० ३
उपनिषद शास्त्र पुरान सवे अरु, वेद हु देत नगारा,
आदि न मध्य अंत नही जाको, अवधि रहित बिस्तारा ।। भज मन० ४
सम सर्वत्र एक रस आपहि, भासत भांति अपारा,
नरसिंह सद्गुरु अनुभवी जाने, आप न अन्य विचारा ।। भज मन० ५
—नृसिंह वाणीविलास, द्वितीय पुस्तक, पृ० १४४

पद १०—राग काफी

अब तो हमही हारे जी, कहो कब तक पोकारे जी । टेक
पूछनहारे बहोत ही देवे, लेने हारे नाही,
जो कछु जोर जुलम से देवे, छोडे वाके वाही ।। अब० १
खरिददार कौडी के नाही, बाता लक्खो केरी,
इस विध उमर गुजर गइ सारी, क्या कहे फेरी फेरी ।। अब० २
नरसिंह शब्दरूप ज्वाहिर को देवे टेरी टेरी ।
बहेरा कहो सुनेंगे कैसे शख बजे वा भेरी ।। अब० ३
—वही, पृ० १४६

पद २३—राग काफी

सद्गुरु शरणे, रहो तजी अभिमान,
अहो गान रे । सद्गुरु शरणे० टेक
सत्सग मे सदा रहे जन, अधिक काल एक ध्यान,
परिपक्व स्थिति होत हे रे, तब उपजत निज ज्ञान रे । सद्० १

स्त्रीपुरुषादि जाति है, हम रहे अंतर यह भान,
ब्राह्मण आदि वर्णका रे, रहत अधिक उर तान रे। सद० २
कुल अभिमान दुऐ निशदिन तुं, निज मन में पहेचान,
तन धन मत मम भाव सें रे, जन सब होत हेरान रे। सद० ३
नृसिंह सद्गुरु चरन समर्पन, करके रहो सुजान,
में मम भाव छोडाइ के रे, तद्वत करत निदान रे।। सद० ४

—वही, पृ० १५६

पद ३०—काफी–होरी

जग में होरी खेलत योगी, सखी री जग में होरी खेलत। टेक
बिन प्रियतम हम जरत रहत है, निशदिन जैसे रोगी,
खेल खेलावनहार न पावत, तब लों कहे क्यों भोगी,
सहत दुःख अजहु वियोगी। जग में० १
पतिवृता पियु सुख जो धारत, सो सुख क्यों लहे ढोंगी,
नृसिंह श्याम ना मिल ही मोकों, विरहाग्नि सें जरोंगी,
विरहिणी बहोरी न होंगी। जग मे० २

—वही, पृ० १५६

पद ४७—राग हींडोल

यह तनु जाने का, जाने का, फेरी दुःखद आने का। यह तनु० टेक
प्रवाह रूप यह स्वभाव सें है, सर्व काल वहेने का।
अनेक यत्न करे जीव तो भी, आखर नहीं रहेने का।। यह० १
योग मार्ग है प्रसिद्ध जग मे, काल कर्म जीतने का।
पुरुषार्थ बिन सिद्ध न होवे, नही खेल खाने का।। यह० २
क्रिया विचार है द्वार योग के, गुरु मुख से ग्रहने का।
इंद्रिय मन का जय करना यह, नही ख्याल गाने का।। यह० ३
भक्ति द्वारा योग करे कोहु, सो भी फल पाने का।
एक इष्ट में निमग्न होना, नहीं रन में धाने का।। यह० ४
निर्विषयी सुख के साधक कों, विषय दुर धरने का।
सकल कार्य में कठिन कार्य यह, नहीं सेहेल करने का।। यह० ५
दुर्जय प्रान साधि युक्ति सों, गगन मंडल लाने का।
काम यही शूरे साधु का, नहीं श्रीमान राने का।। यह० ६
जाना जरूर यह निश्चय सें हरि भज, तन तजने का।
सद्गुरु शास्त्र पुकार करत अब, नहीं ढोल बजने का।। यह० ७

ससार सार हीनता मे सार यह, जन्म सार्थ होने का।
नृसिंह हरि भजी तजि जीने ममता, सोइ नही रोने का ॥
सुख सें सोने का, सोने का० यह०

—वही, पृ० १६६

पद ५०—राग विहाग

वासना सूक्ष्म जिने त्यागी, सोइ संन्यासी।
सन्यासी रे, वासना सूक्ष्म जिने त्यागी, सोइ है सन्यासी ॥ टेक
पुत्र दारेषणा कबहु न आवे, लोकेषणा अंतरतें जावे।
वित्तेषणा मनमारी दमावे रे, तब होवे न्यासी ॥ वासना १
आशारूप शिखा जिने टारी, तृष्णा सूत्र पीयो जिने जारी।
ज्ञान रूप दंड लियो जिने, धारी रे, मुक्ति रहे होइ दासी ॥ वासना २
क्षमारूप कमंडलू सेवे, कटु वचन सबही पीलेवे।
अभयदान सबन को देवे रे, सो नही गृह वासी ॥ वासना ३
भिक्षा ज्ञानामृत की मागे, अहं मम नि.संशय त्यागे।
षड्रिपुसों घात योजन भागे रे, दिक्षा है यह खासी ॥ वासना ४
सत्य स्वरूप सो प्रीती जोरे रे, देहाध्यास सहज मे तोरे,
घर घर सो कबहू ना दौरे रे, पायो पद निराशी ॥ वासना ५
हरिजन, जग को हरि सम जाने, द्वैत भाव उरमें ना आने।
कारन कार्य समान ही माने रे, होइ रहे उदासी ॥ वासना ६
उंच नीच अभिमान मीटावे, नैन बेन चिह्न सब पलटावे।
राग द्वेषादि क्लेष हठावे रे, तोरी यह मोह फासी ॥ वासना ७
धाम सकल भ्रांतिमय माने, नृसिंह भेद सुने ना काने।
विश्वेश्वर आत्मा निज जाने रे, काया यह है कासी ॥ वासना ८

वही, पृ० १७२

पद ५३—राग म्हाड

जीव्हे मत कर अन्य पुकार, वद हे हरि हे हरि। टेक
क्या निशदिन गाती रहे रे, निंध विषयको गीत।
सुवर सुजन तोको कहे रे, धार प्रभु सो प्रीत ॥ वद० १
जामे नाम भगवान को सो, वहे पडित सुमीत।
तातें तुं न्यारी रहे रे, क्यो वर होवे हित ॥ वद० २
विकट विकट जब आयगो रे, मृत्यु काल विकराल।
दुःख रूप यह सब होयगा तब बुरा होगा हाल ॥ वद० ३

विषय अप्रिय होयगो वे, अब दावेगो काल।
अब प्यारो कर क्यों रटे, जीने-मार कोयो कंगाल ॥ वद० ४
नृसिंह हरि शरनो चहीरे, विषय रटे दिन रात।
पादशाह सों मुखं के, हाय हाय पुकारत जात ॥ वद० ५

—वही, पृ० १०४

पद ५४—ठुमरी

आज गयो में सत संगत में सद्बुद्धि ग्रही आयो रे। टेक
काम क्रोध मद लोभ शोक अरु, मन रिपु मोह दिखायो रे।
नृसिंह गुरु ने दान दियो, रिपु-मारक शस्त्र शिखायो रे॥ आज०

—वही, पृ० १७४

पद ५५

विश्वपति अब दर्शन देके, मोकों तारीये रे,
मेरा मन ठारीए रे, विश्वपति अब० टेक
सागर यह संसार दुःख को, एक बिन्दु जामें नहीं सुख को,
अनुभव पायो अब में तातें उगारीए रे। विश्व० १
क्षण में सुखमय, क्षण में दुःखमय, देख्यो में कछु होत न निर्भय
कहाँ लो भय में रहेनो आप विचारीए रे। विश्व० २
मेरो कहो धार्यो सुख जासें, अधिक दुःख देख्यो मे तासे
विषय विष देके गुरु मत मारीए रे॥ विश्व० ३
नृसिंह आप सब सुख के दाता, विघ्न रहित भवसागर गाता,
मोह आदि दोषों कुं उरतें टारीए रे॥ विश्व० ४

—वही, पृ० १७५

पद ५७—राग कल्याण

प्रभु चरन शरन मोए लीजे, मैं पापीकु पावन कीजे॥ टेक
दिन रजनी में स्मरन न कीनो, आप पद प्रति चिन्तन दीनोरे।
नृसिंह क्षमा मोकुं दीजे। मैं पापी कुं पावन० १

—वही, पृ० १७५

पद ५८—राग देश

कौन दीए सुख दान, प्रभु बिन, कौन दीए सुख दान॥ टेक
यह जग जनमी इष्ट कृपा बिन, करत नही सन्मान॥ प्रभु० १
ज्यों पति की प्रीति ही न स्त्री कों, करत सबी हैरान॥ प्रभु० २

सेव्य कृपा से रहित दास ज्यो, सहत सदा अपमान ॥ प्रभु० ३
विषय विषयी होके अति भोगे, अवर सुन्यो ना कान ॥ प्रभु० ४
नाम रूप जग मे हम भाखेत, करत विषय रस पान ॥ प्रभु० ५
सुख रूप जानो हम जो, सो दुख रूप होत निदान ॥ प्रभु० ६
इश सकल सुख के दाता हम, नाही करत पहेचान ॥ प्रभु० ७
नृसिंह प्रभु जब होत कृपालु, तब आवत यह माना ॥ प्रभु० ८

—वही, पृ० १७६

पद ६२—राग खमाच

मान कह्यो मान कह्यो मूढ मा मेरो ।
जान जाय तब नाही, धन तन तेरो ॥ मान० १
बाल युवा बीतो आयो वृद्धपनो नेरो ।
काल मे समज अब डार दीयो डेरो ॥ मान० २
काम क्रोध शोक मोह घाल रसे घेरो ।
नरसिंह जाग न तो फर फिरे फेरो ॥ मान० ३

—वही, पृ० १७७

पद ६३—राग भैरव

दान दीयो दान दीयो दान दीयो रे ।
श्री गुरु ने कृपा करी दान दीयो रे । टेव
सुगम रीतीसें पार अब में पायो,
सेवा साधन मे कछु नाही कीयो रे । श्री० १
नरसिंह गुरु की कृपा स छुनायो,
जीवन् मृतक होइ सुख लीयो रे । श्री० २

—वही, पृ० १७९

पद ६४—राग हींडोल

सोइ नही रोने का, सुख सें सोने का सोने का ।
सोने का सोने का सुख सें सोने का सोने का ॥ टेक
पृथ्वी जल अग्नि वायु का, नभ म लय होने का
चिदाकाश म खलय करी के, सत्य स्वरूप जोने का । सुख सें० १
बहिरग साधन साधी के, अत रग बोने का
देश काल वस्तु तें व्यापक, पद मे चित्त प्रोने का । सुख सें० २

विषय वासना समूल त्यागि के, अध्यासहि खोने का,
निरालंब निश्चल होइ के, नाहीं पुनः छोने का। सुख सं० ३
अनेक जन्म विषे कृत कर्मों, फल सहित धोने का,
नृसिंह सद्गुरु कृपा हीन जल, अनित्य से न्होने का,
दुःख से रोने का रोने का। सुख सं० ४

—वही, पृ० १७८

पद ६७—गभ्रल

जगत जाल में जीव फसे अब, कहो जी कौन छुराता है,
प्रेम पाश में डार पारधी हर घरी आइ झुराता है। जगत० १
सुना हमे सत्संग सकल यह, बंधन सहज तुराता है,
नरसिंह श्रवन मनन युक्ति सें, यह भ्रम कूप पुराता है। जगत० २

—वही, पृ० १७६

पद ६८—राग चोसर

आपके प्रताप, प्रभु घटत है पाप, छुटे तीन यह ताप, अब।
होइए कृपाल रे रे गुरु अब होइए कृपाल।
मन चलत अमाप, मूढ जपत न जाप, वाके शिर मारे थाप,
युक्ति दीजीए दयाल, रे रे गुरु युक्ति दीजीए दयाल।
उग्र कीयोना प्रयोग, स्वस्वरूप को वियोग, वृत्ति होत न निरोग,
तातें चलत कुपाल, रे रे गुरु ताते चलत कुचाल। १।
अति भोगत है भोग, तासें बढत है रोग, कछु बनत न योग,
शिर झुमत है काल, रे रे गुरु शिर झुमत है काल। २।
अंतर पारत है प्रीत, बुजे हित न अहित, गाये विषय के गीत,
अब भये है बेहाल, रे रे गुरु अब भये है बेहाल। ३।
यह मन है अजीत, चित चले विपरीत, कैसे होइए अतीत,
तजी सकल जंजाल, रे रे गुरु तजी सकल जंजाल। ४।
भक्ति आपकी न कीनी, भीति यमकी न गिनी, मौज विषय की लीनी,
तातें हुवे हैं कंगाल, रे रे गुरु तातें हुवे हैं कंगाल। ५।
नरसिंह बुद्धि दीनी, अब गुरुपद चीनी, विषयों मे मारी छीनी,
जासें होइए निहाल, रे रे गुरु जासें होइए निहाल। ६।

—वही, पृ० १८०

पद ७६—राग मल्हार

कौन लीये सभाल, प्रभु बिन, कौन लीये सभाल । टेक
मम शिथिल भये जब तनु के, निकट भयो जब काल । प्रभु० १
स्नेही सबधी दूर तपत है, जब होवत बेहाल । प्रभु० २
स्वार्थी स्वजन मन शोक धरत ना, ढुढन है धन माल । प्रभु० ३
औषध एक हू कार्य करत ना, जब छुटत नस जाल । प्रभु० ४
अस्त्र शस्त्र कछु काम न आवत, बाधी रहे तब ढाल । प्रभु० ५
नृसिंह निशदिन हरिजीने, गायो, सो अत करत प्रतिपाल । प्रभु० ६

—वही, पृ० १८५

पद ८५

सुन अज्ञानी, मेरी मेरी करते गये है हजारो,
कोहु ना मानी, सद्‌गुरु की शिक्षा जानी जग सारो । टेक
यज्ञ याज्ञादिक कछु नहि किये, महादान सुपात्र कु नाहि दीये ।
निश्वास अति दीनन ये लिये ।। सुन० १
धन धूत धूत सब गाड दिया, कोहु ने अति ऊचा महेल कीया ।
ममता तजि जग म कोहु ना जीया ।। सुन० २
कोहु भ्रष्ट भये होके त्यागी, कोहु दुखी रहे बनि के रागी ।
नाहि निरख्यो निज पद को जागी ।। सुन० ३
विषयन मे पचि पचि मदत भये, दिन दिन प्रति ग्रहा दुर्गुन नये ।
ना सुमति ग्रही गुरु शरन गये ।। सुन० ४
जन सकल फसे सुख को चाही, मोह पाश स्वतत्र तज्यो नाही ।
ग्रही दीन कियो मृत्यु ने ताही ।। सुन० ५
ना जान्यो प्रभुपद सुखराशी, ना वृत्त ना तीथ कीयो काशी ।
ना फल पायो मूढ अविनाशी ।। सुन० ६
अधिकारी नर तनु को पाया, यह शुद्ध भुवि में आया ।
धिक धिक नृसिंह प्रभु ना गाया ।। सुन० ७

—वही, पृ० १६०

पद ८६—राग मल्हार-एक देशी

हो गरु शरद ऋतु आइ, दुख सें तारो हो गुरु राय, दुख से तारो,
भयो मैं दास, क्या अजहु मार मारो ।

टारि यह टेरो, हो गुरुराय, टारि यह टेरो।
दिजे शिर हाथ, होय अखंड यश मेरो ॥ टेक
ज्यों नभ में सब अभ्र के, लय होने से आज।
निरावरण प्रियवर दिसे, निर्मल यह निशिराज।
त्यों रज तम को टारि के, करो आवरण भंग।
मल विक्षेप निवारि के, मन शुद्ध कीजे ज्यों गंग।
मिटे भव फेरो, हो गुरु राय, मिटे भव फेरो ॥ दिजे शिर० १

हो गुरु दुःख अतिशय पाया, अंत ना आया।
हो गुरुराय अंत ना आया।
चरन की आश अब ठारो जगराया।
जाइ कहाँ रोवे हो गुरुराय, जाइ कहाँ रोवे।
प्रसारी नेन अब आपहि को जोवे।

शरद समय सरिता सबे, ज्यों निर्मल होइ जात।
त्यो निर्मल प्रभु किजीए, मारि हृदय पें लात।
ज्यों अभेद हुइ प्रभु गोपि सों, दीनों सुख रचि रास।
त्यो अनन्य प्रभु जानि के, कीजे ब्रह्म विलास।
नृसिंह लहि तेरो, हो गुरु राय, नृसिंह लहि ॥ तेरो दिजे शिर० २

बसंत तिलका

त्राता सदा सद्गुरु मम देव देवा,
मैं रंक दास अति दीन ग्रही न सेवा।
कैसे करो बिन कृपा लहुँ भक्ति मेवा,
दाता नृसिंह करुना करि देहु मेवा ॥ १
त्राता बिना त्रिविधा ताप न कोहु टारे,
छोटे वडे सबन कों मनने हि मारे।
जीता न जात अब क्या करके विदारे।
दाता नृसिंह करुना करी क्यों न तारे ॥ २
दासानुदास शिरनामी सदा पुकारे,
मेरे मृदु वचन को उर क्यों न धारे।
कामी महा विकट मोह ग्रहे, गिरारे,
दाता नृसिंह करुना बिन को उगारे ॥ ३
संसार पार करीयो हर कोहु द्वारे,
है क्रोध लोभ भय दायक जो प्रहारे।

आशा अंधेयं विमलो ग्राहि दाबि डारे,
दाता नृसिंह करुना बिना को उगारे ॥ ४

शिखरिणी वृत्त

अहो ब्रह्मानंदी बचन रस मेरे श्रवन में,
करी दीजे धारा अबल अब आयो शरन मे।
नहीं देखा कोहु, प्रिय प्रभु बिना या घरन मे,
दया कीजे मोपें, सकल तज बैठा चरन मे ॥ १

छप्पय

सोइ कहे विद्वान, पीर औरन की तोरे,
सोइ कहे विद्वान, प्रीत सम सबसें जोरे।
सोइ कहे विद्वान, किसी सें चित न चोरे,
सोइ कहे विद्वान, दुखद प्रीति को छोरे।
नृसिंह कहे विद्वान सो, जो ब्रह्म विचार सदा करे,
और जीव सब जगत के, मिथ्याही उपजी मरें ॥ १

(ई) जैन कवियों की कविताओं से संकलन

आनन्दघन

पद १—राग आशावरी

अब चलो सग हमारे, काया चलो संग हमारे।
म्हाये बहोत यत्न करी राखी, काया अब चलो ॥
तोये कारण में जीव संहारे, बोले झूठ अपारे।
चोरी करी परनारी सेवी, झूठ परिग्रह धारे ॥ काया० १
पट आभूषण सुंधा चूआ, अशनपान नित्य न्यारे।
फेर दिने खटरस तोयें सुन्दर, ते सब मिल कर डारे ॥ काया० २
जीव सुणो या रीत अनादि, कहा कहत वारवारे।
मैं न चलुगी तोये संग चेतन, पाप पुन्य दो लारे ॥ काया० ३
जिनवर नाम सार भज आतम, कहा भरम संसारे।
सुगुरु वचन प्रतीत भये तब, आनन्दघन उपगारे ॥ काया० ४

—आनन्दघन पद संग्रह, प्रस्तावना, पृ० १८५

पद २

कन्थ चतुर दिल ज्ञानी हो मेरो, कन्थ चतुर दिल ज्ञानी।
जो हम चहेनी सो तुम कहेनी, प्रीत अधिक पीछानी ॥ कन्थ० १
एक बुन्द को महेल बनायो, तामे ज्योत समानी।
दोय चोर दो चुगल महेल मे, बात कच्छु नहि छानी ॥ कन्थ० २

पाच अरु तिन त्रिया जो मन्दिर में, राज्य करे राजधानी ।
एक त्रिया सब जग बश कीनो, ज्ञान खड्‌ग वश आनी ॥ कन्य० ३
चार पुरुष मदिर में भूखे, कबहु त्रिपत न आनी ।
दश असली एक असला बुजे, बुजे ब्रह्म ज्ञानी ॥ कन्य०-४
चार गति मे बीते कर्म को किणहु न जाणी ।
आनन्दघन इस पदकु बुजे, बुजे भविक जन प्राणी ॥ कन्य० ५

—वही, पृ० १८५

पद ३—राग वेलावल

जीय जाने मेरी सकल घरोरी ।
सुत बनिता धन यौवन मातो, मर्म तणो वेदन विसरी री । जी० १
सुपन को राज साच करी माचत, राचत छाह् गगन बदरी री ॥
आइ अचानक काल तोपची ग्रहेगो ज्यु नाहर बकरीरी ॥ जी० २
अतिहि अचेत कुछ चेतन नाहि, प्रकटी टेक हारिल लकरीरी ।
आनन्दघन होरो जन छाडो, नर मोसे माया बकरोरी ॥ जी० ३

—आनन्दघन पद सग्रह, पृ० ६

पद ४—राग वेलावल

सुहागण जागी अनुभव प्रीत ।
निन्द अज्ञान अनादि की, मिट गई निज रीत ॥ सुहा० १
घट मंदिर दीपक कियो, सहज सुज्योति सरूप ।
आप पराइ आपही, ठानत वस्तु अनुप ॥ सुहा० २
कहा दिखायु और कु, कहा समजाउ भोर ।
तीर अचूक है प्रेम का, लागे सो रहे ठोर ॥ सुहा० ३
नाद विलूद्धो प्राण कु, गिने न तृण मृगलोय ।
आनन्दघन प्रभु प्रेम का, अकथ कहानी कोय ॥ सुहा० ४

—वही, पृ० ७

पद १४—राग सारंग

अनुभव तू है हेतु हमारो ।
आय उपाय करो चतुराई, और की सग निवारो । अनु० १
तृष्णा राड भाड री जाइ, कहा घर करे सवारो ।
शठ ठग कुटु ब ही पोखे, मनमें क्यु न विचारो ॥ अनु० २
कुलटा कुटिल कुबुद्धि सग खेल के, अपनी पत क्यु हारो ।
आनन्दघन समता घर आवे, वाजे जीत नगारो ॥ अनु० ३

—वही, पृ० ३४

पद १५—राग सारंग

मेरे घट ग्यान भानु भयो भोर । मेरे०
चेतन चकवा चेतना चकवी, भागो विरह को सोर । मेरे० १
फैली चिहुँ दिसि चतुरा भाव रुचि, मिट्यो मरम तम जोर ।
आपकी चोरी आपही, ओर कहत न चोर ॥ मेरे० २
अमल कमल विकच भये, मंद विषय शशि कोर ।
आनन्दघन एक वल्लभ लागत, ओर न लाख किरोर ॥ मेरे० ३

—वही, पृ० ३७

पद २०—राग गोडी आशावरी

आज सुहागन नारी आज ।अवधू०
मेरे नाथ आप सुध लीनी, कीनी निज अंगचारी ॥ अवधू० १
प्रेम प्रतीत राग रुचि रंगत, पहिरे ज़िनी सारो ।
महिंदो भक्ति रंग की राची, भाव अंजन सुखकारी ॥ अवधू० २
सहज सुभाव चूरीयां पेनी, थिरता कंगन भारी ।
ध्यान उरवसी उर में राखी, पिय गुन माल आधारो ॥ अवधू० ३
सुरत सिंदूर मांग रंगराती, निरते बेनी समारो ।
उपजी ज्योत उधोट घट त्रिभुवन, आरसी केवल कारी ॥ अवधू० ४
उपजी धुनि अजपा की अनहद, जीत नगारे वारी ।
भाडी सदा आनन्दघन बरखत, बिन मोरे एक तारो ॥ अवधू० ५

—वही, पृ० ५२

पद २१—राग गोडी

निसानी कहां बताबूं रे, तेरी अगम अगोचर रूप ।
रूपी कहुँ तो कछु नही रे, बधे कैसे अरूप ॥
रूपारूपी जो कहुँ प्यारे, ऐसे न सिद्ध अनुप ॥ निसानी० १
शुद्ध सजातन जो कहुं रे, बंध न मोक्ष विचार ।
न घटे संसारी दिसा प्यारे, पुन्य पाप अवतारी ॥ निसानी० २
सिद्ध सनातन जो कहु रे, उपजे विनसे कौन ।
उपजे विनसे जो कहुँ रे, नित्य अबाधित गौन ॥ निसानी० ३
सर्वाङ्गी सब नच धनी रे, माने सब परमान ।
नयवादी पल्लो ग्रही प्यारे, करे लराई टान ॥ निसानी० ४
अनुभव अगोचर वस्तु है रे, जानवी एही रे लाज ।
कहन सुनन को कछु नही प्यारे, आनन्दघन महाराज ॥ निसानी० ५

—वही, पृ० ५६

पद २८—राग आशावरी

आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे ॥
भटके द्वार लोकन के, कूकर आशा धारी।
आतम अनुभव रस के रसिया, उतरे न कबहुँ खुमारी ॥ आशा० १
आशा दासी के जे जाया, ते जन जगके दासा।
आशा दासी करे जे नायक, लायक अनुभव प्यासा ॥ आशा० २
मनसा प्याला प्रेम मसाला, ब्रह्म अग्नि परजाली।
तन भाठी अवटाई पिये कस, जागे अनुभव लाली ॥ आशा० ३
अगम पियाला पीयो मतवाला, चिन्हो अध्यातम वासा।
आनन्दघन चेतन व्है खेले; देखे लोक तमासा ॥ आशा० ४

—वही, पृ० ७१

पद २९—राग आशावरी

अबधू नाम हमारा राखे, सो परम महारस चाखे ॥ अबधू०
नही हम पुरुषा नही हम नारी, वरन न भात हमारी।
जाति न पाति न साधन साधक, नही हम लघु नही भारी ॥ अबधू० १
नही हम ताते नही हम सीरे, नही दीर्घ नही छोटा।
नही हम भाइ नही हम भगिनी, नही हम बाप न बेटा ॥ अबधू० २
नहीं हम मनसा नही हम शब्दा, नही हम तरण की धरणी।
नही हम भेख भेखधर नही, नही हम करता करणी ॥ अबधू० ३
नही हम दरसन नही हम परसन, रस न गन्ध कछु नाही।
आनन्दघन चेतनमय मूरति, सेवक जन बलि जाही ॥ अबधू० ४

—वही, पृ० ८३

पद ३४

देखो आली नटनागर को साग।
और ही और रग खेलति तातें, फीका लागत अग ॥ देखो० १
और ह तो कहा दीजे बहुत कर, जीवित है इह ढंग।
मेरो ओर विच अतर एतो, जेतो रूपे रग ॥ देखो० २
तनु सुध खोय घूमत मन ऐसें, मानु कछु इक खाइ भग।
एते पर आनन्दघन नावत, ओर कहा कोउ दीजें सग ॥ देखो० ३

—वही, पृ० ९९

पद ३६—राग मालसीरी

वारे नहि संग मेरो, यूंही जो बन जाय।
ए दिन हसन खेलन के सजनी, रोते रेन विहाय ॥ वारे० १
नग भूषण से जरी जातरी, मोतन कछु न सुहाय।
इक बुद्ध जिय में ऐसी आवत है, लीजें री विष खाय ॥ वारे० २
ना सोवत है लेत उसास न, मनही में पिछताय।
योगिनी हुँय के निकसूं घर तें, आनन्दवन समजाय ॥ वारे० ३

—वही, पृ० १०४

पद ४१—राग मारू

पिया बीनु शुद्ध बुध भूली हो।
आंख लगाइ दुःख महेल के जरुखे झुली हो ॥ पिया० १
हसती तबहुं बिरानोयां, देखी तनमन छीज्यो हो।
समजी तब एती कही, कोइ नेह न कीज्यो हो ॥ पिया० २
प्रीतम प्राणपति विना प्रिया कैसें जीवे हो।
प्रान पवन विरहा दशा भुयंगम पीवे हो ॥ पिया० ३
शीतल पंखा कुमकुमा, चंदन कहा लावे हो।
अनल न विरहानल पैरे, तन ताप बढावे हो ॥ पिया० ४
फागुन चाचर इकनिशा होरी, सिरगानी हो।
मेरे मन सब दिन, जरे, तन खाख उडानी हो ॥ पिया० ५
समता महेल विराज है, वाणीरस रेजा हो,
बलि जाउ आनन्दघन प्रभु, ऐसे निठुर न व्हेजा हो ॥ पिया० ६

—वही, पृ० १२३

पद ४२—राग सारंग अथवा आशावरी

अब हम अमर भये न मरेंगे।
या कारन मिथ्यात दीयो तज, क्युं कर देह धरेंगे ॥ अब० १
राग दोस जग बंध करत है, इनको नास करेंगे।
मर्यो अनंत कालतें प्रानी, सो हम काल हरेंगे ॥ अब० २
देह विनासी हु अविनासी, अपनी गति पकरेंगे।
नासी जासी हम थिर वासी, चोखे व्है निखरेंगे ॥ अब० ३
मर्यो अनन्तवार बिन समज्यो, अब सुख दुःख विसरेंगे।
आनन्दघन निपट निकट अक्षर दो, नहीं समेर सो मरेंगे ॥ अब० ४

—वही, पृ० १२०

पद ५३—राग सोरठ मुलतानी

॥ नटरागिनी ॥ सहेली ॥

सारा दिल लगा है, बंसी वारे सूं।
वशी वारे सूं प्रान प्यारे सूं॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, पीतांबर पटवारे सूं॥ सारा० १
चंद्र चकोर भये प्रान पपईया, नागर नंद दुलारे सूं।
इन सखी के गुन गंद्रप गावे, आनन्दघन उजीयारे सूं॥ सारा० २

—वही, पृ० १९८

पद ६०—राग सारंग

अब मेरे पति गति देव, निरंजन ॥ अब०
भटकू कहां कहा सिर पटकूं, कहा करुं जन रंजन॥ अब० १
खंजन दृगन दृगन लगावुं, चाहु न चितवन अंजन।
संजन घट अन्तर परमातम, सकल दुरित भय भंजन॥ अब० २
एह कामगवि एह काम घट, एही सुधारस मंजन।
आनन्दघन प्रभु घट वन के हरि, काम मतंगज गंजन॥ अब० ३

--वही, पृ० २५६

पद ६७—राग आशावरी

राम कहो रहेमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी॥ राम० १
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूपरी।
तैसें खंड कल्पना रोपित, आप अखंड स्वरूप री॥ राम० २
निजपद रमे राम सो कहि ये, रहिम करे रहेमान री।
करशे कर्म कान सो कहिये, महादेव निर्वाण री॥ राम०
परसे रूप पा रस सो कहिये, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विधि साधो आप आनन्दघन, चेतन मय निःकर्म री॥ राम० ४

—वही, पृ० २८५

पद ६९—राग अलहियो वेलावल

प्रीत की रीत नही हो, प्रीतम।
मैं तो अपनो सरव शृंगारो, प्यारे की न लई हो। प्रीतम० १
मैं वस पिय के पिय संग और के, या गति किन सीखई।
उपगारि जज जाय मनावो, जो कछु भई सो भई ही॥ प्रीतम० २

विरहानल जाला अतिहि कठींन है, मोसें सही न गइ ।
आनन्दघन यु सघन धारा, तब ही दे पठई हो ।। प्रीतम० ३
—वही, पृ० ३०१

पद ८२—राग सूरती टोडी

प्रभु तो सम अवर न कोइ खलक मे, हरिहर ब्रह्मा विगुते सोतो ।
मदन जीत्यो तें पलक में ।। प्रभु० १
ज्यों जल जग में अगन बुजावत, वडवानल सो पीये पलक में ।
आनन्दघन प्रभु वामा रे नन्दन, तेरी हाम न होत हलक में ।। प्रभु० २
—वही, पृ० ३५४

पद २—राग बिलावर

सुहागण जागी अनुभव प्रीत । टेक
निद अज्ञान अनादि की, मिट गई निज रीत । सुहागण० १
घंट मन्दिर दीपक कीयो, सहज सु ज्योति स्वरूप,
आप पराइ आपही, ठानत वस्तु अनुप ।। सुहागण० २
काहा दिखावुं ओरकुं, कहा समजाइ भीर,
तीर अचूक है प्रेम का, लागे सो रहे ठीर ।। सुहागण० ३
नाम अलुंध्यो प्रान कुं, गिने न तृण मृग लोय,
आनन्दघन प्रभु प्रेम की, अकथ कहानी होय ।। सुहागण० ४
—भजनसार सिंधु, पृ० १५

साखी

आतम अनुभव फूल की, नवली कोउ रीत ।
नाक न पकरे वासना, कान ग्रहे न प्रतीत ।।
—वही, पृ० १५

पद ३—राग सारंग

अनुभव नायकुं क्युं न जगावे । टेक
ममता संग सो पाय अजागल, थन ते दुध दुहावे । अनुभव० १
मेरे कहनें खीन न कीजे, तुंही ऐसी सिखावे ।
बहोत कहेते लाग ऐसी, अवगुन स्वरूप दिखावे ।। अनुभव० २
औरन के संग राते चेतन, चेतन न आप बतावे ।
आनन्दघन की सुमति आनन्दा, सिद्ध स्वरूप कहावे ।। अनुभव० ३
—वही, पृ० १६

पद ४—राग सारंग

अनुभव तु है हेतु हमारो । टेक
आया उपाय करो चतुराइ, ओर को सग निवारो ।। अनुभव० १
तृष्णा राड भाड की जाइ, कहा घर करे सवारो ।
शठ ठग कपट कुटुबही पोखे, उनकी सगती वारो ।। अनुभव० २
कुलटा कुबुधी सग खेल के, अपनी पत्त क्यु हारो ।
आनन्दघन समता घर आवे, वाजे जीत नगारो ।। अनुभव० ३

—वही, पृ० १६

पद ५—भजन राग सारग आसावरी

अब हम अमर भये न मरेंगे । टेक
या कारन मिथ्यात दियो तज, क्यु कर देर धरेंगे ।। अब० १
राग दोष जब बध करत है, इनको नाश करेंगे ।
मर्यो अनन्त कालतें प्रानो, सोहम काल हरेंगे ।। अब० २
देर विनाशी हुँ अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे ।
नासी जासी हम थिर वासी, चोखे वे निखरेंगे ।। अब० ३
मर्यो अनत बार बिन समज्यो, अब सुख दुख बिसरेंगे ।
आनन्दघन निपट निकट अक्षर दो, नही समरे सो मरेंगें ।। अब० ४

—वही, पृ० १६

पद ६—भजन राग आसवरी

अवधू राम राम जग गावे, बिरला अलख लखावे । टेक
मतवाला तो मत मे माता, मठवाला मठ राता ।
जटा जटा घर पटा पटा घर, छता छता घर ताता ।। अवधू० १
आगम पढी आगम घर थाके, माया धारी छाके ।
दुनियादार दुनि से लागे, दासी सब आशा के ।। अवधू० २
बहिरा तम बुठा तम जेता, माया के फद रहेता ।
घट अन्तर परमातम भावे, दुर्लभ प्राणी तेता ।। अवधू० ३
खग पद खगन मीन पद जल मे, जो खोजे सो बौरा ।
चित पकज खोजे सो चिन्हे, रमता आनन्द भौरा ।। अवधू० ४

—वही, पृ० १७

पद ७—राग आसावरी

आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे । टक
भटके द्वार द्वार लोकन के, कूकर आशा धारी ।
आतम अनुभव रसके रसिया, उतरे न कबहु खुमारी ।। आशा० १

आशा दासी के जे जाये, ते जन जग के दासा।
आशा दासी करे जे नायक, लायक अनुभव प्यासा ॥ आशा० २
मनसा प्याला प्रेम मसाला, ब्रह्म अग्नि परजाली।
तन भाठी अवटाइ पियेकस, जागे अनुभव लाली ॥ आशा० ३
आगम पियाला पियो मतवाला, चिन्ही अध्यातम वासा।
आ आनन्दघन चेतन व्हे खेले, देखे लोक तमासा ॥ आशा० ४

—वही, पृ० १७

पद ८—राग आसावरी

अवधू वेराग बेटा जाया, वाने खोज कुटुंब सब खाया। टेक
जाने ममता माया खाई, सुख दुःख दोनुं भाइ।
काम क्रोध दोनों कुं खाये, खाइ तृष्णा बाइ ॥ अवधू० १
दुर्मति दादी मत्सर दादा, मुख देखत ही मूवा।
मगल रूपी बधाइ वांची, ए बेटा जब हुआ ॥ अवधू० २
पुन्य पाप पाडोशी खाए, मान काम दोनुं मामा।
मोह नगर का राजा खाया, पीछे ही प्रेम तें गामा ॥ अवधू० ३
भाव नाम धर्यो बेटा को, महिमा वरन्यो न जाइ।
आनन्दघन प्रभु भाव प्रगट करो, घट घट रह्यो समाइ ॥ अवधू० ४

—वही, पृ० १८

साखी—पद ९

जग आशा जंजीर की, गति उल्टी कुल मोर।
जकर्यो धावत जगत में, रहे छूटो इक ठोर ॥ १

—वही, पृ० १८

पद १०—राग आसावरी

अवधू क्या सोवे तन मठ में, जाग बिलोकन घट में। अवधू० टेक
तन मठ की परतीत न कीजे, ठही परे एक पल में।
हल चल मेट खबर ले घट की, चिन्हे रमता जल में ॥ अवधू० १
मठ मे पंच भूत का वासा, सासा धूत खवीसा।
छिन छिन तोही छलन कुं चाहे, समजे न बौरा सीसा ॥ अवधू० २
शिर पर पंच बसे परमेश्वर, घट में सुच्छमबारी।
आप अभ्यास लखे कोइ बिरला, निरखे ध्रू की तारी ॥ अवधू० ३
आशा मारी आसन धर घट में, अजपा जाप जपावे।
आनन्दघन चेतनमय मुरती, नाथ निरंजन पावे ॥ अवधू० ४

—वही, पृ० १८

पद ११—भजन राग गोडी आशावरी

आज सुहागन नारी औधू, आज सुहागन नारी । टेक
मेरे नाथ आप सुध लीनी, कीनी निज अंग चारी ॥ औधू० १
प्रेम प्रतीत राग रुचि रंगत, पहिरे जिनी सारी ।
मँहिदी भक्त रग की राची, भाव अजन सुखकारी ॥ औधू० २
सहज स्वभाव चूरी में पेनी, थिरता कंकन भारी ।
ध्यान उरवसी उर मे राखी, पिय गुन माल आधारी ॥ औधू० ३
सूरत सिंदूर माग रंग राती, निरते वेंणी समारी ।
उपजी ज्योत उद्योत घट त्रिभुवन, आरसी केवल कारी ॥ औधू० ४
उपजी धुनी अजपा की अनहद, जीत नगारे वारी ।
जडी सदा आनन्दघन बरखत, बीन मोर एक न तारी ॥ औधू० ५

—वही, पृ० १६

पद १२—भजन राग बिलावर

ता जोगे चित ल्याऊ रे वाला, ता जोगे० टेक
समकित दोरी शील लगोटी, घुल घुल गाँठ घुलाऊं ।
तत्त्व गुफा मे दीपक जोउँ, चेतन रतन जगाऊ रे ॥ ता० १
अष्ट करम कर्की धूनी, ध्याना अगन जलाऊ ।
उपशम वणणे भशम बणाउ, मली मली अग लगाऊं रे ॥ ता० २
आप गुरु का चेला होकर, मोह के कान फराऊ ।
धरम शुक्ल दोउ मुद्रा सोहे, करुणा नाद बजाऊं रे ॥ ता० ३
इही विध योग सिंहासन बैंठा, मुक्ति पुरीकुं ध्याशू ।
आनन्दघन देवेन्द्र से जोगी, बहुर न कुलिमे आशू रे ॥ ता० ४

—वही, पृ० १९

पद १३—भजन राग गोडी

निशानी कहा बतावुं रे, तेरो अगम अगोचर रूप । टेक
रूपी कहुं तो कछुं नही रे, बधे कैसे अरूप ।
रूपारूपी जो कहुं पियारा रे, ऐसे न सिद्ध अनूप ॥ निशानो० १
शुद्ध सनातन जो कहुं रे, बधन मोक्ष विचार ।
न घटे संसारी दिशा प्यारे, पुन्य पाप अवतार ॥ निशानो० २
उपजे बिनसे जो वहु प्यारे, नित्य अबाधित गौन ।
सिद्ध सनातन जो कहुं रे, उपजे विनसे कौन ॥ निशानो० ३

सर्वांगी सवनय धनी रे, माने सब परमान ।
नय वादी पल्लो ग्रही प्यारे, करे लराइ ठान ॥ निशानो० ४
अनुभव गोचर वस्तु है रे, जानवो एही रे इलाज ।
करन सुनन का कछु नही प्यारे, आनन्दघन महाराज ॥ निशानो० ५

—वही, पृ० १६

ज्ञानानन्द

१ राग भैरव—तीन ताल

भोर भयो उठ जागो मनुवा,
साहेब नाम सभारो । भोर० ॥ टेक ॥
सुतां सुतां रयन विहानी,
अब तुम नींद निवारो ॥
मंगलकारि अमृत वेला
थिर चित काज सुधारो ॥ १ ॥
खिन मन जोतुं याद करेगो,
सुख निपजेगो सारो ।
वेला बीत्यां है पछतावो,
क्युं कर काज सुधारो ॥ २ ॥
घर व्यापारे दिवस वितायो,
राते नींद गमायो ॥
इन वेला निधि चारित्र आदर,
ज्ञानानंद रमायो ॥ ३ ॥

—गोलेच्छा जैन ग्रंथमाला, पुष्प १, प्राचीन भक्त कवि
निर्मित भजन-संग्रह, धर्मामृत, पृ० ३

२ राग भिंभोटी—ताल दादरा

मेरे तो मुनि वीतराग, चितमांहे जोई ॥ मेरे० ॥ टेक
और देव नाम रूप, दूसरो न कोई ॥ १ ॥
साधन संग खेल खेल, जाति पांत खोई ।
अब तो बात फैल गई, जाने सब कोई ॥ २ ॥
घाति करम भसम छाण, देह में लगाई ।
परम भोग शुद्ध भाव, खायक चित्त लाई ॥ ३ ॥
तंबू तो गगन भाव, भूमि शयन भाई ।
चारित नव निधि सरूप, ज्ञानानद भाई ॥ ४ ॥ —वही, पृ० ४

५ राग विलावल अथवा मल्हार—तीन ताल

साधो भाइ देखो नायक माया । साधो० ॥टेक ॥
पाँच जात का वेस पहिराया, बहुविध नाटक खेल मचाया ॥साधो० १॥
लाख चोर्यासी योनि माहे, नाना रूपें नाच नचाया।
चवदह राज लोक गत कुल मे, विविध भांति कर भाव दिखाया ॥साधो० २॥
अब तक नायक धायो नाहिं, हार गयो कहुँ कुन सें भाया ।
यातें निधि चारित्र सहायें, अनुपम ज्ञानानद पद भाया ॥साधो० ३॥

—वही, पृ० ७

६ सोरठा

प्यारे चित्त विचार ले, तुं कहाँ से आया ।
बेटा बेटी कवन है, किसकी यह माया ॥१॥
आवनो जावनो एकलो, कुण सग रहाया,
पथक होय कर जाल मे, कैसें लपट्यो भाया ॥२॥
नीसर जावो फद से, इग छिन मे भाया ।
जो निधि चारित आदरे, ज्ञानानंद रमाया ॥३॥

—वही, पृ० ८

८ राग आशावरी—तीन ताल

बिन जारा खेप भरी भारी ॥ बिन०॥टेक॥
चार देसावर खेप करी तम, लाभ लह्यो बहु भारी । बिन० १
फिरतां फिरतां भयो तु ं नायक, लाखी नाम संभारी ॥ बिन० ॥
सहस लाख करोडा उपर, नाम फलायो सारी । बिन० ।
बेटा पोतरा बहु घर कीना, जग में संपत सारी ॥ बिन० २॥
खूटी खरची लद गयो डेरो, पड गयो टांडो भारी । बिन० ॥
बिन खरची तें कवन सभारे, टांडे की भइ खवारी ॥ बिन० ३॥
पहेले देखी पग जो राखे, निधि चारित तु ं धारी । बिन० ।
ज्ञानानद पद आदर तो, खरची होती सारी ॥ बिन० ४॥

—वही, पृ० १०

१६ राग बीभास—तीन ताल

मदिर एक बनाया हमने, मन्दिर एक बनाया रे । टेक ॥
जिस मन्दिर के दश दरवाजे, एक बुन्दकी माया रे ।
नानो पंखी जाके अंतर, राज करे चित राजा रे ॥ मंदिर० ॥१

हाड मांस जाके नहिं दीसे, रूप रंग नहिं जाया रे ।
पंख न दीसे कह से पिछानु, पट रस भोगे भाया रे ॥ मंदिर० ॥२
जातो आतो नहिं कोइ देखे, नहिं कोइ रूप बतावे रे ।
सब जग खायो तोपण भूखो, तृप्ति कबहिं न पावेरे ॥ मंदिर० ॥३
जालम पंखी तालम मन्दिर, पाछे कौन बतावे रे ।
वह पखी को जो कोइ जाने, सो ज्ञानानंद निधि पावे रे ॥ मंदिर० ॥४

—वही, पृ० १६

२० राग वसंत—तीन ताल

मैं कैसे रहुँ सखी, पिया गयो परदेशो ॥ मैं० ॥टेक०
नितु वसंत फूली वनराइ, रंग सुरंगीत देशो ॥१॥
दूर देश गये लालची वालम, कागज एको न आयो ।
निर्मोही निस्स्नेही पिया मुझ, कुण नारी लपटायो ॥२॥
वसंत मासनी रात अधारी, कैसे विरह बुझाया ।
इतने निधि चारित्र पुत वल्लभ, ज्ञानानंद घर आया ॥३॥

—वही, पृ० २३

२८ राग गोड सारंग—तीन ताल

ज्ञान की दृष्टि निहालो, वालम, तुम अंतर दृष्टि निहालो ॥ वालम०टेक
बाह्य दृष्टि देखे सो मूढ़ा, कार्य नहि निहालो ।
धरम धरम कर घर घर भटके, नाहि धरम दिखालो ॥ वालम० १
बाहिर दृष्टि योग वियोगे, होत महावत वालो ।
कायर नर जिम मदमत बालो, सुख विभाव निहालो ॥ वालम० २
बाहिर दृष्टि योगे भवि जन, संसृति वास रहानो ।
तिनतें नव निधि चारित्र आदर, ज्ञानानंद प्रमानो ॥ वालम० ३

— वही, पृ० ३१

विनय विजय

३२ राग भूपाल तथा गोडी—तीन ताल

प्यारे काहे कु ललचाय ॥ टेक
या दुनियाँ का देख तमासा, देखत ही सकुचाय ॥ प्यारे० १
मेरी मेरी करत है बाउरे, फीरे जिउ अकुलाय ।
पलक एक मे बहुरि न देखे, जल बुंद की न्याय ॥ प्यारे० २
ज्ञान कुसुम की सेज न पाइ, रहे अघाय अघाय ॥ प्यारे० ३

किया क्षोर चिहुँ ओर जोर से, मृग तृष्णा चित्तलाय।
प्यास बुजावन बुंदन पायो, यों हि जनम गुमाय ॥ प्यारे० ४
सुधा सरोवर है या घर में, जिस तें सब दुख जाय।
विनय कहे गुरुदेव दिखावे, जो लाउ दिल ठाय ॥ प्यारे० ५

—भजन संग्रह धर्मामृत, पृ० ३५

३८

मन न काहु के वश मन कीए सब वश।
मन की सो गति जाने या को मन वश है॥ १
पढो हो बहुत पाठ तप करो जैने[1] पाहार।
मन वश कीए बिनु तप जप बश है॥ २
काहे कुं फिरे है मन काहु न पावेगो चेन।
विपय के उमंग रंग कछु न दुरस है॥ ३
सोऊ ज्ञानी सोऊ ध्यानी, सोउ मेरे जीया प्रानी।
जिने मन वश कियो, वाहि को सुजश है॥ ४
विनय कहे सो धनु याको मनु छिनु छिनु।
सांइ सांइ सांइ सांइ सें विरस है॥ ५

—वही, पृ० ३७

३६ राग आशावरी—तीन ताल

जोगी एसा होय फरूं, परम पुरुष शु[2] प्रीत करूं ओर से प्रीत हरूं ॥१
निर्विषय की मुद्रा वहेरूं, माला फीराउं मेरी मन की।
ग्यान ध्यान की लाठी पकरूं, भभूत चढ़ाउं प्रभु गुन की ॥२
शील संतोप की कंथा पहेरूं, विपय जलावुं धूणी[3]।
पांचुं चोर पेरे करी पकरूं, तो दिल में न होय चोरी हुंणी ॥ ३
खबर लेउं में खिजमत तेरी, शब्द सींगी बजाउं।
घट अंतर निरञ्जन बेठे, वासुं लय लगाउं ॥ ४
मेरे सुगुरु ने उपदेश दिया है, निरमल जोग बतायो।
विनय कहे मैं उनकुं ध्याऊं, जिने शुद्ध मारग दिखायो ॥ ५

—वही, पृ० ३६

४०

परम पुरुष तुंहि अकल अमूरति युंही,
अकल अगोचर भूप, बरन्यो न जात है ॥ परम०॥ १

---

[1] जाकर, [2] से, [3] धुआं।

तिन जगत भूप, परम वल्लभ रूप,
एक अनेक तुंही गिन्यो न गिनात है ॥ परम०॥ २
अंग अनंग नांहि, त्रिभुवन को तुं सांइ,
सब जीवन को सुखदाइ, सुख में सोहात है ॥ परम०॥ ३
सुख अनंत तेरो, ग्रत्यो हु न आवे घेरो,
इन्द्र इन्द्रादिक हेरो, तो हु नहिं पात है ॥ परम०॥ ४
तुही अविनाशी कहायो, लेख में न का नहीं आयो ।
विनय कही जो चायो, ताकुं प्रभु पायो है ॥ परम० ५

—वही, पृ० ४३

यशो विजय

४६ राग सारंग—तीन ताल

जिऊ लाग रह्यो परभाव में । टेक
सहज स्वभाव लखे नहिं अपनो, परियो[1] मोह जंजाल में ॥ जिऊ० १
वंछे मोक्ष करे नहि करनी, डोलत ममता बाउ में ।
चहे अंध ज्युं जलनिधि तरवो, बेठो कांणे नाऊ[2] में ॥ जिऊ० २
अरति पिशाची परवश रहेतो, खिन हुं न समर्यो बाउ में ।
आप बचाय सकत नहि मूरख, घोर विषय के घाउ में ॥ जिऊ० ३
पूर्व पुन्य धन सबहि ग्रसत है, रहत न मूल बढ़ाऊ में ।
तामे तज कैसे बनी आवे, नय व्यवहार के दाउ में ॥ जिऊ० ४
जस कहे अब मेरो मन लीनो, श्री जिनवर के पाउ में ।
याहि कल्यान सिद्धि को कारन, ज्युं वेधक रस साउ में ॥ जि० ५

—भजन संग्रह धर्मामृत, पृ० ५१

४७ राग देवगंधार—तीन ताल

देखो माइ अजब रूप जिनजी को । देखो० टेक
उनके आगे ओर सबन को, रूप लगे मोहि फीको ॥ देखो० १
लोचन करुना अमृत कचोले, मुख सोहे अति नीको ।
कवि जस विजय कहें यों साहिब, नेमजी त्रिभुवन टीको ॥ देखो० २

—वही, पृ० ५२

राग ४८ धन्याश्री—तीन ताल

जब लग आवे नहिं मन ठाम । टेक
तब लग कष्ट क्रिया सवि निष्फल, ज्यों गगने चित्राम ॥ जब० १

---

[1] पड़ा, [2] नौका ।

करनी बिन तु[1] करे रे मोटाइ, ब्रह्मव्रती तुझ[2] नाम।
आखर फल न लहेगो ज्यो जग, व्यापारी विनु दाम ॥ जब० २
मुंड मुंडावत सबहि गडरिया, हरिण रोझ[3] बन धाम।
जटाधार वट भस्म लगावत, रासम सहतु है घाम ॥ जब० ३
एते पर नही योग की रचना, जो नहि मन विश्राम।
चित अंतर पट छलवेकुं, चितवत, कहा जपत मुख राम ॥ जब० ४
वचन काच गोपें दृढ़ न धरे, चित्त तुरंग लगाम।
तामें तुं न लहे शिव साधन, जिउ कण सुने गाम ॥ जब० ५
पढो ज्ञान धरो संजम किरिया, न फिरायो मन ठाम।
चिदानंद घन सुजस विलासी, प्रगटे आतम राम ॥ जब० ६
—वही, पृ० ५३

५२

सज्जन राखत रीति भली, विनु कारण उपकारी उत्तम।
जाइ सहज मिलि, दुर्जन को मन परिनति काली,
जैसी होय गली ॥ सज्जन० १
औरन को देखत गुन जग में, दुर्जन जाये जली।
फल पावे गुन गुन को ज्ञाता, सज्जन हेज हली ॥ सज्जन० २
ऊंच इति पद बैठो दुर्जन, जाइ नाहि बली।
उपगृह ऊपर बेठी मीनो, होत नही उजली ॥ सज्जन० ३
विनय विवेक विचारत सज्जन, भद्रक भाव भली।
दोष लेश जो देखे कब हूं, चाले चतुर टली ॥ सज्जन० ४
अब मैं एसो सज्जन पायो, उनकी रीत भली।
श्रीनय विजय सुगुरु सेवा तें; सुजस रंग रली ॥ सज्जन० ५
—वही, पृ० ५७

५३ छन्द सवैया

आज आनन्द भयो, प्रभु को दर्शन लह्यो।
रोम रोम सीतल भयो, प्रभु चित आयो है ॥ आज०
मनहुं ते धार्यो तो है, चल के आयो मन मोहे।
चरण कमल तेरो मन मे, ठहरायो है ॥ आज० १

[1] तू, [2] तेरा, [3] प्राणी विशेष।

अकल अरूपी तुंही, अकल अमूरति योंही।
निरख निरख तेरो, सुमति शुं[1] मिलायो है ॥ आज० २
सुमति स्वरूप तेरो, रंग भयो एक अनेरो।
वाइ रंग आतम प्रदेशे, सुजस रंगायो है ॥ आज० ३

—वही, पृ० ५८

५६ राग देस–तीन ताल

भजन बिनु जीवित जैसे प्रेत,
मलिन मंद मति डोलत घर घर, उदर भरन के हेत ॥ भजन० १
दुर्मुख वचन बकत नित निंदा, सज्जन सकल दुःख देत।
कबहु पाप को पावत पैसो, गाढे घुरि में देत ॥ भजन० २
गुरु ब्रह्मन अचुत जन सज्जन, जात न कवण निवेत।
सेवा नहीं प्रभु तेरी कबहुँ, भुवन नील को खेत ॥ भजन० ३
कथे नहीं गुन गीत सुजस प्रभु, साधन देव अनेत।
रसना रस विगारो कहां लों, बुडत कुटुंब समेत ॥ भजन० ४

—वही, पृ० ६१

५७ राग कानडो

ए परम ब्रह्म परमेश्वर, परम आनन्द मयि सोहायो।
ए परताप की सुख संपती बरनी न जात मोपें,
ता सुख अलख कहायो ॥ ए० १
ता सुख ग्रहवे कुं मुनि मन खोजत, मन मंजन कर ध्यायो।
मन मंजरी भइ, प्रफुल्लित दसा, भइ तापर भमर लोभायो ॥ ए० २
भमर अनुभव भयो, प्रभु गुण वास लह्यो।
चरन करन तेरो अलख लखायो।
एसी दशा होत जब, परम पुरुष तब, पकरत पास पठायो ॥ ए० ३
तब सुजस भयो; अंतरंग आनंद लह्यो,
रोम रोम सीतल भयो, परमातम पायो।
अकल स्वरूप भूप, कोऊ न परखत कूप, सुजस प्रभु चित आयो ॥ ए० ४

—वही, पृ० ६२

५८

कब घर चेतन आवेंगे मेरे, कब घर चेतन आवेंगे ॥ टेक
सखिरि लेवुं बलैया बार बार ॥ मेरे कब०

---

[1] से।

रेन दीना मानु ध्यान तुसाढा, कबहुँ के दरस देखावेंगे ॥ मेरे कब० १
विरह दीवानी[1] फिरू ढुढती, पीउ पीउ करके पोकारेंगे ।
पिउ जाय मले ममतासे, काल अनत गमावेंगे ॥ मेरे कब० २
करू एक उपाय मे उद्यम, अनुभव मित्र बोलावेंगे ।
आय उपाय करके अनुभव, नाथ मेरा समझावेंगे ॥ मेरे कब० ३
अनुभव मित्र कहे सुन साहेब, अरज एक अब धारेंगे ।
ममता त्याग समता घर अपनी, वेगे जाय अपनावेंगे ॥ मेरे कब० ४
अनुभव चेतन मित्र मले दोउ, सुमति निशान घुरावेंगे ।
बिलसत सुख जस लीला में, अनुभव प्रीति जगावेंगे ॥ मेरे कब० ५

—वही, पृ० ६५

किशनदास

किशन बावनी ग्रन्थ

मंगलाचरन घनाक्षरी

ओ आकार अमर अमार अविकार अज।
अजर जुहे उदार दारन दुरत को ॥
कुजरतें कीट परियत जग जतु ताके।
अतर को यामी बहुनामी स्वामी सत को ॥
चिन्ता को करनहार, चिंता को हरन हार।
पोषन भरनहार, किशन अनत को ॥
अतकर्ते अत दिन राखे की अनत बिन।
तातें तत अत को भरोसे भगवन्त को ॥ १ ॥

श्री गुरु देव विषे[2]

नमो नितमेव सजिसेव तजी[3] अहमेव।
नित नरदेव गुरुदेव सुख करत ॥
क्षितिखड मडन विहडन भरम भूरि।
करम विखडन धरम धुर धरता ॥
करत बिहालतें निहाल तत काल महिं।
परम कृपाल प्रतिपाल पाप हरता ॥
'किशन' अपाय जाय पाय सु पशाय जाके।
कीजें तातें सेवन उपाय पाय नरता ॥ २ ॥

---

[1] मतवाली, [2] के विषय मे, [3] छोड़कर।

पुनर्यथा

मरन हरन तम तरन तरनि सम ।
निहत करन घर घरनि रहत है ॥
सुकृत भरन फिर दुकृत हरन चिर ।
चरन करन अनुशरत सहत है ॥
सुगुरु करन सुख अमृत झरन मुख ।
कनक वरन वर वरन महत है ॥
कुमति परन पर हरन तरन तज ।
'किशन' शरन कज शरन गहत है ॥ ३ ॥

—किशन बावनी, पृ० १ से ३

लीला को लगन मांहि ज्ञान की जगन नांहि ।
जग न रहा हि नर तोहि न रहाय वो ॥
चले जर कौन वट क्यों इहाँ करत हठ ।
नदी तट तरु कौन भांति ठहि रायबो ॥
सुपना जहान तामें, अपना निदान कौन ।
जपना किशन जाप जातें दुःख जायबो ॥
मोह मे मगन शगबग न घरे है पग ।
नग न चलेंगे संग नगन चलामबो ॥ १५ ॥

—वही, पृ० २०

एक उगे सुर करैं भोजन कपुर पुर ।
एक कुं तो पेट पुर भाजी हु न ताजी है ॥
एक नर गज चढै चढत चपल वाजी ।
एक पाजी आगें दौरें दौरिबे में राजी है ॥
एक की किशन लच्छ देखि लच्छमी हु लाजी ।
एक घनहीन मिसकीन दीन भाजी है ।
कही न परत कुदरत[१] ऐसी कार साजी ।
अपने अपने यारो बखत की वाजी है ॥ १६ ॥

—वही, पृ० २१

कोरी कोरी कर कोरी लाखन करोरी जोरी ।
तोउं माने थोरी जाने लीजे जग लूटकें ॥

---

[१] प्रकृति ।

माया में बरुझ्यो पर स्वारथ न सुज्यो।
परमारथ न बुझ्यो भ्रम भारत तें बूटकें॥
जगत को देत दगे आन जमदूत लगे।
किशन जो सगे वेउ ठगे न्यारे फूट कें॥
हंस चश ऐंच लियो अग रग भग भयो।
जैसे बीन बजत गयो है तार टूट कें॥ २२॥

—वही, पृ० २८

नाच कानि राशी मह वागुरिन मासी खासी।
लिये हासी फासी ताके पाश मे न परना॥
पारधी[१] अनग फिरै भौंह न धनुष धरै॥
पैं न नैन बान खरे तातें तोहि डरना॥
कुच है पहार हार नदी रोमराइ तृन।
किशन अमृत एन बैन मुख झरना॥
अहो मेरे मन मृग खोलि देख ज्ञान द्रग।
यह बन छोरि कहूँ और ठौर चरना॥ २६॥

—वही, पृ० ३३

नागिनी सी वैनी कारी वागुरासी पाटी पारी।
माग जु सम्हारी चोर गली, तोहि टरना॥
तन सर जामें जल यौवन सु भख चख।
ग्रीव कबु भुजासु मृनाल मन हरना॥
नाशा शुक दत दार्यो नाभि कूप काट सिंह।
किशन सुकवि जघ रभ खभ बरना॥
अहो मेरे मन मृग खोली देख ज्ञान द्रग।
यह बन छोरि कहूँ और ठौर चरना॥ २७॥

—वही, पृ० ३५

झूठी काया माया के भरोसे भरमाया लाया।
माया हूँ गुमाया पर मूरखता पाया है॥
ज्यो ज्यो समझाया त्यो त्यो जात मुरझाया।
सुरझे न सुरझाया ऐसा आप उर झाया है।
काचा पाया पाया तातें कौन चैन पाया पर।
साचा सोइ साया जो किशन गुन गाया है॥

[१] व्याध।

दगा दिया काया जानि जमकों बुलाया आनि।
काल बाज खाया तब याद प्रभु आया है ॥३२॥

—वही, पृ० ४३

नीके मधु पीकें मत्त मधुप सरोज ही में।
रुकी रह्यो अब ऋकि गयो दिनमनि है ॥
जानी जैहे रात व्है है प्रात दरसे है रबि।
विकशे है कंज तब जात निकसति है ॥
ऐते गजराय आयो पंकज उखारी खायो।
भयो भायो विधि को किशन घन घनि है ॥
तेरों बहुतेरी तू तो चाहत बनाइ माइ।
तेरो न बनाइ बने है सु बनि है ॥३३॥

—वही, पृ० ४४

निशि के परत दिशि दिशि तें परिंद पुंज।
जैसे काहू कुंज मुनि वास लेत लसं है ॥
होत ही सकोर जात जात न्यारे न्यारे अरु।
प्यारेहु किशन याहि रीति रंग रसं है ॥
आये हो कही तें दाना पानी के सबब सब।
जाइगे कहीही योंही प्रेम फंद फसें है ॥
योग रु वियोग की न कीजियें हरख शोग।
पाहुने तें घर बसें काके घर बसें है ॥३८॥

—वही, पृ० ५०

पेटनिन्दा

दियो भोग भारी पैं अघात नांहि पापकारी।
यातें इच्छाचारी पेट चेट की करारी है ॥
यामें चीज डारी तेती काम ही तें टारी ऐसी।
किशन निहारी यह कोठरी अंधारी है ॥
कहा नर नारी सिद्ध साधक धरम धारी।
पेट के भिखारी प्रभू पेटही तें हारी है ॥
पिटवारी धारी न्यारी न्यारी है गुनह गारी।
पेट ही बिगारी सारो पेटही बिगारी है ॥४१॥

—वही, पृ० ५५

नदी नाव को सो जोग तामे मिले लाख लोग।
काको काको कीजें सोग काको काको रोइयें॥
कहे काको मित्त परी काको काकी चिंत यातें।
सीत पति चितव नचात व्हैन सोइये॥
ध्याइयें न विमुख उपाइयें न काहू दुख।
पाइयें न आम जो पें आक बीज बोइयें॥
स्वारथ तजीजें परमारथ किशन कीजें।
जनम पदारथ अकारथ न खोइयें[1] ॥४३॥

—वही, पृ० ५७

नर को जनम बार बार न गमार अरे,
अजहू सम्हार अवतार न बिगोइयें।
लीजेंगो हिसाब तहाँ दीजेंगो जबाब कहा,
कीजे जो संताप तो सताव सुख होइयें॥
पाप करिकें, अग्यानी सुख की कहा कहानी।
घृत की निशानी कित पानी जो बिलोइयें॥
स्वारथ तजीजें परमारथ किशन कीजें।
जनम पदारथ अकारथ न खोइयें॥४४॥

—वही, पृ० ५६

पाप को समाज साज करत न लाज आज।
पुन्य काज परत करत काल परसो॥
जाहि तूं तो जानें मेरो तामें को है प्यारो तेरो।
दिन द्वै बसेरो डेरो कैसी प्रीति परसो॥
एतो कारबार भार लेकें कैसें पावे पार।
किशन उतार डार भार शिर परसों॥
काल तें अभीत माया, जाल मे अतीत गीत।
जानियें सो परम पुनीत नीत परसो॥४५॥

—वही; पृ० ६०

फूट्यो फाट्यो द्वार जाके खुले खट चार द्वार।
पिंजरो असार यार तामें पखी पौन सो॥
आवत पिछानियें न जाहि जात जानियें न।
बोलै तातें मानियें सुडौले रुचि रौन सो॥

---

[1] गंवाना।

करम को प्रेर्यो दानापानी के सबब येयों।
रोनक किशन जानि मूल्यो मान मौन सों ॥
पावे औधि हून तौलों करिहै कहूं न गौन।
करै गौन पौन तो तमासो तामें कौन सो ॥४६॥

—वही, पृ० ६१

बालपने[1] अपने ही ख्याल में खुशाल लाल।
पून्य कीन चाल खात खेलत सुखात है ॥
आइ तरुनाइ पैं न आई करुनाइ जरा।
काय में जरा की काइ, आइसी दिखात है ॥
गात अनखात होत शिथल सकल गात।
किशन जरा की घात वसुधा विख्यात है ॥
अरे अभिमानी प्रानी जानी तैं न ऐसी जानीं।
पानी कैसी नीक लौं जुवानी चली जात है ॥४७॥

—वही, पृ० ६२

भटक्यो विसूर भवपूर पूर पूर मांझ।
अटक्यो[2] जरूर भूरि नरकनि[3] गोद में ॥
भयो उदभव अब लह्यो जु मनुज भव।
धरम धरहु रहु परम प्रमोद मे ॥
थिरहै न कोइ नेक जीवित को लाहो सोर।
किशन बिहाय जोइ बासर विनोद में ॥
जगत नबीनो सब काल को चबीनो तामें।
कछु चाबि लीनो बाको लीनो गहि गोद में ॥४८॥

मीत एक गरुड को घू घू तांहि चाहि जोरी।
कह्यो यम आजही बिलाउ हाथ चातु है ॥
ऐसी याइ गरुड उलूकही उठाय लियो।
दूरि दरियाव की दरी में घात जात है ॥
मन तन रूखो तहाँ बैठो तो बिलाउ मूखो।
भच्छन उलू को कियो तच्छन अघात है।
करता की करनी त बरनी परै किशन।
रजक रु मोत तें न काहु की बसात है ॥४९॥

---

[1] बाल्यावस्था में, [2] रुका, [3] नरक की।

यम जैसे शीश परि ठाढे निशदिन अरि।
सासों बिसे बासा हरि ऐसी कर आंध रे॥
छांड[1] दे हराम खोरी बूझी अब बूझ तोरी[2]।
जगत सें तोरी जगदीश सें तूं सांध रे॥
चलाचल साथ न बिसारियें किशन नाथ।
जैवो है दिखाते हाथ चढे चहूं कांधरे॥
केती जिंदगानी जायें ऐसी तैं अनीनि ठानी।
अजो पानी पहिले गुमानी पारि बांधरे॥५०॥

—वही, पृ० ६३ से ६५

लशुन के लिये न्यारी खात कसतूरी डारी।
अंबर की क्वारी बारी चंदन करे बेकी॥
हरख भरावी भरि कंचन कलश रानी।
सिंच्यो इद सानी पानी गंगाही को देवे की॥
दुई खुश बोइ त्यो त्यो चल्यो बदबोइ[3] होइ।
भूले हून करे कोइ इच्छा वोइ लेवे की॥
सहस उपाय कही किशन उपाय दाम।
प्रान क्यो न जाय पर प्रकृति न जैवे की॥५२॥
बार बार करत पुकार घड़ियार यार।
होऊ हुसियार बिसियार सुख पायगो॥
गइ है बहुत आइ रहि है बहुत आइ।
गाफिल गमाइ है गमार मार खायगो॥
खाक हिये खाक होइ रहि है किशन खाक।
खाक को खमीर अंत खाक में समायँगो॥
आपकों हंसायगो हंसायगो कहां के जाय।
जंगल बसायगो न यमतें बसायगो॥५३॥
शाखी मधुमाखी लौं न चाखी अभिलाखी राखी।
कहां लौं पताल नाखी राखी धन धांन की।
खावे पोख पावे प्रानी देवे जस होत जानी।
जान दे हिवानी जैन खान की न पान की॥
काके संग गई यह कौन की किशन भई।
रहे कर दई कर दई है निदान की॥

[1] छोड़; [2] तेरी, [3] बदबू।

आवत न बार भ्रात लागे छिन मात जात।
माया बदलात जैसें छाया बदलान की ॥ ५४ ॥
खर ज्यों अयान इनसान को न सान वान।
कहा मसतान महा खान मद पान मे ॥
मूढ रूढ ताने आयें आपही बखाने आपै।
गान में न काहू आने जाने ज्ञान ध्यान में ॥
चलो अनमान भलो नाहिन वृथा गुमान।
किशन निदान दिल देहु दया दान में ॥
मान शिख मेरी व्हैगी ऐसी गति तेरी यह।
जैसी मूठी ढेरी हेरी राख की मशान में ॥ ५५ ॥

—वही, पृ० ६७ से ७०

हंस रहै रैन न्यारे कांच सौध पर हारे।
तारे प्रतिबिंब के निहारे जैसें लीजियें ॥
मान मोती गोती सांच चूगे तब तूटी चांच।
लागी आंच शोचे अब काहू न पतीजियें ॥
किशन गये सु थाने मानसरे केलि ठाने।
मुकता बुये ते जाने काहु बुये छीजियें ॥
पिशुन तें दुगो पाइ भले को भरोसों जाइ।
दूध के जरे की नांई, छाछ फूंकि पीजियें ॥ ५८ ॥
लंका को अधीश दश शीश भुज बीश जाके।
दयो वर ईश अवनीश ता सराहिबी ॥
सागर की खाइ कुंभकरण सें भाइ जाकी।
दुसह दुहाइ ठकुराइ अब गाहि बी ॥
ऐसो राज साज गयो भयो जो अकाज एतो।
हाथ प्रभु ही के लाज किशन निबाहि बी ॥
भूठही में भूले नित लता धन मूले फूले।
साहिब को भूले डूले क्यों न एसी साहिबी ॥ ५९ ॥
क्षीन भये अंग पें अनंग के तरंग नये।
नगये दुरित रंग कहा सतसंग है ॥
क्रोध ही में काम अभिमान मान आठो जाम।
माया में मुकाम गहे लोभ के उमग है ॥
निंब की निबोरी दीठी पक्के तब होत मीठी।
किशन तिहारे सो निहारे तेइ ढंग है ॥

सूकी तन देरा देख कैसे भये केश ।
काग रंग हेतु सोइ कागद के रंग है ॥ ६० ॥
ज्ञान की न सूजी सुभ ध्यान की न सूझी ।
खान पान की न सूझी अब एव हम मूझी है ॥
मूझ सो कठोर गुन चोर न हराम खोर ।
तुझसो न और ठौर और दौर तूहि है ॥
अपनी सी कीजे मेरे फैल फैन दिल दीजे ।
किशन निबाहि लीजें जो पे ज्यूहि क्युहि है ।
मेरो मन मानि आनि ठहर्यो ठिकाने अब ।
तेरो गति तूहि जाने मेरी गति तूहि है ॥ ६१ ॥

—ग्रन्थ प्रयोजन, कवि वचन—कवित्त

शिरि संघराज लोकागच्छ शिरताज आज ।
तिनकी कृपा ते कविताइ पाइ पावनी ॥
संवत सतर सतसठे विजै दशमी की ।
ग्रन्थ की समापति भई है मन भावनी ।
साधवी सुज्ञानी माकी जाइ श्री रतन बाई ॥
तजी देह तापर रची है विगतावनी ॥
मत की न मति लीनी तत्त्वरी में रुचि दीनी ।
वाचक किशन कीनी उपदेश बावनी ॥ ६२ ॥

—वही, पृ० ७५ से ७८

राजा और राजाश्रित कवियों की कविताओ से संकलन

महेरामणसिंहजी

लहर १—देव स्तुति

चरन करत अशरन शरन, वदन अरुन शरीर।
चद धरन वारन वदन, हरन शरन जन भीर॥ १॥

—प्रवीणसागर, पृ० १

लहर २

प्रेमनेम निरूपण भेद-उल्लेखालंकार—कवित्त

सुधर सयोगी जन चातुकी पियुप धार।
विरहि बिबेकी रमा धनसार मानी है॥
मुक्ता सिकत जोगी मनमे छिपाय राख्यो।
विना भेद चाहें अहि काल कूट बानी हैं॥
सागर या प्रेम स्वात उरमे अजानहु के।
पकज के कोश मध्य पर्यो बुद पानी हैं॥
देखो यह वारहूँ को जेसो गेह तेसी देह।
जेसी देह तेसो गुन प्रगट निसानी है॥ १३॥

दुहो

प्रेम तत्त्व सत्ता सकल, फैल रहो ससार।
प्रम सभे सोई लहे, परम जोति को पार॥ १४॥

—वही, पृ० १५

लहर ३

श्री राधा कृष्ण गल स्वरूप ।
ब्रज में राधा कृष्णजू, रच्यो सुरस सिंगार ।
सो बरनन अब करत हौं, जाहि जपत संसार ॥ १ ॥
रमन राधिका कृष्ण को, प्रेम सहित संयोग ।
सो उरमें रहियें सदा, जाहि जपत तिहु लोग ॥ २ ॥

—वही, पृ० १६

समस्या भेद—सवैया

एक भई विपरीत गती यह पें, दधि कंज के मध्य समानौ ।
हालभ कौं बिनु अंग चुगे शुक, इ दुपतें छितिपें ठहिरानौ ॥
अंबुज के बिकसे उलटे तिमि, द्वन्द्व तें अबु धुनीसे बहानौ ।
लोचन रक्तकि बानि कपोत रटे, बिन आस्य अहीं से बधानौ ॥ १ ॥

—वही, पृ० २३

अभिसारिका—सवैया

करि मंजन अंजन नील निलोचन, भूपन भूपन भूपित है तन में ।
अंधिकारि निशा अलि संग लिये, ब्रजराजहु पे जु चली बन में ॥
दुति दामिनि सिखी हुलसें, मुख चद प्रकास चकोरन में ।
सुनि नूपर बाल मराल धसें, सु लगी हैं कुलाहल कुंजन मे ॥ १८ ॥

—वही, पृ० १७

लहर ४—उमास्तुति सवैया

सोइ बडो सबतें जग में नर, उग्र अदिष्ट उहि जग पाय ।
वाक्य बिसारद नारद सो शुक, बारद के पति देखि सराह्य ॥
जो सुलतानि जहै मनमें तो, सोई छन में सुलतान कहाय ।
व्हे भ्रत पें जगमातु कृपा जुत, तेरि कटाच्छ हुमायु को छांय ॥ ३४ ॥

—वही, पृ० ४३

लहर ५—प्रेमनां[१] नाम—छप्पय

स्नेह राग अनुराग, रक्त अरक्त आसक्त ।
प्रीत लगन मन मिलन, प्रनय लय साच कहत हित ॥
चित बंधन इक चित्त, निरंतर ध्यान बिनांतर ।
सुखद अरु संतोष, प्रगट दोय चाह परस्पर ॥

[१] प्रेम के ।

मेलाप मेल मन मात पुनि, उभै एक अरफत लहिट ॥
संधान अनुसंधान इह, प्रेम नाम जानहु प्रगट ॥ १ ॥

—वही, पृ० ४७

लहर ११

कन्यानां[1] लक्षण—छंद शंखनारी

तनं हेम रंगं, रुची केश भ्रंगं, प्रभा एन नेनं।
मुखं चंद्र नेनं, तिलं फूल नासा, सरोजं सु वासा ॥
शुकं नीय दंतं, रसा रक्त कांतं, छबी सुक्त जैसे।
शुभं श्रौन ऐसे, पिकं भाष बानी, दरं ग्रीव जानी ॥
शुभा ओठ बिंबा, हुतं पक्कन अंबा, उरं छीन आभं।
गती गूढ नाम, कटी तुच्छ बारी, नितंब प्रसारी ॥
बर रंभ जंघं, सु पिंडी निषंग, पदं पान रक्तम।
सु रेखा सु वृतं, तन छीनं न मंसं, गति ईभ हंसं ॥
तुछं नीद्र हांसी, सु शीलं प्रकासी, सुकुम्मार ताई।
मनो कंज छाई यहे लच्छ कन्या, लिखे सु प्रगन्या ॥१६॥

—वही, पृ० ६६

लहर १६—काम बिहार

श्वेत बिचित्र तन बसन, सकल नंग सिंगार।
केसर चंदन कुमकुमा, करत बसंत बिहार ॥२७॥
छप्पय—जुवती नर कर जूथ, खुसीमहि फाग सु खेल ही।
केसर जल पिचकार, लिये अन्तर कर तेलहिं ॥
गोद अबीर गुलाल, नडर ईतरेतर नांखहि।
बोलत राग बसंत, भजें मुख गारि सु भाखहि ॥
बाजें मृदंग डफ बीन बहु, राजे सब लज्जा रहित।
बिलसे विलास निसदिन विविध, रस सागर सु बसंत रित ॥२८॥

लहर २५—नायिका भेद

दुहो—पद्मिनी, चित्रिनी, शंखनी और हस्तिनी बाल।
मुख्य भेद यह तियन के, बरनन बुद्धि विशाल ॥

पद्मिनी

छप्पय—चंद्रानन तन कनक, नैंन मृग कोकिल भाषन।
कटि केहरि[2] गल कंबु, कंज कर पद शुक नासन ॥

---

[1] कन्या के, [2] केसरी।

रंभोरु कच उरग, अधर सुरख रद हालमं।
गति मराल कुच पीन, छीन निद्रा स्मित भुक कम॥
सहज हि सुबास सुमती मृदुल, अति उदार पूजा सकति।
पूरन सु प्रेम ब्रीडा सु शुचि, प्रथम एह पद्मिनी प्रवृति॥१०॥

चित्रिणी

छप्पय—चपल दृष्टि चित अचल, कंज नैनी रुचि केसर।
श्याम केश गज गमन, भ्रंग भ्रुअ भाष मयुर बर॥
काव्य शिल्प संगीत, चित्र रीझै सु रीझावे।
प्रेम नेम परबीन, चित्त चातुरी उपावे॥
नैन ह्रस्व दीर्घ प्रथुलन क्रशा, कोप तुच्छ अंबर अमल।
तुच्छ सु प्रमाद सुकुमार शुभ, यह चित्रिनि लच्छन सकल॥११॥

शंखिनी

छप्पय—बाहु दीर्घ क्रश शीश पाय कुच दीर्घ तपत कर।
तन दीरघ तनु रोस, वक्र चाले वसुधा पर॥
स्थूल घ्रान भ्रू अधर, ह्रस्व अंगुलि नंभ्रत गल।
रति अतृप्त त्रप हीन, भुक्त बहु क्रूर प्रकृति कल॥
गज मद सुगंध कटि मुख प्रथुल, विह्वल मदन बिलास महि।
कपटी[1] कुशील पीसुन सदा, केश पिंग शंखिनी सु कहि॥१२॥

हस्तिनी

छप्पय—स्थूल अंग बहु छुधा,[2] लोभ तिच्छन पिंगल चख।
गधक गध कुशील, कुटिल बानी भाषत मुख॥
रोषवान स्वर रुक्ष, काम केली अगप्त नित।
बदत त्रपा बिन त्रपा, दुष्ट दुमनी सदा रहत॥
अरु नित्त कुरंग कुच शिथिल अति, प्रीत रीत जाने नहीं।
अंकुश अजाद माने न कछु, हस्तिनी-हस्तिनी सम कही॥१३॥

—वही, पृ० २३४ से २३६

लहर २६—हृदय भाव

कवित्त—मानहूँ तें जोत भारी, मारी काम हूँ तें कारी।
कारीगरहूतें न्यारी, प्यारी हैं चतुर नर॥
वेद तें अभेद बानी, बानी में न आवे ध्यानी।
ध्यानी मे पुरानो जानो, नाहि न अमर पर॥

---

[1] धूर्त, [2] क्षुधा।

फैल रही अंग अंग अंगहू न जाने रंग।
रंग की तरंग जसें गग हर छोर भर॥
पीव पानीहुँ न पावे, पावे सो स्वरूप गावे।
गावें गुन सागर हमेश चाह उर भर॥७॥

—वही, पृ० २७८

लहर ३३—वियोगावस्था

सवैया—नैनन सें असुवा उमहे सो मलीन भई बरषा की तरंगन।
बारहू मास रहे ऋतु ग्रीषम, ग्रायत सास परोसनि अगन॥
जेहर सो रसनां दोह री भई, पल्लव की मुंदरी भई भई कंगन।
सागर छेद भये छतीयां सर, तोउ भरें मन मध्य नियं गन॥

—वही, पृ० ३१७

लहर ३६—वियोग कथन

सवैया—सागर सागर जू रसनां दुसरी, मुख मौन लही सुलही।
कांनन आन न बांन सुनि, वरुनीसे धुनी जो वही सो बही॥
गौन कियो तुम ता छिनसें दिन ही दिन व्याध नही सु नहीं।
या कुल कांन रहो न रहो परि, एकहि टेक ग्रही सुग्रही॥

—वही, पृ० ३४५

लहर ३८—द्रष्टांतालंकार

सीत हरी दिन एक निशाचर, लंक लई दिन ऐसो हि आयो।
एक दिनां दमयंती तजी नल, एक दिनां फिर ही सुख पायो॥
एक दिनां बन पांडव के अरु, एक दिनां छिति[१] छत्र धरायो।
सोच प्रवीन कछू न करो, किरतार यहे बिधि खेल बनायो॥१५॥

सवैया

नैंन उसास हियो भर आवत, बासर ऐसें किते भरियें।
ले फिरियाद कहो फिरियें अरु, लाय लगे सो किते लरियें॥
जाय किधों गिरियें गिरि तुगन, खाय किधो बिषको मरियें।
मित्त कछू उपचार बताइयें, अंत प्रवीन कहा करियें॥१७॥

—वही, पृ० ३६७

---

[१] क्षिति।

लहर ३९

ऋतु वर्णन

कवित्त : वसंत वर्णन

बकुल बसंत बेल, वारब बदाम..वट,
बोलत बिहंग वृन्द, बगन बगन बन ।
माधवी मधूक मल्ली, मंजर महोर मंडि,
मधु मकरंद मोद, मगन मगन मन ॥
प्रमदा परस पांनी, परस प्रकाश प्रेम,
पलटें परम पंथी, पगन पगन पन ।
दंपती दिशो ही दिश, दोरत न दुरें देह,
दिन छिनदा न दोऊ, द्रगन द्रगन दन ॥ ७ ॥

कवित्त : ग्रीष्म वर्णन

बन बन बिलखि, विषधर विहंग बड़,
बासर विषय बाय, बगर बगर बर ।
डंगर डिगम्बर से, डारत डमर डार,
डोलत हैं डंठ वारे, डगर डगर डर ॥
न लीका निदाध नीर, नलिन नविन बन,
निलय निवासी नीठ, नगर नगर नर ।
समर समर सूर, सायक सरासन ले,
सघत सघत साधें, सगर सगर सर ॥८॥

कवित्त : वर्षा वर्णन

फूलन चढे हैं फंद, फरकें न फूल फल ।
फहेलत पौन फूल, फहरत फहर फरि ॥
गावत मयूर गन, गाढी गाढी गहे गति ।
गगन की गाज गोप, गहर गहर गरि ॥
सागर सरीत सर, सुभर सलील सब ।
सुरखी तवित श्याम, सहर सहर सरि ॥
थरर थरर कुंद, थलन थलौंन थित ।
थकि थकि पंथी पर; थहर थहर थरि ॥९॥

कवित्त : शरद वर्णन

शरद की चादनी सी, प्रगटी सुरत जोत।
बोलत बचन तुत, रात एही है हिमत ॥
शिशिर को गाज तोतो, रोम को भयो समाज।
प्रेम को प्रकाश जैसी, फूलि है प्रभा बरात ॥
विरह प्रताप हियें, ग्रीषम तपत ताप।
नैनन के आंसू नीर, प्रपा के प्रवा[1] बहत ॥
षट रितु अग अग, आज ही बनी है मेरे।
कौन रितु आवा की, सागर तुम बदत ॥१०॥

—वही, पृ० ३७२ से ३७४

लहर ४२

वर्षा विरह

सवैया

मोरन सोर न मोर बने फणि, पन्न यहैं न चढी सेहे रे।
है चपला न बसा रसना फुत, मार न मारुत की फेहेरे ॥
या चिनगे न खद्योतन के गन, बुद न आनन की जेहेरे।
है न प्रपा अहि मडल सागर, लाये बिजो गिनि को लेहेरे ॥३॥

—वही, पृ० १६५

सागर के बिन राग उचारत, लागत मांन वियोगन नारी।
घोर घटा चढि आई अटा, विरहीन पटा भ छटा सु कटारी ॥
पौंन घसैं पुरवा घुरवा धर, दादुरवा सुखा भयकारी।
श्रावन में घन जीवन रे पति, सग सुरा मरि पीवनहारी ॥१८॥

—वही, पृ० ४०१

लहर ५१

नायिका भेद

उत्कठित नायिका

बीन नवीन म्रदग बजे दित, मित समाजरू मे सुख पाये।
कीधो करी बिजया बिसरी हम, आसव कीधों असाध विवाये।

---

[1] प्रवाह।

कीधों मिली कोउ मोहनी कामिनि, अंक लता गलता उर आये ।
कौन विचार करेवो अबे, अहो सागर मित अज्यों नहि आये ॥४॥
—वही, पृ० ४८१

अभिसारिका

सवैया—नवसात[1] किये नवसात लिये, नवसात पिये नवसात पिवाई ।
नवसात रची नवसात बिषे, नवसात मने प्रति सागर आई ॥
नवसात कला नवसातन की, नवसातन में अचला मुख छाई ।
नवसात रह्यो नवसातन में, नवसात छुरी नवसात बताई ॥६॥
—वही, पृ० ४८३

ईसर बारोट

दोहा

लागाहुँ पेहलो[2] लळें पीतांबर गुरु पाय ।
भेद महारस भागवत, पायो जेण पसाय ॥ १
जाडय टले[3] मन मल गले, निर्मल थाए देह ।
भाग्य होय तो भागवत, सांमलीयें श्रवणेह ॥ २
भक्त वत्सल मोदे भगती, भांजपरा सहभ्रम ।
मुज[4] तणां क्रम मेटवा, कयुं तुम्हारा क्रम ॥ ३
पीठ धरणिधर पाटली, हरि होय[5] लेखणहार ।
तोय तारां[6] चरितां तणो,[7] परम न लभे पार ॥४
तोरां हुँ पुरां तवी, शका केम समराथ ।
चत्रभुज सह थारां चरित निगमत जाणे नाथ ॥ ५
कथा केम[8] ईसर कहे, खांण सकल प्रत खेत ।
वाणी श्रवणे मन बसे, नित्य अगोचर नेत ॥ ६
देव कशी उपमा दोया, तें सरज्यां सह सोय ।
तुज सरीखो तुहिज तुं, कहां न दुजो कोय ॥ ७
नारयण तुं संभरे, उण कारण हरि आज ।
जा दिन जा जुग छडियें, ता दिन तो शुं काज ॥ ८
आम वछटा माणतां, है घर भीलण हार ।
धरणी धर छांडिया, आसँ हुं आधार ॥ ९

---

[1] (९+७)=सोलह, [2] पहले, [3] दूर होता है, [4] मेरे, [5] लिखने वाला, [6] तेरे, [7] के, [8] क्यों ।

नारायण न विसारीये, नित प्रत लीजे नाम ।
जो लाभे मनुष्या जनम, कीजे उत्तम काम ।।१०
नाम सुतीरथ नाम वृत्त, नाम सलंभो काम ।
एको अक्षर तत्वफल, जीहा जपो श्रीराम ।।११
राम जपंतो रे रुदा, आलस न कर अजाण ।
जो तू गुण जाणे नहीं, पुछि वेद पुराण ।।१२
क्षुधा न भाजे पाणीयें,[1] अशा[2] न छीपे अन्न ।
मुक्ति नही हरिनाम विण,[3] मानव साचे मन्न ।।१३
ज्यां जागे त्यां राम जप, सोता राम सभार ।
आतम बेठत उठतां, चालता चीतार ।।१४
जाले ही नारायणा, जे नर नाम लहंत ।
ते जमराणा परहरे, केशव चरण रहंत ।।१५

—हरिरस ग्रन्थ, पृ० १ से ५

छंद

करो कृपा तो शेवा कीजे ।
लेव रावो तो नामज लीजे ।।
पाखे रजा कोइ चरण न पामे ।
भक्त वत्सल पडियो[4] जग भामे ।।२२
घण दीरो बछटो घण नामी ।
साथ तमाणो त्रिभुवन स्वामी ।।
ममतो राख्य हवे जग भावन ।
प्रेम भक्ति दे त्रिभुवन पावन ।।२३
कृष्ण राख्य हवे[5] हुँ तु करतो ।
धरणी धर मन मम ममता धरतो ।।
तुज विषे मति दे ध्रु तारण ।
कूप संसार काढ्य श्रव कारण ।।२४

दोहो

वण अपराध वटमता, रे रे त्रिभुवन राय ।
कर कुडा शास्त्रो क्रपन, कर क्रम कूडां काय ।।१८
एह पटंतर दाख्य इम, भक्ता वत्सल भ्रम ।
कीपां अमके तम कीयां, धुर हरि पाप धरम ।।१६

---

[1] पानी से, [2] तृषा, [3] बिना, [4] पड़ा, [5] अब ।

तारी इच्छा दाध ते, जीहां आदि जनम।
त्यां क्यां हुता अमतणा, केशव कशा करम ॥२०
आदि तुजथी[1] उपना, जग जीवन सह जीव।
उंचा नीचा अवतरण, दे क्युं वंश देव ॥२१
आपो में हुंता अभंत, आपो तें अवतार।
पाप धरम की पीडवा, लायो जीवां लार ॥२२
अखिल तुंहिज के कोइ अवर, बहुनामी बुझव।
लखमी वर लेखे नहि, समवड प्राणी सब ॥२३
आदि तणो[2] जोतां अरथ, भाजे भूज भरम।
पहेलां जीवा परठीया, कीया च पहेला क्रम ॥२४
अक्रम क्रम उपाय कर, जे जागवीया जीव।
जगपति कोइ जाणो नहि, गत थारी[3] एय ग्रीव ॥२५
खाण चोया रे खोयण धर, जाया जण दन जन्त।
कीधा कीण पाखे कुशन, उत्तम मध्यम अन्त।२६
कोधा[4] कोण पहोंचें कुशण वडा समो सहवाद।
आद न को तोरा अनत, आतम क्रमना आध ॥२७

—वही, पृ० १५ से १८

मोतीदाम छंद

ब्रह्माय रुद्र विचार श्रह्मं,
न जाणेय तो राय पार निगम।
प्रमेस्वर तो राय पार पलोय,
पुराण पुराण न जाणेय कोय॥ १

छंद

अघक्षर अक्षर तुंज अवेव,
दिनंकर चन्द्र न जाणेय देव।
श्रणे गुण तूज न जाणेय तंत,
अहिस सबद न जाणेय अंत॥ २
वडा ग्रह तुज लहेन विचार।
पुरंदर तुज न पामेय पार॥
भला मुनी तुज न जाणेय भेद।
विरंचिए तुज न जाणीए वेद॥ ३

---

[1] तुम से, [2] का, [3] तेरी, [4] कौन।

सरी गुण देव नमो समराय,
निरगुन नाम नमो तुंय नाथ ॥ ९६
नमो हरि लीलाय उत्तम नाम,
सोहं अवतार नमो सिय राम।
प्रसभ मनो तुंय आदि विभूत,
किं जाणेय तूज तणी करतूत ॥ ९७
बुझे कोण नाथ तुहा राय बग,
शक्ति न शीव मुरति न लंग।
करताय कालाय वालाय क्रीत,
चत्रभुज रुद्रुच मानोय चित ॥ ९८
वियं पेय ईशर जोडिय पाण,
कृपा करि मूज करोय कल्याण।
दिठो मैंय तुंज तणोय दिदार,
ससा रोय बाहर माय संसार ॥ ९९
पदारथ ला घोय तूज परब्ब,
सुवौ जीम ताणाय वाणाय सब्ब।
पुरायण नाथ वचाणाय पत्र,
जगपत्त तुं हीज तुंज जगत ॥ १००
जगत्तिय जातिय भातिय जाण,
प्रसन्न हुवो तुज ठीठोय पाण।
दिठो सह आत्म आपुय दाख,
भुवनं हुवो सब ठामज माख ॥ १०१

—वही, पृ० ५९ से ६१

वजमाल महेडु

षट्ऋतु वर्णन

वर्षा वर्णन

दोहा

सावन भादू कहत हैं, बरखा के दो मास।
दपन अत आनंद में, वीभो करत विलास ॥ ९८

छप्पय

विभो करत विलास वास रंग महल उतंगह।
करत सहल घर हरित सरित जल पूर गिरंगह ॥

गुनिमन गात मलार धार प्याला भर पावत।
चमक बीज घन बुंद गगन गहरं गरजत अत॥
तन कसूम पोसांग सज, मूखन जटितस नंग में।
बिभेस जांम पच्छम धनी, उलसत वृखा उमंग मे॥ ९९॥

—विभाविलास, पृ० ५१०

शरद ऋतु वर्णन

दोहा

पावस रत[1] सोहांमणी[2], बरनी सूछम लाय।
महाराजा बीभेस की, बरनो शरद बनाय॥ १००॥

छंद अर्द्ध नाराच

सरद्दे रत्त सोहनी, महासमस्त मोहनी।
प्रफुल्ल ताल पंकजं, लपट्ट भृग केलजं॥ १०१
विलोल ताल सोहियं, मनेक जंतु मोहियं।
सरात हंस सारसं मिलंत मोति मानसं॥१०२॥
उजास वास ओपियं, अभ्रास के अनोपियं।
न मेल एल नद्दियं, हुलीस हद्द हद्दियं॥१०३॥
ग्रहे ग्रहे अनोपियं, अती अलूस ओपिय।
नजूक रूप नारिय, सिंगार के सवारिय॥१०४॥
सपूज जात शक्कती, गहत हंस की गति।
रती समान रूप मे, अती अतीस ओप में॥१०५॥
कितेक छह आ वहे, ठवेस वाजु ठावहे।
अखत एक एक को, करी सकेत टेक को॥१०६॥
सिंगार सार सारन, जरीस पोस धारन।
लसेस नग लाल का, मनोस दीप मालिका॥१०७॥
जगी चिराक जोतिय, अरवक के उधोतिय।
शशि प्रभा शरद की अकास नीस अद्ध की॥१०८॥
विछात के छिछातियं, सुवच्छ भांत भाति य।
उरद्ध के अगासियं, विलोल खास बासिय॥१०९॥
कही तहा कचारियं, विसद्द पोस वारिय।
खडोस खाम नायका, गुनी विधान गायका॥११०॥

---

[1] रात [2] सुहावनी

मृगद्व मध्य वेस में, गहन्त नूरन जो गमें।
अलाप के अराधहीं, सपत्त सूर साधहीं ॥१११॥
पियंत मद्द मोद में, रसिक गत्त सें रमे।
विभेस जाम भ्राजियं, सहे तखत्त साजियं ॥११२॥
महंत चंद्र चंद्र की, इला मुलोक इन्द्र की।
अनंत सुख लेवहीं, सदा सकत्त सेव हीं ॥११३॥
रची सरद्द रत्त की, भली विलास मत्त की।
गुणीस क्रीत गाय है, पसाव लाख पाय है ॥११४॥

—वही, पृ० ५१४

हेमंत ऋतु वर्णन

दोहा

मिगशिर[1] पोप हिमंत में, जित तित सीत ह गांम।
दंपत सुख चाहत अधिक, जदुपत वीभो जाम ॥१२७॥

छप्पय

जदुपत वीभो जांम धांम सुन्दर पर पावन,
मजन अंबु हमाम तप्त भोजन भुगतावन ॥
मृगमद पूंग तंबोल तेल तरुनीं मन भावन।
सुजनी सदल दुसाल सदल परजंक बिछावन ॥
रस कवित्त सुनत कंद्रप कथा सुरापान मद मंत मे।
वीभेस जांम पच्छम धनी[2] हुलस मोज हीमत में ॥१२८॥

—वही, पृ० ५१६

शिशिर ऋतु वर्णन

दोहा

मह अरु फागन मास में, नर नारी हरखाय ॥
आगम जांन बसन्त के, सो रत शिशिर कहाय ॥१३६॥

छप्पय

सो रत शिशिर कहाय उस्न आमंख मद आचन।
रस पारद पक ताम्र कांय गुटिका अन पाचन ॥
रंग राग त्रिय रवन भवन उत्तम सुख भोगन।
नवल नीक पोसांग सरस दंपत सजोगन ॥

---

[1] अगहन, [2] पति।

छिरकात रग रगन विवध खेलत खेल खुसी रमे।
बीभेत जाम पच्छम धनी सो सुख लहत सरीर मे ॥१४०॥

—वही, पृ० ५२२

बसत ऋतु वर्णन

दोहा

चैत और वैसाख को, कहत मत रतराज।
येह रत मे विलसत अती, वीभकरन महाराज ॥१४६॥

छप्पय

वीभ करन महाराज आज शिरताज राज मट्।
रचत खेल रगरेल छेल अखवेल बाग मह॥
भर केसर पिचकारी लाल गुल्लाल उडावत।
बजत मृदग धुनि तान तान गुनियन मिल गावत॥
सिगार सार त्रिय गन सजत ललित प्रमोद लसत मे।
वीभेश जाम पच्छम धनी बिलसत मोज बसन्त मे ॥१४७॥

—वही पृ० ५२५

ग्रीष्म ऋतु वर्णन

दोहा

जेठ ओर अपाढ मे तरनी तपत अपार।
रत ग्रीखम चित चाहियेँ सब सीतल उपचार ॥१६१॥

छप्पय

सब सीतल उपचार बार जल जत्र फुहारन।
भरन होज बन बाग त्रिविध गत पोन वहारन॥
सीतल पटिय उसीर खीर चदन चरचावत।
छिरकत नीर गुलाब कुसुम कर भवन सुहावत॥
भुगताल माल मडन विविध, सुच्छम बसन सु अग मे।
वीभेश जाम पच्छम धनी रहतस ग्रीखम रग मे ॥१६२॥

—वही, पृ० ५३०

आधुनिक कवियों की कविताओं से सकलन

वंशीधर दलपतिराय

दोहा

नमत सुरासुर मुकट महिं, प्रति बिंबित अलिमाल।
किये रत्न सब नीलमनि सो गनेश प्रतिपाल ॥

अथ देशधिप वर्ननम्

दोहा

उदयापुर सुरपुर मनों सुरपति श्री जग तेस।
जिनकी छाया छत्र बस कीनों ग्रन्थ असेस ॥२॥

कवित्त

सकल महीपन के राजें सिरताज राज,
पर उपकारी हारी भारी दुख द्वंद के।
देव जगतेश धीर गुरुता गम्भीर धरे,
भंजन विपच्छ पक्ष दच्छ फौज फंद के ॥
प्रभुता प्रकाश अति रूप के निवास सोहैं,
प्रगट प्रताप ताप मेटैं जन वृन्द के
मेघ से समुंदर से पारथ पुरंदर से,
रतिपति सुन्दर समान सूर चंद के ॥३॥

दोहा

जदपि नार सुन्दर सुघर दिपत न भूषन हीन।
त्यों न अलंकृति बिनु लसैं, कबिता सरस प्रवीन ॥४॥
कीने रस मय रसिक कवि, सरस बढ़ाय विवेक।
छाया लहि गिरिवान की भाषा ग्रन्थ अनेक ॥५॥

तदपि अलङ्कृति ग्रन्थ कौं काहू कवि नहिं कीन।
भाषा भूषन है जऊ कहूँक लच्छन हीन ॥५॥

—अलंकार रत्नाकर, पृ० १ और २

दोहा

गज गामिनी मुखचन्द सम कंज नयनि इक नारि।
छविसों रति मजरति भई तर लइकत तिहारि ॥७॥
वाको मिलन इक तवो रति सुख लाभ अपार।
भयो शाश्वतालीय यह बिनु हीने कु विचार ॥८॥

—वही, पृ० ५

दोहा

कोकिल कंठ गज गवन सुन्दर है मृग नैन।
ऐसें उपमा जानियें, कहत सुकवि रस ऐन ॥११॥

—वही, पृ० १०

दोहा

सुधा बैन सी सन्त के बैन सुधा सम मान।
बैन खलन के विषहि से विष खल बैन समान ॥१६॥

—वही, पृ० १३

सवैया

तुम नैनन से नव नीरज है, तिनको कुल ले जल माझ डुबायो।
तुव आनन सो रजनी करही सुचहौं दिस घेरि घनाघन छायो॥
तुव चाल से बाल मरालजु है तज या वनकों वन और वसायो।
तुव अंगन को अनुहार निहारिहो जीवत सो विधि कौं नहिं भायो ॥२१॥

—वही, पृ० १४

कवित्त

आनद को कंद मुख तेरो ता समान चंद,
कैसें चलि कीजियें कलेश नाम धारी है।
आठ ही पहर कर तेरे तापहर कंज,
तपन को बधू कैसे होत अनुकारी है॥
तेरी सुखदाई देह ताके तो न सम होत,
केसर सरस कहि धतु कटुवारी है॥
सेनापति प्रभू प्यारो तू तो है अनूप नारी,
तेरो उपमा की गाँति जात न विचारी है ॥२७॥

—वही, पृ० १५

दोहा

बदन सुधानिधि जांनि कै तुव मंग फिरत चकोर।
बदन किधौं यह सीतकर किधौं कमल भए मोर ॥

कवित्त

अब हो तो दिन दस बीते नांहि नाह चलैं।
अब उठ आई कह कहां लौं बिसूर हैं।
आवो खेलैं चोपर बिसारैं मति राम दुख।
खेलन को आई जान बिरह कों घूर है ॥
खेलत ही काहू कह्यो जुग जिन फूटो प्यारी,
न्यारी भई सारी को निवाह हौंनी दूर है।
पासे दिये डार मन सांसे ही मे बूड रह्यो,
बिसरयो न दुक्ख दुख दूनो भरपूर है ॥५२॥

—वही, पृ० २३

दोहा

छे का पन् हुति जुवित का परसों बात दुराय।
करत अधर छत पिचकरा सखी सीत रितु बाय ॥६६॥

कवित्त

भोर भयें आवत निकुंज मधि मंद मंद,
बरसत बेग बाटैं पुलक सरीर है।
अंग अंग कांपे जऊ जतन नदांपे तऊ,
लेत ऐंचि अंचर कौं आली अति धीर है ॥
मो सौं जो छिपावति सो पावति हौं कोतुक कौं,
करैं कुटलाई कहा जान्यो बलवीर है ॥
तेरो सौं न बलवीर जमुना को तीर जबैं,
जात नीर काज तबैं लागत समीर है ॥६७॥

—वही, पृ० २६

कवित्त

रति विपरीत मृगनैंनी की बिराजै बैनी,
कनकलता पैं ज्यों भुजंगी लहरतु हैं।
स्वेद कन गिरत कपोलन मुकंद लाल,
मानौं तम देखि इन्दु अभी छहरतु हैं ॥

छुटला सभी परा जै लोल चल दलदल,
कचन से तन प्यारो त्यो त्यो यहरतु है।
नेजा बरदार इन्दु असुन लगायें मानो,
दुहू ओर मैन की फतू हैं फहरतु है ॥७५॥

—वही, पृ० ३२

सवैया

सोमत अग फुलेल छुही लटलैं पगताल चलैं धुनि आछैं।
पीनपरी कटि पीन उरोज अली अगिया तगिया उर काछैं॥
ईस निते मुरि मोहन त्यो द्रग कीर को ओर करै जुकटा छैं।
घुघट हेत सरोवर भीतर मीन दर्पो जनु मीन के पाछें॥७६॥

—वही, पृ० ३३

कवित्त

गोरी मुख गोल हरें हंसत कपोल बडे,
लोचन बिलोल बोल लौने लियैं लाज पर।
सोभा लागे लाल लखि सोभा कवि देव छवि,
गोभासे उठत रग रूप के समाज पर॥
बादला की सारी जागी जोत जरतारी दर,
दावन किनारी भीनी झालर के साज पर।
मोती गुहे कोरन चमक चहुँ ओरन,
सुतीरन तरैयन की तानो द्विजराज पर ॥१३२॥

—वही, पृ० ६१

सवैया

मत्त जहां मधु भोर के कूजत कोकिल कोक कपोत सराग।
फूलेहैं कज रु गुजत हैं अलि पुज लियैं तरु कुज पराग॥
ठुढ भए जल सूख गयो भई ऊखर भूम दयो मनु दाग।
सोई रसालव है वह बाग बिसाल वहैं यह पथ तडाग ॥१४६॥

—वही, पृ० ६९

दोहा

काधे केदार चाप दैं जो कीनो मृगराज
कूकर क्यो करि हैं क्हो करि कुल कपन गाज ॥१६२॥

—वही, पृ० ७६

कवित्त

फूलन बसीले जाके फलन रसीले छित,
छांह के नसीले पंथ पंथी सुखदाई है।
विटपन कामदार निपट निकाम डार,
बडे नामदार पूखी अधिक उंचाई है॥
भूल्यो भ्रम सूवा अन्त पायो फिर रूवा हार्यो,
खेल जिम जूवा जिय अगनि लगाई है।
जगत में जनमपें काहू के न काम आवें,
कहा सठसेंबर के बडे की बडाई है॥१७२॥

—वही, पृ० ८३

सवैया

हाथ गहे हरिने हित सों पित सागर लच्छ के आदि ददाई।
अंबुज चक्रहु तें अधिक गुन रावरे की पहुँचेन गदाई॥
सा एक हैं मुख लागत हो जिनके हित मीन गह्यो न कदाई।
जुद्ध असंखन जीत वजे पें रहे तुम संख के संख सदाई॥१७८॥

—वही, पृ० ८५

सवैया

कंज के पात रहे कुमलाय जितें लग पीन उरोज रहें री।
भारी नितंब जितें परसें तित पल्लवहू पियराई गहें री॥
खीन खरी कटि को नहि संग सुरंग हर्यो छवि आछी लहें री।
वाके सन्ताप सरीर को तापसु आपहि तें यह सेज कहें री॥१८०॥

—वही, पृ० ८८

दोहा

भयो कंबु तें कंज इक सदा प्रफुल्लित सोय।
देखहु चंपक की लता प्रगटे श्रीफल दोय॥२१३॥

सवैया

वे जग बंधन कों मगदा चलयो इन नीक न हू को निवार्यो।
वे बलि वास बसावत हैं इत बास उजार कुवासन पार्यो॥
सूरत थाह जतावत वे इन प्रेम अथाह के वारिधि डार्यो।
देखहु री हरि की बसुरी इन कैसे सुबंस को वंस बिगार्यो॥२१५॥

—वही, पृ० १०३

दोहा

पलन पीक अंजन अधर धरें महावर भाल।
आज मिले सु भली करी भले बने ही लाल॥२२८॥

कवित्त

लखि अरसौं है नेगु सौं है हु न देखत हो,
भौंहैं मोहैं चाएौ सो वसों हैं न पत्याय है।
जाके हेत कीनो गांन मांननी अमांन यह,
ताको तुम लीनो नाम सहज सुभाय है॥
ऐते पर पार हठ हरबू हठीली अब,
हा हा किर्यें बात यह कैसें चित्त लाय हैं।
मान के छुड़ावन कों आए मनभावन सो,
मांन के बढ़ावन को कीजो यो उपाय है॥२२७॥

—वही, पृ० २०७

दोहा

विषय सुमन छोंडत निश्च जिय जग अथिर सुजांन।
विषय सुखन छोंड़त निरख जिय जग अथिर अयांन॥२००॥

सवैया

चित राघहु उभत भाख्यौ यहे निहुचे लखि भेद पुरनन के।
अति उभत चित्त तें बिलरु विघ्न तें दान जसें विलसें जन के॥
बिलसात कहा कनसात हहा जिय बाढत ही दुख द्वंदन के।
दुख पावतें पाप सुदारद तें पुन दारद तुच्छ किर्यें मन के॥२७२

—वही, पृ० २२३

दोहा

दीपक एकावलि मिलें माला दीपक नाम।
काम धाम तिय हिय कियौ तिय हिय कौतुं धांम॥२७५॥

कवित्त

कांनन के रंगे रंग नैनन के डोले संग,
नासाअग्र रसना के रस ही समानि हो।
और गूढ कहा कहीं मूढ हो जु जान जात,
प्रौढ रूढ केसीदास नीकैं करजानि है॥
तन आंन मन आंन कपट निधान कांन,
सांची कहौ मेरी आंन काहे को डराने हो।
वेती हैं बिकानी हाथ मेरे हौं तिहारे हाथ,
तुम ब्रज नाथ हाथ कौंन के बिकांने हो॥२७६॥

—वही, पृ० २१५

कवित्त

नर तें अधिक दौरें, पंछी अंतरिच्छ ही में,
पंछी तें अधिक दौरें वेग नदी नीर के।
नीर तें अधिक दौरें बंसी कहें सिंह बली,
सिंह तें अधिक दौरें तीर महाधीर के॥
तीर तें अधिक दौरें पौन[1] झकझोर और,
पौन तें अधिक दौरें नैन हि सरीर के।
नैन तें अधिक दौरें मन तिहुँ लोकन में,
मन तें अधिक दौरें बाजी रघुवीर के ॥२७८॥

दोहा

मांगन सकुचन पौन हु जाहि लियो संग ठान।
तिन तें तूल रु तूल तें हरवो जाचक जान॥

—वही, पृ० २२६

कवित्त

सोवें जब बांयो हाथ छाती पर भारी होत,
ऐसे बरनारी होत बोहरा के आए तें।
सुपने के हाथी आवें दौरि-दौरि थाक जात,
एसें थक जात नर व्याज के बुबाए तें॥
सुक बिनि हाल हरकत है सं तान कोसी,
बरकत होत न उधारी ले कै खाए तें।
रन सीन और पाप चढ़े विप कैसो ताप,
कै उतारें आप कै अपूत पूत जाए तें ॥२६२॥

—वही, पृ० १३१

कवित्त

पतित उधारे पति राखवे पधारे जैसें,
तैसें पत मेरो पत पार हो कपार हो।
तारथ्यो करनी की प्रभु फेर सीस करनी को,
अब मो अकरनी को हार हो कहार हो॥
मिटे तीन ताप आप नाम के प्रताप ताप,
बंसी के संताप त्यों बढ़ार हो कढ़ार हो।
पाप करतार हौंन तेरे करतार मेरो,
एही करतार मोहि तार हो कतार हो॥ —वही, पृ० १३१

---

[1] पवन।

दोहा

जो विशेष सामान्य दृढ़ तौ अर्थान्तिर न्यास ।
रघुवर के वरगिरत रे वड़े करैं नक हास ॥३१४॥

कवित्त

बदन सौं जान पहिचान तो रहीम कहा,
जीपैं करतार होन सुख देन हार हैं।
सीत हर सूरज सौं प्रीति कोनी कमल नित,
ऊतो कमल वन जारत तुरवार है ॥
उदधि के बीच वस्यो संकर के सीस लस्यौ,
तोऊ ना कलंक नस्यौ ससि के सदार हैं।
बड़े रिझवार हैं चकोर दुरबार आप,
सुधा धर प्यार तो पैं भखत अंगार हैं ॥३१५॥

—वही, पृ० १४२

दोहा

विकस्वर होत विशेष जब फिर सामान्य विशेष ।
हरि गिरि धार्यो सतपुरुष, भार सह्यो ज्यों सेष ॥३२०॥

सवैया

नागर ही गुन आगर ही रिझवार ज्यों रीझत बात सुनाएं ।
एक निदान को जांनो नदांन सु यातैं, सबै गुन देत बहाएं॥
होय जऊ सब ही गुन पूर तऊ इक औगुन राखत छाएं ।
चातुरता कविता दिक के गुन के गन दारिद देत दबाएं ॥३२१॥

—वही, पृ० १४६

कवित्त

सीयो प्रांन प्यारो प्रांन प्यारो अब सीय जाहु ऐसैं,
कहि चलो सब सखियां सयांन तै ।
जाय पति पास हरैं प्रेम परबस हैं कैं,
ताके मुख ही पैं मुख राख्यो मैं अयांन तैं ॥
जान्यो तब झूठो ईतो आंखन को मूंदबो वा,
ठग को रोमांच देख भयो भ्रम प्रांन तैं,
कीनो ऐसो काज आज लाज ही जु सीऊ हरी,
ततछिन तासमैं के उचित विधान नै ॥३३५॥

—वही; पृ० १५२

कवित्त

आयो अपराध भयो दीनी री निकारि याहि,
प्रीतम सखी को तब आयो भेष धर कैं।
ताकों भ्रमि मैंने सब अंतर की बातें कही,
वाके मिलवे की चाह हो सी अंक भर कै।।
मिलबो कठिन है हो भोरी बाल ताकों अब,
बिहंसि बिहंसि मोसो यों कहि निकर कैं।
भरी अंक वारी भारी हठ कर याही निस,
वाही ठग ठगी आली ऐसो छल कर कैं ।।३३६।।

—वही, पृ० १५३

दोहा

गुन औगुन जब एक तैं और धरैं उल्लास।
न्हाय संत पावन करैं गंग धरैं यह आस ।।३३९।।
लाभ बड़ो जो कुदाल तैं सेवक निज घर नांहि।
हैं अभाग धन की चहैं मिलैं जु संतन नांहि ।।३४०।।
करे कठिन कुच कौन हित मृदुता परनन धार।
निंदत हैं भाजत समैं विधि कों तुव अरि नार ।।३४१।।

—वही, पृ० १५४

कवित्त

एही अलबेली ऐसे अधिक अंधेरे मांहि,
आज अधरात कौन काज कित तूं चली।
बसत हमारे मन मोहन जू प्रांननाथ,
ताको हैं संकेत जित जात तित कों अली।।
साथन सहेली तूं अकेली मोसों बात कहि,
डरत न काहे लखि ऐसी कुंज की गली।
कीनो जग जेर जिह साज सर चाप आप,
सोई हैं सहाय मेरे मदन महाबली।।३४२।।

—वही, पृ० १५५

दोहा

कर फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।
चुप रह रे गांधी चतुर, अतर दिखावत काहि ।।३४३।।

कवित्त

अधर पैं दंत छत दीने चकित ह्वै,
कर अग्र कंप नाही-नाही हठलीनी है।
छाड़ सब ऐसे कही रिस को जताय नैन,
भौंह न मरोर कोप बचन प्रबीनी है॥
ऐसो माननी कैं कियो चु बन अचानक ही,
अमृत तिन ही तैं तब पीनो है॥
गूढ जानैं बिन मूढ देवतान मिल,
सागर मथन को वृथा ही श्रम कीनों है ॥३५४॥

—वही, पृ० १५६-५७

दोहा

मुद्रा प्रस्तुत पद विषैं औरें अर्थ प्रकास।
मन मराल नीकें धरैं तो पद मानस आस ॥३५५॥

सवैया

ज्यौं झख[1] चाहत हैं जल कौं अरु चाहत ज्यौं घन कौं वन मोर।
ज्यौं चह कंज प्रभाकर को बिम चाहैं पतग प्रदीप हिं ओर॥
चाहत ज्यो अलि मालती बास सु, चाहत ज्यो परधाम हि चोर।
तो मुख चद हि चाहत यो चलियै, बलि नंद किशोर चकोर ॥३५६॥

—वही, पृ० १६

दोहा

रत्नावलि प्रस्तुत अरथ क्रम तैं और नाम।
रसिक चतुर मुख लच्छ पति, सकल ग्यान को धाम ॥३५७॥

कवित्त

परवीन प्रीतम सो कैसें उडि मिलो आली,
सो मति विचार तामे नैकु जक परै री।
अबु धरे नैन जिय पलकन चैन याही,
लखि कवि कुल कौं न बरनन करैं री॥
परी नेह बस निसा कैसे कै बिहात चंद,
हियरा हरष कहूं धीर धरैं री।
जाके अग अगन मे बरत अनग आग,
याके तन ताप के सताप जग जरैं री ॥३५८॥

—वही, पृ० १६१

---

[1] मछली।

दोहा

सामान्य जु सादृश्य तैं, जांन परैं न विशेष।
नाहि फरक श्रुति कमल औ, तिय लोचन अनिमेष ॥३७२॥

सवैया

रच दर्पन छात छजे थंभ ताक सुकलि कौ मंदिर सुंदर कीनौ।
सज वैठो तहां हरिराय बुलाय नवोढ तिया चित संभ्रम दीनौ॥
तिहिं भेदन ही प्रति बिंबरू बिंब कौ चित्त अचंभ अथंभ नवीनौ।
मुह फेर लजाय कैं हेर सुभाय रहैं, जित ही तित कंत प्रवीनौ ॥३७३॥

—वही, पृ० १६८

दोहा

व्याज उक्ति कछु और विध कहैं दुरैं आकार।
सखि सुक कीने करम ए लख दाख्यौं मनिहार ॥३६०॥

कवित्त

नख कहां लागे बन बांनर लगाए नख,
चख कहां रागे प्रात जाग्यौ प्यारी मान कौं।
बंदन कहां तैं लाग्यौ पूजे गन नायक कौं,
चंदन कहां तैं लाग्यौ पूजे शिवथांन कौं।
रात कहां जागे जहां नटन कौ नृत्य भयौ,
बोलत क्यों ढीले तेरो भय भयो प्रान कौं।
बिगरी सुबिगरी दुरावी जिन आवौ लाल,
पिगरी कहां लौं देही फाटे आस मान कौ ॥३६१॥

—वही, पृ० १७५

दोहा

सुहैं जुक्ति कीनैं क्रिया मरम छिपायौ जाय।
पीव चलत अंसू चले पोंछत नैंन जंभाय ॥४०१॥

कवित्त

दंपती परस पर बोले निस बोल सोई,
पंजर में सूआ सुन सहज सुभाय कैं।
वहैं पुन बात प्रात समैं गुर लोकन मैं,
बोलत सुन्यो सुतब ताकै ढिंग आय कैं॥
कांनन के कुंडल तैं मांनक के टूक काढ,
बंसी कहै ताके आगें डारे वे दुराय कैं।

दारम के बीज मिस चतुर नैं चातुरी सों ।
कीनी सुक बानी बध निपट भजाय कै ॥४०२॥

—वही, पृ० १७९-८०

दोहा

स्वभावोक्ति सो जानियें बरनन जाति स्वभाव ।
हस हम देखत फिर झुकत मुँह मोरत इतराव ॥४१४॥

सवैया

न्हाय तडाग को तीर सु उच्चल चीर शरीर धरैं सुभ जोती ।
लावी लसैं लट घारु उरोज ज्यूँ शमु के सीस पै नागनि सोती ॥
पाय सकोरि नमाय कटी मुख नीचौ कियौ लट कैं नक मोती ।
भौंह मरोरत फोरत नैंन सु चोरत चित्त निचोरत धोती ॥४१५॥

—वही, पृ० १८५

चौपाई

भाव अग जिहि रस को होय । भाव भाव को कै अग सोय ।
अलकार कहि प्रेय हि तास । ताहि कहत पुन भाव प्रकास ॥१२॥

सवैया

हौं कब वे अगसौ अग राग, बठाय सुहाग के पैम पगैंहो ।
हौं कब चद की चादनी मैं मुख चद कौं चाह कै तप भगैं हौं ॥
हौं कब वे बडे नैंन सो नैंन मिलाय कैं चैन सौं रैन जगैं हौं ।
हौं कब वे मधुरी मधुरी बतियां सुन कैं छतिया सौं लगैं हो ॥१३॥

—वही, पृ० १९७

नभू लाल

पद—राग भैरव

अनुभवी जागो रे, अज्ञान रैन गई ।
उदे भयो ज्ञान भानु, मिथ्या नींद त्यागो रे ॥ अनुभवी० १
सशो ग्रन्थी कर्म ग्रन्थी, अहग्रन्थी छूट गई ।
खड खड जोत भई, बध भय भागो रे ॥ अनुभवी० २
महा वाक्य सिद्ध भयो, पचकोश पार गयो ।
असीपद एक रह्यो, जाकु लक्ष लागो रे ॥ अनुभवी० ३
न भूतो न भविष्यति, जल होय बीचरती ।
सभराभर एकरस, मन कर चाखो रे ॥ अनुभवी० ४

—नभूवाणी, पृ० २११

पद—राग भैरवी

सतगुरु जी ने सेन में समजाया रे, मेरे घर में शाह दरशाया। टेक
पोथी कुरान परापर वस्तु, सो परापर पाया।। सतगुरु० १
पथ्थरसों पथ्थरसु प्रीती, आगे चित मे पछताया।
जीव परोक्ष अपरोक्ष लखांया, जीव नामक तजी काया।। सतगुरु० २
सहज दयासु संश[1] टारा, ठीक जनम मे आया।
नभु निरंजन तहाँ नहि दोभक, मीस्ती बी नही पाया।। सतगुरु० ३

—वही, पृ० २११

पद—राग बीलावर

गुरु बिनु को अभिमान मिटावे। टेक
मान गये बिनु मोक्ष न पावत, सो गुरु ग्यानतें गर्व घटावे।
ग्यान बिना नर पामर जैसो, लोभ प्रपंचन मे लपटावे।।गुरु० १
सुरत नही चढ़ी पवन दोर पर, दुसह माया लहर लटावे।
नभु तु खेल पाँच देही पर, हेलां में यह तिमिर हटावे।। गुरु० २

—वही, पृ० २१३

पद—राग गोड़ी

सब जग स्वारथ के संगी रे, नहीं कोई परमारथ रंगी।
न लहे कोइ पराइ पीडा, आपस्वारथ चंगी।। सब० १
आंबा[2] म्होवा तरवर सुन्दर, बहुत बरस फल खाये।
फलत नहिं तब काठी कारन, आला काटन खाये।। सब० २
महिषी दुझ रही तब वाकु, हांक दइ जंगल में।
कोस करन कु चरमा चहिए, तब ढुंढत है जंगल में।। सब० ३
खेड करी तब बेल भला है, फरी बरध भयो अटके।
ताकूँ घास न डारे कोइ, गली गली में भटके।। सब० ४
गरज परे तब प्रीत वढ़ावे, गरज[3] सरी तब बैरी।
नभु सुरीनर दानव सबको, ऐसी रीत में हेरी।। सब० ५

—वही, पृ० २१७

पद—राग काफी

समज ले श्रुति के बिचार। समज० टेक
चतोवा इमानि भूतानि, सृष्टि समग्र पसार हुँ वारी।
प्रज्ञानानंद ब्रह्म अर्थ सो, आत्मा एक अपार।। समज० १

---

[1] संशय, [2] आम, [3] स्वार्थ।

तत्व त्व तत असीपद अदबद, सोह इसो च्यार हुँ वारी ।
नभु वानी परस मर मराभर, ठर रहे बातु आधार ॥ समज० २

—वही, पृ० २१८

पद—राग काफी

निस दिन मन लयलीन लक्ष मे । निस० टेक
सोइ लक्ष को सुमरन अनुभव, दृष्टि परे कोउ क्वचित दक्ष मे ॥ निस० १
श्रुति के वचन अर्थ फल सोइ, एक असम्भव अन्य पक्ष मे ।
इन्द्र सदन सुख काग बीष्टसम, रीद्धिसीद्धि नीधि नव पुट कक्ष मे ॥ निस० २
जयति सच्चिदानद ब्रह्म गुरु, नभु परोक्ष नांहि प्रत्यक्ष मे ।
पूरण प्रकास अखड अगोचर, एक असिपद उरध वृक्ष में ॥ निस० ३

—वही, पृ० २१९

छंद—झूलना या मंगल

कर सत सगत नीत, प्रीत परमारथी ।
देख बिचारी साथ, तेरो तब स्वारथी ॥१॥
सत सगत बिनु ग्यान, कहाते पाइए ।
काग सदन में मुक्त, वहा ते लाइए ॥२॥
मानसरोवर मुक्त, चारा है हस का ।
कउआ न जाने जुक्त, हसा के बस का ॥३॥
सत सगत परताप, वेद श्रुति गाव ही ।
जीन को सुकृत सुद्ध, तीन कु पावही ॥४॥
उगे अनुभव अर्क अधेरी जायगो ।
सद्गुरु सब्द विचार, अन्तर मे लायगो ॥५॥
समज शिष्य सुजान, सतन की सेन मे ।
नभु निरजन राय, निरख निज एन मे ॥६॥

—वही, पृ० २२७

कटाव

श्री व्रज राज नद दुलारे, तुम हो जीवन प्रान हमारे ।
श्री व्रदावन मे जुग जीवन, कर बसी धुन,
कान मनक सुन, मन भई उनमुन, परिजन शक न,
अरपन तन मन, बीपरीत बन,
ठोर ठोर के, दोर दोर के, काम जोर मील,
ठोर नहिं छन, चलन चपल छिग,

आ कहत करजोरी, नभु सखी चहनन,
विनय उचारे श्री ब्रज० तुम हो० १

—वही, पृ० २३५

पद—राग सोरठ

मास सावन सुखदाइ, सखीरी मास सावन सुखदाइ। मास० टेक
सब सखियन मिल झुलत हिंडोला, झुलन की रत आई॥ मास० १
जामा पटका लाल लाल के, पगियाँ लाल रंगाइ।
राधे रंग कसुंबल कोरी, कंचुकी सुरंग सुहाइ॥ मास० २
जडीत लालमनी खंभ हिंडोरा झालर लाल बनाइ।
लाल मेखीकर ओर सखीन के, नभु निरखी बलि जाइ॥ मास० ३

—वही पृ० २३६

पद—राग सोरठ

काना नेनोदी कटारी मोहे मारना रे, काना० टेक
तरछी नेना बरछी लागे, काम कटक दल उमग्यो जागे,
मधु मधुवासी फोगट फांसी, मोहन मोरे गर डारना रे॥ काना० १
कर सासेरी हेरी फेरो, गीरधारी तोरे गुन घेरी,
नभु सखी चरन कमलदी चेरी, चाउं बलिहारना रे॥ काना० २

—वही, पृ० २३६

पद—राग सोरठ मल्हार

उधो ऐसी हमसुं कीनी। उधो० टेक
वेली छुट गये ज्यों भमरा, फिर तपास नहीं लीनी॥ उधो० १
आगे छेह देन की मन में, बीरह आग कत दीनी॥ उधो० २
छल की बात श्याम सुन्दर की, आगे हम नहीं चीनी॥ उधो० ३
छुगत जोग की कैसे लहिये, अबला प्रेम अधीनी॥ उधो० ४
नभु सखी करके कह निहोरा, मैं उनके रस मीनी॥ उधो० ५

—वही, पृ० २३६

खंडिता नायिका विषयक कवित्त

सुन्दरू किवार खोल, कौन है अंधेरे में।
गोरी में गुपाल ठोर छोरने के प्रात में॥
प्यारि में पितांवर, सो भूलसुं लियो है काल।
विनता में बनमारो, गजरा है हात में॥

हेली मे हरि, रघुनाथ युद्ध करो साहे,
स्यामा घरश्याम, जाय बसो बरसात मे ।।
प्यारी तेरो प्रान, कहि यक्यो प्रेम हुतें ।
नमु नंदलाल कुं हठीये बेघ बात मे ॥ १

—वही, पृ० २४२

खंडिता नायिका विषयक कवित्त

आज आये केसे, अनोखे से लगत बाल,
ख्याल रेन जागे तें, नेन रंग राते हैं ।
ठरत न चरन घरत, डगत नहि चित्त ठोर,
ओर सुनो तान गान, चुक चुक गाते हैं ।।
साची निसानी सो, जुठी करने के काज,
लाज के जहाज होय, सोगन सो खाते हैं ।
ऐसो होत नीत नीत, केती कहे दानत सुत,
नाही नाही कहत तिहां, रोज रोज जाते हैं ।। २

—वही, पृ० २४२

कवित्त

नेन के बान लगे तन में, बदनामी के बीज मे बोइ चुकी री ।
उस नंदलला संग प्रीत लगी, जंदुगानी सें हाथ मे धोइ चुकी री ॥
घर बार तजो कुल लाज तजी, माय बाप को नाम डबोइ चुकी री ।।
अब लाख करोर कहो सखी री, जैसी होने की थी सो तो होई चुकी री॥

—वही, पृ० २४२

दलपत राम

श्रवणाख्यान

दोहा

गणपति गौरि गिरीश रवि विष्णु विमल यश लोक ।
विधु न दोश दुःख की हरे, सुख दय करे अशोक ।।१॥

—श्रवणाख्यान, पृ० १

प्रश्न दोहा

को कवि दलपति राम है, ठरत कहा किहि ठाम ।
कौन शाति अरु जाति है, फरत कहां नित काम ।।१२।।

उत्तर कवित्त

देश गुजरात दुनिया मैं जैसो दीसै बाग,
अहमदाबाद वामे उत्तम अटाली है।
आसपास और प्रांत सारे सो तो क्या रे जैसे,
जामे प्रजा फूलबारी जैसी फूली फाली है॥
सुधारे की वेली बोवै वामें जो साहेब लोग,
सो मैं कविता रस से पोषी अरु पाली है।
कहै दलपतिराम कहत हुँ सत्य जान,
जाति विप्र जानौ मेरी ज्ञाति तो श्रीमाली है॥१३॥

—वही, पृ० २१

आत्मा ते आतमज अति प्यारा, कौन गिनति यह तनुदृग तारा।
पिता प्रवास करत परदेशे, उपराजत धन अधिक कलेशे॥४७॥
पाप करत कबु होइ प्रपंची, सुत कारन धन राखत संची।
आतप तांप आप सहि काया, तात करत सुत के शिर छाया॥४८॥
अल्प अहार मिलै जो कबही, छुधा सही सुत को देत।
बही सुत कारन निज शरीर गमावे, तो दृग को कुन मात्र कहावे॥४९॥

—वही, पृ० २५

कबहु जगत मे कोटिधा और किये उपकार।
सुख न दियो पितु मातु कूं तो सब छिन में छार॥५५॥
जिन्हें निज पितु मातु को कियो न प्रत्युपकार।
क्या करि हैं सो और को है मतलब का यार॥५६॥
तात सकलीच तात जहु तनकन रखना त्रास।
हुकुम मानि हाजिर रहौं, राखहु दृढ़ विश्वास॥५७॥

—वही, पृ० ३७

पति कुं पत्नी पत्नी कूं स्वामी, सुख दुख बात बरन विश्रामी।
दंपति सम सगपंन नहि दूजा, कहा तनुज अरु कहा तनूजा॥७६॥
जो तु स्वर्ग निवासव सेरी, तो फिर कहहु कहा गति मेरी।
जो सुत निज बनिता वश रे है, तो तुम पोडा अति पै है॥७७॥

—वही, पृ० ३९

धेनु अधिक अरु अधिक महिषी, करत घनै किंकर जन कृषी।
स्वर्ग समान तिघर सुख लैहो, पंचामृत मय भोजन पै हो॥९७॥
स्नेह सहित में सजि हों सेवा, भाव धरि हों भू देवा।
भूषन वसन अमोलिक अर्पं, तुमकूं सरस अशन से तर्पं॥९८॥

वाहन विविध सुरासन जैसे, अहो स्वामि पावहु सुख ऐसे ।
पथ से मैं तव पाव पखारो, है अनुचर पुनि और हजारो ॥६६॥
इत वनवास अधिक दु सदाई, वनचर सम वसि वो फल खाई ।
मन क्रम मानहु वचन हमारा, मम माय रूप सुधारहु प्यारा ॥१००॥

—वही, पृ० ४१

दोहा

परमहंसोक्ति

हस कहै हरि हर भजहु, करहु आतम विचार ।
व्यापक ब्रह्म विज्ञान बिन, नहि पावै भवपार ॥१८

कवित्त

श्रवणोक्ति

सचर अचर सब मे है ए अखड ब्रह्म,
ब्रह्म ते भयो है सोई ब्रह्म मे समायगो ।
हरिहरादिक सब अश एक ब्रह्महुको,
वह पुनि अते एक ब्रह्म मे बहायगो ॥
ऐसे मात तात पुनि अश एक ब्रह्म हि को,
ताको तजी औरन को धिमत क्यो ध्याएगो ॥

—वही, पृ० ६१

दोहा

सतहु पापिन सग ते परही नरक मझार ।
ज्यो सज्जन खल सग तें, बिन अधखाय तमार ॥ २०

—वही, पृ० ७३

अविनाशानंद

पद ६—राग लावणी

मोरे बके बिहारी लाल, चाल चीत चोरे ।
तोरे बके नैन विशाल, करेजवा कोरे ॥ मोरे०
शीर बकी कलकी धार, प्यार कर प्यारा ।
मोरे खावन दिल खुशियाल, ख्याल कर न्यारा ॥ मोरे० १
कैसी बकी कमर हर कस, हस गती हेरी ।
शीर बकी पाग बनाय, गाय गुन लेहेरी ॥ मोरे० २

कर बनिता संग विहार, हार घर हीय में।
मुख बोली अमृत बोल, कोलकर कीय में॥ मोरे० ३
बयुं नाचे कमल द्रग शाम, काम कर कमनं।
मोये जांनी दासी अविनाशी, गाय गुंन रमनं॥ मोरे० ४

—अविनाशानन्द काव्य, पृ० ५

पद १२

परनारी सों करी यारी, बारी है दुःख की।
ता कारन समझी विचारी, बात सुन सुख की॥ परनारी०
अज इद्र चंद्र भये अंध, नेन लखी नारी।
गती गौतम ग्रह मे कीन, दीन भये भारी॥ परनारी० १
बड लंका वंका कोट, नीशाचर पुरा।
परनारी के परसंग, भये चकचूरा॥ परनारी० २
सब सब भीत त्रिलोकी भीत, आपकी कीनी।
सो दुःख पायो दश शीश बात कहो दीनी॥ परनारी० ३
सो बातन को एक बात, घात दुर करना।
अविनाशानंद की शीख, धीय में धरना॥ परनारी० ४

वही, पृ० ६

पद ३२—राग ठुमरी

दुसरो कौन दुखदाई रे दुसरो कौन दुखदाइ दारा बीनु०
चंद्र इंद्र कुं कलंक लगायो, सुजस दीयो न साई रे।
रावन दश शिष कटायो, कुल सहीत छीन माइ रे॥ दुसरो० १
शृंगी पारासर नारद पर्वत, सुर गुरू सुखदाइ रे।
लांछन जुक्त कीये जग सब ही व्यासादिक कवी गाइ रे॥ दुसरो० २
जोगी जती तपसी संन्यासी, ध्यान मे ध्यानी रहाइ,
ताकुं ख्वार कीये पल छीन में, जानत संत सुहाइ रे॥ दुसरो० ३
चतुरानन पंचानन जैसे, जग इश्वर कहवाइ रे।
लीने सबे चावा नीज मुख में, अवला बल अधीकाइ रे॥ दुसरो० ४
बडे बडे संन्यापती लुटे, दीये कलंक लगाइ रे,
अविनाशानंद के मन क्रम वचने श्रीय संग तजहु भाइ रे॥ दुसरो० ५

—वही, पृ० १६

पद ४२—दोहरा

सुशील शील व्रतधर सदा, कदा न व्यापत क्रोध।
बोध अधिक बुद्धि प्रवल, सबल सार सब शोध॥ १

बंक निशंक विलोकनी, लोकनी धरत न लाज।
काज अकाज करे नहि, राखी लाज मिजाज॥ २
वाचक सुख दायक बदे, मदे न अंध महंत।
मनमथ व्यापे न मन में, सो साचा जग संत॥ ३
दिल दया दाता सदा, ज्ञान, मान विज्ञान।
पास विनासन दास प्रद, समता शील सयांन॥४
निज गुन मुख तें नां कहे, लहे न पर के दोष।
रोश न गुनगन कोश मुनि, मुनि कीर्ति निरदोश॥ ५
जिनकुं मिले मुनि जगत मे, पार हरत संताप।
आप आप गुन विमल अति, मति अति गती अमाप॥ ६

—वही, पृ० २६

पद ४४—छप्पय

सोम से शीतल रूप, अनंग से द्युति अनुपा।
जक्त भक्त सब जान, शीव सुत सम सुखरूपा॥
गुणनिधि गोरख साध, शिरोमणि से जग जाने।
कवि राज से काव्य, हुमे अती खूब सयांने॥
सुर जरा सिंघ दशशिश से, महि रिपु भिति घर आन ही।
अविनाशनन्द प्रभु प्रगट विनु, सो मतिमद प्रमांन ही॥

—वही, पृ० ३१

पद ५३—छप्पय

हिंसा करत न लेश, लेश आमीष न खावे।
परत्रिय तजे प्रसंग, मध पीवत नही पावे॥
अछत[1] न विधवा अंग, अंग निज घात न करही।
चोरी में देत न चित्त, कलंक न कोइ शिर धर ही॥
नही नीदत कोउ देव को, बिन खप तो नही खात है।
अविनाशानंद श्रीमुख वयो विमुख न कथा सुनात है॥

—वही, पृ० ३३

पद १०७—राग भैरवी

बगीया मे मीले बरवीर, भलाजी मोये।
तरुन शाम संग तरुन उमग भर, सोहत ग्वालन भीर॥ भला० १
मरम की बतीयां कही कर छतीयां, आयों प्रीतम हर पीर॥ भला० २

---

[1] छूना।

निपट झपट करो कपट कुटील पीया, फार्यो चतुर वर चीर ॥ भला० ३
अविनाशानंदना नाथ कर पकरो, झकझोरी जमुना के तीर ॥ भला० ४
—वही, पृ० ५३

पद ११०

आवत आली बगीयन से ब्रजराज । आवत०
नीलमनी सम तन दुती नौतम, नौतम बसन समाज ॥ आवत० १
वंशी अधर धर कनक कटक कर, गीरधर गरीब निवाज ॥ आवत० २
ग्वाल बाल संग बालन भावत, निरखत रतीपती लाज ॥ आवत० ३
अविनाशानंद अजब छवी नीरखी, जनम सुकल कीयो आज ॥ आवत० ४
—वही, पृ० ५६

पद १२१

छेल छुवोन छतीया हमार, फाटेगो मेरे अचरवा । छेल०
लाख टकेकी लोनी सारी बिहारी, नागर नंद कुमार । फाटे० १
उरज उतंग नही शाम चतुर पीया, नाजुक नवीन लगार । फाटे० २
लोक नगर के देखे डगर मे, ठाड़े सब नरनार ॥ फाटे० ३
अविनाशानंद के जेल न कीजो, छोटि में अती सुकमार । फाटे० ४
—वही, पृ० ६६

पद १२२

तुम ऐसे न करो नंदलाल, ख्याल परनारीन से । तुम०
जात भरन जल में जमुना को, गैल न रोको गुपाल । ख्याल० १
कायकुं[1] तांनत मेरी नवल चुंनरीयां, प्रीतम जन प्रतीपाल । ख्याल० २
चुंबन मुख चख कायकुं मोहन, लखी के रूप रसाल । ख्याल० ३
अविनाशानन्द के आनन्द देहुं, ऐहुं एकान्त में लाल ॥ ख्याल० ४
—वही, पृ० ६६

पद १२४

पाई दुर्बल यह नर देह, नेह कर नायन से । पाई०
मात तात सुत भ्रात त्रीया सब, स्वारथ करत सनेह । नेह० १
देव इच्छत नर देहकुं पायो, गायो निगम जश जेह ॥ नेह० २
पांमर परत्रीय में करी प्रीती, सीख्यो अनीति अछेह । नेह० ३
अविनाशानंद के सत्य विचारी, धारी ले अंतर तेह ॥ नेह० ४
—वही, पृ० ६६

---

[1] क्यों।

पद १३१—राग जंगलो

मन मोहन बजावे मुख मोरलीया। मन०
कालद्री तट कान कमल द्रग, चीतवनी मे चीत चोर लिया। मन० १
मरक्त मनी सम नील कलेवर, गानतान जीया कोर लिया॥ मन० २
मैंकी मटुकी लें जाति गोकुल सें, आइ डगर बीच फोर लिया॥ मन० ३
अविनाशानद नाथ छुइ छतीया, मोतन माला मोरी तोर लीया॥ मन० ४

—वही, पृ० ७२

पद २०८—पुर विख्यात

जाय के ले आवो कोइ प्रान सनेही,
सुन्दर धरम कुमार रे सैंया।
पल पल छीन छान जुग सम जावे,
जावे तजी तन प्राण रे सैंया॥
रैना दीना मोहे कछु न सोहावे,
भावे न भोजन पान रे सैंया॥ जायके० १
जरत है जियरा बीजोग से पीयरा,
हीयरा धरत न धीर रे सैंया।
कठीन भर अबही नहीं फटही,
छाया बीनु बलवीर रे सैंया॥ जाय के० २
मनी बीना ज्यु फनी निशदिन झुरे,
झुरे मीन धीना नीर रे सैंया।
कर बिना ज्यु करीराज झुरत ही,
त्यु बीना शाम शरीर रे सैंया॥ जायके० ३
घर घर मे पुर बनिता रोवे,
गली मे रोवे, पुर ग्वाल रे सैंया।
नगर डगर म सबही जन रोवे,
पुर पशु रोवे बेहाल रे सैंया॥ जायके० ४
बहोत विलाप करत बडे भाइ,
मेघ बिना भानु मोर रे सैंया।
छोटे इच्छाराम बिलखत छीन छान,
चद बीना ज्यु चकोर रे सैंया॥ जायके० ५
वीरह व्यथा तन बहुत सतापे,
आवे न दु.ख को छोर रे सैंया।

अविनाशानंद नाथ कब ऐहे।
भक्त वच्छल भगवंत रे सैयां ॥ जायके० ६

—वही, पृ० १०६

पद २४१—राग कहरवा

स्वामी श्री सहजानंद भज मन स्वामी।
सर्वाधार सकल सुखराशी, अविनाशी आनंद ॥ भज मन० १
जन रजन भजन भव तारन, कारन करुना कद। भज मन० २
धर्मनंद सब धाम के धामी, स्वामी सब जगवंद ॥ भज मन० ३
अविनाशानंद के अवतारी, सुखकारी सुख कंद। भज मन० ४

—वही, पृ० १२६

वैद्य कुंवरजी नथु

श्री कल्याण राग—पद १

गौरी कुमार गज को वदन जाको, गौरी कुमार। टेक
सुंदर-वर, शंकर-सुत सेवुं, शुध बुधनो रे भरथार ॥ गज को० १
चार भुजा कर कंकण सोहे, पीत बसन धरनार ॥ गज को० २
मुगट मनोहर शीर पर सोहे, सिंदूरनो रे शणगार ॥ गज को० ३
मणिगण मोतन की उरमाला, लाल कुसुम तणी लार ॥ गज को० ४
कुंवरजी रे भय हर विघनेशा, सुखवर को रे सरदार ॥ गज को० ५

—कुंवरजी कीर्तन संग्रह अने भक्ति विवेक, पृ० १

राग बिहाग—पद १

हरि का भजन बीनुं जनम गमायो मैं। हरिका० टेक
सुत वित देह दारा करी अपनो,
सपनो साचो रे, मानी मनकुं भ्रमायो मैं ॥ हरिका० १
विविध विधे पकवान पोरस कर,
साधुं कुं उवेख कर काफर जमाया मैं ॥ हरिका० २
भयो मेरो जो बन छीन, विषयतन सें,
रतो सुख समजी ने जीव कुं रमायो मैं ॥ हरिका० ३
कपट वेपार कुवरजीए कीनो,
मु रीकुं गमाइ बेठो कप कमायो मैं ॥ हरिका० ४

—वही, पृ० १०

पद २—राग बेरावल

सुनो मेरी प्यारी राधे, कहुँ कछु बात। टेक
नीक है वदन तेरो, शोभत सुगात ॥ सुनो मेरी० १
आती जब रेन आधी सोये मम तात।
फिर वलदाऊ पोडे, पुनी मम मात ॥ सुनो मेरी० २
तु हारे भवन आयो, पीछली सुरात।
बोल कही चल गयो, खुल्यो ना कपात ॥ सुनो मेरी० ३
सखि अब कारा भयो, भये परभात,
कुवरजीनो स्वामी ऐसो, जाणु तो न जात ॥ सुनो मेरी० ४

—वही, पृ० २५

पद ४—राग वेरावल

सुनके रसिली बानी खुल्यो है अगार। टेक
कर सें लगाइ कर, भइ दीलदार ॥ सुनके० १
अपने भवन लाये, भया भ्रलकार।
मज्जन कराइ पुनी, कीयो शणगार ॥ सुनके० २
भोजन बनाइ लाये, कचन को थार,
जल भरी झारी लाये, पाये दो दुलार ॥ सुनके० ३
त बोल चवाइ वुपनी कीयो है जुहार।
कु वर जी का स्वामी सो, करत विहार ॥ सुनके० ४

—वही, पृ० २६

पद १—राग विभास

गुण तो तुहारा[1] रे गाऊ, गुरूजी मैं गुण तो तुहारा रे गाऊ। टेक
श्री हरि तेरो शरण तजी ने, ओर शरण नहि जाऊ। गुरु० १
तु हारी कृपा से मैं नरतनु पायो, अब तो खोटे न खाऊँ ॥ गुरु० २
मन क्राम बचन मनोमल छाडी, दास दासन को रे थाऊ ॥ गुरु० ३
पाप करू मैं पुराण प्रोते दिनदिन अधिक उच्छाऊँ ॥ गुरु० ४
कु वर जी के अवगुण जोशो, तो भव पार न पाउं ॥ गुरु० ५

—वही, पृ० ३३

पद १

ऐसी राधे गोरटी[2] रे, चोरटी आहिर की। टेक
कसु बा को रग चोर्यो, चद्र को बदन चोर्यो ॥

---

[1] तुम्हारा, [2] गोरी।

कोकिला को कंठ चोर्यो, नामा चोरी कीरकी ॥ ऐसी० १
गज केरी. चाल चोरी, इंद्र को गुमान चोर्यो ।
केसरी को लंक चोरी, दामनी शरीर की ॥ ऐसी० २
नाग की नागनीयां चोरी, दाडिम की कलियां चोरी ।
मृग केरो नेनां चोर्यो, छल बल मीन की ॥ ऐसी० ३
रती रती सब को चोर्यो, सामरा को चित्त चोर्यो,
सुर करे दुरशन दीजे, ठाडो जमुनां तीर को ॥ ऐसी० ४

—वही, पृ० ४३

पद २

मेरो मन लीयो मैया, गोरी गोरी गोरी या । टेक
रूप तो रसिला केरो, देखन कुं जाइ ठेर्यो,
कुंजन छुपाइ हेर्यो, ग्वालिनी की छोरीयां ॥ मेरो मन० १
हमेरी पकड कीनी, रंग में रसीली भीनी ।
लीयो मन छीनी कीनी चित्तवाकी चोरीयां ॥ मेरो मन० २
जैसी लागी मीनवारी, दीप सें पतंग सारी,
ऐसी बढी प्रीत धारी, चंदवा चकोरीयां ॥ मेरो मन० ३
लाज से रहत छांनी, पूरब की प्रीत जानी,
कुंवरजी राधा रानी, बोलती बहोरियां ॥ मेरो मन० ४

—वही, पृ० ४४

पद १

मैया मोरी रे, ऐसो मैं जान्यो नहिं कान । टेक
व्रंदावन की कुंजन में रे, हमकुं भइ है पहेचान ॥ मैया० १
गान सुनायो तान सुनायो, दे दे अधिक मोसे मान ॥ मैया० २
छेल छबीलो नंद दुलारो, थोहीपें वारूं मोरो जान ॥ मैया० ३
अपने वदन तें हम कुं दीनो, पीयो है अधररस पान॥ मैया० ४
कुंवर जी नो कंथ रसीलो, वे तो पीयारो मेरो प्रान ॥ मैया० ५

—वही, पृ० ४५

पद २

मैया मोरी रे चितवा चोराई गयो श्याम । टेक
वदन विधु-शत कोटिक-शोये, वारी छब कोटिक काम ॥ मैया० १
राधे नाम बसुं बरसाना, गोकुल नटवर नाम ॥ मैया० २

तही मत जानो जीव जगत के, मुमुलु को गोपुर धाम ॥ मैया० ३
कुवर जी का कथन कीमे, तन मन अरपित धाम ॥ मैया० ४

—वही, पृ० ४५

पद ३

दुलारी मोरी रे, तेने कीयो बड काज । टेक
गोपुर तें हरि जगत बसायो, रक्षक धरम को पाज ॥ दुलारी० १
गोकुल में हरि वास बसत है, सुरनर सहित समाज ॥ दुलारी० २
सुकृत से जामात भयोरी, चौदह भुवन को राज ॥ दुलारी० ३
कुंवर जी नो कथ रसीलो, करहुँ रसिलो वाकी लाज ॥ दुलारी० ४

—वही, पृ० ४५

पद ४

राधे कु ले आई मैया, जाई बरसान सें ॥ टेक
दुलह हमारो कानो, दुलहिनी राधे जानो,
अबना दुराव आनो, कह्यो भ्रखुभानने ॥ राधे० १
लगन लीखाइ लाये, ब्रज की बराता आये,
मगल मनाइ गाये, दीयों बहु दानने ॥ राधे० २
शामकु सृंगार दीनो, कुल को बेवार कीनो,
अब तो भयो आधिनो पायो पकवान नें ॥ राधे० ३
कुवर जी के छे मैया, गोप हो चरावो गैया,
पाउ मे पनैया पेरी, जाऊं अब काननें ॥ राधे० ४

—वही, पृ० ४६

पद १

सदा विहरत रहुं वृंदावन मे,
नामकरण अवसर क्षीर नायो ।
आशिष पाइ मगन भए मन मे ॥ सदा विहरत० १
गोवरधन वन उपवन फिरहुँ,
करहुँ अलौकिक काज कुंजन मे ॥ सदा बिहरत० २
गोप गोवालनी के उर बसहुँ,
नेह लगाई नये ब्रज जन मे ॥ सदा बिहरत० ३
कुंवरजी, मन मोहन रसिया,
युगल बीच रहुँ नद अगन मे ॥ सदा बिहरत० ४

—वही, पृ० १३१

रेलवे विषयक पद

रेल बेल पें वारवार बलहार हार हरखें हेरी । टेक
इस्टेशन[1] अटकात जात है, चोलीपाट खेले खेरी,
दाम लीये तें काम करे है, बिना दाम वाकी वेरी ।। रेल० १
सारा प्यारा ओंर लवारा, रेता हेवाकुं घेरो,
टीकीट लेत है दाम देत है, बैंठत है मरदा मेरी ।। रेल० २
लेत विसामा ठाम ठाम, मुकाम बार बोले टेरी,
खबर देत जावे निकेत, ठाडी रेवे रस्ते नेरी ।। रेल० ३
चली चली जब जात जोर मे, आत जात पवनां लेरो,
कुंवरजी सुख कैसे बरनुं, लेती पैसा की ढेरी ।। रेल० ४

—वही, पृ० १३२

कवित्त

जगत बनायो तब, ब्रह्माजी कुं नांही मिल्यो,
कोऊ कविराज साची, बुद्धि न बताइ है ।
सागर को पानी सुधा, सरस बनायो नांही,
चंदा कलाहीन वाको, वहन मीटाइ है ।।
मृगमद जाइ के कुरंग नाभ मांही कीयो,
होत जो भमांन चाहीया कीपें भलाइ है ।
कस्तुरी के काज चाडीया की जीभ काटे जग,
तासें मटे क्लेश, मेरे मन यह आइ है ।।
कहे कुंवरजी शशी सागर सुधारे होत,
रोग प्यास जात, मेरी मति ललचाइ है ।।

—वही, पृ० १३३

सौ० इन्दुमती ह० देसाई जो

आपना चरणोमां[2]

आशावरी

क्या धरूं चरनन में मोरारी क्या धरूं चरनन मे ?
ए[3] तन तेरा ए मन तेरा चित्त धरूं चरनन मे ।। मोरारी०
जगत सारा तूही रच्या प्रभु आप रहे घट घट मे,
जल में देखुं स्थल में देखुं रहे हरि तुम सब मे ।। मोरारी०

---

[1] स्टेशन, [2] आपके चरणों में, [3] यह ।

अणु अणु मे प्रभु आप रहे हैं, कृति देखु सब जग मे ।
काहे हरि में मन्दिर जाउ ? आप रहे मेरे दिल मे ।। मोरारी०
सागर प्रभु या पलग देखु, शयन करे हरि मोरे ।
दासी इन्द कहे नाथ पधारो, चित्त धरू चरनन में ।। मोरारी०

—श्री कृष्णमंजरी, माला १, पृ० १

तोरे गुण

गाउ मे गुण तोरे श्री हरि नहि पार पामु मे कदी । गाउ०
वेद पुराण के स्मृति श्रुति प्रभु, करत बखान तोरे फीरी फीरी,
जन्मोजन्म मे मुख से गावें, शब्द पूरत नहि श्री हरि ।। गाउ०
कहुँ गुणसागर के दयानिधाना, करुणासिंधु हरि,
भक्तन के लीये आप पधारत, कहान करुणा करी ।। गाउ०
आश हमारी एक ह्य विभु तुम जानत अन्तर्यामी ।
मुख से इन्दु क्या कहुँ प्रभु लाज रखो श्रीहरि ।। गाउं०

—वही, पृ० ३३

आपकी चरणरज
मालकोष त्रिताल

तुमारी[१] तुमारी चरणरज नाथ, ग्रहे जो मुरारी हमेरो हाथ । तुमारी०
एक दिन आई मैं जाऊ कबी ऐसे, चरन मे ग्रहे जो ओ दीन दयाल ।।तुमारी०
निश दिन आपको भूतल रही मे कर दीयो, मोहे क्षमा हो राज ।।तुमारी०
पुरुष पुराणी करुणासागर याचु प्रभु अब कृपा दयाल ।। तुमारी०
पतित पावन ओ अविनाशी, धरणीधर प्रभु श्री घनश्याम । तुमारी०
मागुं मुरारी मैं दर्शन तुमारा, स्मरू स्मरूं मैं इन्दु तु ज कृपाल ।। तुमारी०

—वही, पृ० ३४

हार गई

मैं ता हार गई हो नाथ अब तुम कृपा करो भगवान । मैं तो०
बहोत गये अब तक आये नहि मोहे चैन नाहि दिनरात ।
ए ससार की माया मे से छुडावो तुम कृपाल ।। मैं तो०
भजन तोरू कीर्तन तोरूं, मागुं निशदिन नाथ ।
माथ भूख्या प्रियतम हमारा पधारो तुम आज ।। मैं तो०

---

[१] तुम्हारी ।

रेलवे विषयक पद

रेल बेत पें वारवार बलहार हार हरखें हेरी । टेक
इष्टेशन[1] अटकात जात है, चीलीपाट खेले खेरी,
दाम लीये तें काम करे है, विना दाम वाकी वेरी ॥ रेल० १
सारा प्यारा और लबारा, रेता हेवाकुं घेरो,
टीकीट लेत है दाम देत है, बैठत है मरदा मेरी ॥ रेल० २
लेत विसामा ठाम ठाम, मुकाम बार बोले टेरी,
खबर देत जावे निकेत, ठाढ़ी रेवे रस्ते नेरी ॥ रेल० ३
चली चली जब जात जोर में, आत जात पवनां लेरो,
कुंवरजी सुख कैसे बरनुं, लेती पैसा की ढेरी ॥ रेल० ४

—वही, पृ० १३२

कवित्त

जगत बनायो तब, ब्रह्माजी कुं नांही मिल्यो,
कोऊ कविराज साची, बुद्धि न बताइ है ।
सागर को पानी सुधा, सरस बनायो नांही,
चंदा कलाहीन वाको, ग्रहन मीटाइ है ॥
मृगमद जाइ के कुरंग नाभ मांही कीयो,
होत जो भमांन चाडीया कीपें भलाइ है ।
कस्तुरी के काज चाडीया की जीभ काटे जग,
तासें मटे क्लेश, मेरे मन यह आइ है ॥
कहे कुंवरजी शशी सागर सुधारे होत,
रोग प्यास जात, मेरी मति ललचाइ है ॥

—वही, पृ० १३३

सौ० इन्दुमती ह० देसाई जो

आपना चरणोमां[2]

आशावरी

क्या धरूं चरनन में मोरारी क्या धरूं चरनन में ?
ए[3] तन तेरा ए मन तेरा चित्त धरूं चरनन में ॥ मोरारी०
जगत सारा तूही रच्या प्रभु आप रहे घट घट मे,
जल में देखुं स्थल में देखुं रहे हरि तुम सब मे ॥ मोरारी०

---

[1] स्टेशन, [2] आपके चरणों में, [3] यह ।

अणु अणु मे प्रभु आप रहे हैं, कृति देखु सव जग मे ।
काहे हरि में मन्दिर जाउ ? आप रहे मेरे दिल मे ॥ मोरारी०
सागर प्रभु का पलग देखु, शयन करे हरि मोरे ।
दासी इन्द कहे नाथ पधारो, चित धरू चरनन में ॥ मोरारी०

—श्री कृष्णमजरी, माला १, पृ० १

तोरे गुण

गाउ मे गुण तोरे श्री हरि नहि पार पामु मे कदी । गाउ०
वेद पुराण के स्मृति श्रुति प्रभु, करत बखान तोरे फीरी फीरी,
जन्मोजन्म मे मुख से गावें, शब्द पूरत नहि श्री हरि ॥ गाउ०
कहुँ गुणसागर के दयानिधाना, करुणासिधु हरि,
भक्तन के लीये आप पधारत, कहान करुणा करी ॥ गाउ०
आश हमारी एक हय विभु तुम जानत अन्तर्यामी ।
मुख से इन्दु क्या कहुँ प्रभु लाज रखो श्रीहरि ॥ गाउ०

—वही, पृ० ३३

आपकी चरणरज
मालकोंष त्रिताल

तुमारी[१] तुमारी चरणरज नाथ, ग्रहे जो मुरारी हमेरो हाथ । तुमारी०
एक दिन आई मैं जाऊ कबी ऐसे, चरन मे ग्रहे जो श्री दीन दयाल ॥तुमारी०
निश दिन आपको भूतल रही मे कर दीयो, मोहे क्षमा हो राज ॥तुमारी०
पुरुष पुराणी करुणासागर याचु प्रभु अब कृपा दयाल ॥ तुमारी०
पतित पावन श्री अविनाशी, धरणीधर प्रभु श्री घनश्याम । तुमारी०
मागु मुरारी मैं दरशन तुमारा, स्मरू स्मरू मैं इन्दु तु ज कृपाल ॥ तुमारी०

—वही, पृ० ३४

हार गई

मैं तो हार गई हो नाथ अब तुम कृपा करो भगवान । मैं तो०
बहोत गये अब तक आये नहि मोहे चैन नाहि दिनरात ।
ए ससार की माया मे से छुडावो तुम कृपाल ॥ मैं तो०
भजन तोरू कीर्तन तोरू, मागुँ निशदिन नाथ ।
भाव भूख्या प्रियतम हमारा पधारो तुम आज ॥ मैं तो०

---

[१] तुम्हारी ।

मोह माया मत्सर मारी, सतावे दिन रात।
स्मरण तोरू थाय नाहि प्रभु इन्दु रंज हुइ मोरार ॥ मैं तो०

—वही, पृ० ३५

मैंने देखे

भैरवी त्रिताल

मैंने देखे एक गोविंद मुरारी जो बिन जगत देख्यो मैंने खालो। मैंने०
ममता देखी मैंने हरि में, मोहन प्रेम मर्या गिरधारी।
अमृत सागर सुधासिंधु श्याम हमेरे वनमाली ॥ मैंने०
ज्योति नयनो में प्रेम भरेली मनमोहन सूरत मुरारी।
हरि प्रभु मैंने जानी तुम बिन विकट जगवाट भारी ॥ मैंने०
पूर्ण तुं पुरुषोत्तम तुज बिन देखुं मे क्या जग मांही।
इन्दु के तुम प्राण आधारे मिले मुज को श्री अविनाशी ॥ मैंने०

—वही, पृ० ३६

नूपुर धूनो

दुर्गा

बोजे बाजे नूपुर की धूनी सखी,
वहाँ चले गोपीन संग मोरे हरि।
लीनी मुरली प्रभुजीए करे ग्रही।
सुधा पूरे अमीरस स्नेहे भरी ॥ बाजे बाजे०
बाजे मृदंग चंग अति सुन्दीर हरि,
मोही गोकुल कामिनी अति प्रेमे भरी।
रस रूप मोरे कृष्ण प्रभु आये अहिं,
इन्दु नमत हुँ चरनन मे झुकी झुकी ॥ बाजे बाजे०

—वही, पृ० ३८

वनमाला

काफी त्रिताल

वनमाला गूथे श्री मोरार,
फूल रंग बेरंगी अपार ॥ वनमाला०
तुलसी पत्र प्रभुजी को प्यारूं अति छे सखी,
गूथे गूथे ए हार मही श्याम ॥ वनमाला०

कपायी आवो ए जोने सखी केवी सुरभि,
लाजत है कस्तुरी अपार ॥ वनमाला०
गूथी मनोहर माल मोरे श्याम ने,
धरे धरे शणगार मोरे नाथ ॥ वनमाला०
माला तोरा भाग्य की मैं क्या कहूं बडाइ,
पहेरे इन्दु के प्रभु तारण हार ॥ वनमाला०

—वही, पृ० ३९

अमारी[1] आश

आशावरी त्रिताल

अमारी आश को प्रभुजी एक दिन आप पूरेंगे।
खता[2] कछु हो गई हमसे, मुरारी माफ कर देंगे ॥ अमारी०
दया के सागरा मोरा कृपा के पल निधाना हो।
अमेरे रक को पर श्याम नजर तो आप लगावेंगे ॥ अमारी०
जपत हूँ दिल मे मोरे नहिं चित रहत हय वारी।
हृदय के दर्द हय भारी कहुँ क्या श्याम मुरारी ॥ अमारी०
पधारो आप प्रभु मोरे दया कर नाथ गिरधारी।
मिटा दो आग दिल की श्याम इन्दु के श्याम बिहारी ॥ अमारी०

—वही, पृ० ४०

दिल की लगन

मालकोष त्रिताल

दिल को लगी लगन तोरी आज।
मोहे मीलत नाहि मोरे नाथ ॥ दिल को०
हृदय तलपत मन मू झावत,
मिलु कब मोहे श्याम सुहाग।
जा मोरे प्रभु सुन्दर कृष्ण जी,
मैं देख आइ चौपास ॥ दिल को०
जलन कब बूझेगी हमेरी,
हम जानत नाहि दयाल।
जब मिलेगा तुज प्रेम जल मोहे,
मैं पाउ दिल आराम ॥ दिल को०

---

[1] हमारी, [2] भूल।

एक ही दिन एक ही वेला,
दे दीदारा नाथ।
इन्दु के हो प्रियतम प्रभु जी,
तो दर्शन है दयाल। दिल को०

—वही, पृ० ४४

राधेश्याम

तोडी त्रिताल

राधे गोरी मोरारी तुम श्याम जी,
श्याम जी श्यामजी हमेरे घनश्याम जी ॥ राधे गोरी०
गई एक दिन राधे जल भरवा काजजी,
मीले मीले बीच में मोरे कहान जी। राधे गोरी०
मिट्ठी[1] वातों से मन लीना तुंने गिरिवर,
लीना लीना हृदय मोरे नाथ जी ॥ राधे गोरी०
तेडी मधुवन में बैठे हैं कुंज भुवन में,
वाही बंसी मोरे श्री दयाल जी। राधे गोरी०
देखी देखी राधिका ने मुगट मांही सुंदरी,
चली चली रिसा के राधे श्याम से ॥ राधे गोरी०
राधे मोरी राधे मोरी वदत ऐ मुरारी,
तोरो प्रति बिंब है देख राधे प्राण जी। राधे गोरी०
आइ राधे श्याम संगे कीनी बात प्रेम से,
दासी इन्दु नमीनमी[2] करत दर्श मेरे श्याम जी ॥ राधे गोरी०

—वही, पृ० ४५

मेरे कहान

सखी री मोरे कहान नहि रे आये,
मैं तो मोद भरी हूँ प्यारे ॥ सखी री०
देखुं हरि मैं रास्ता तुमारा।
नाथ नाहि वहां पाये ॥ सखी री०
देख देख में थकी सखी मोरी,
श्याम छुपे मधुवन में ॥ सखी री०
नाथ तुम पर देह ओवारू,
शीष धरू चरनन में ॥ सखी री०

---

[1] मधुर, [2] नमस्कार करती हुई।

राजे राजे पल पल प्रभु मैं तो,
देखु कबीर सुरत हरि मेरे ॥ सखी री०
प्रीति बस रही श्याम तुम्हारी,
खेल जगतन के नहि भावे ॥ सखी री०
क्या धरूँ मैं वस्त्र आभूषण,
प्रभु दर्शन बिन दु.ख पाये ॥ सखी री०
नहि योग साधन कु जानत,
नहि जानत मैं तप मे ॥ सखी री०
निर्गुण ब्रह्म को मैं जानत नाहि,
इन्दु जानत है हरि ॥ सखी री०

—वही, पृ० ४६

जग-कथीर

मैंने छिपा लियो छिपा लियो कन्हैयो,
छिपा लियो छिपा लियो, मन को लगाय लियो ॥ मैंने०
युग युग से बिसर रही थी, नाग के नथैयो,
नयन मिलाकर, वे आ गयो सावरीओ ॥ मैंने०
हिरदे पट खोलकर, बैठा दियो कन्हैयो,
मुख को मुस्काते, मेरो चित्त को चुरा लियो ॥ मैंने०
मोर मुगट और कुडल कानन को,
वसरी को लेकर वे आ गयो सावरीओ ॥ मैंने०
बहेनी, अब खोजूं क्या मैं ? दिननाथ आ गयो,
जवहर कमाइ ईन्दु, जग-कथीर को छूडा दियो ॥ मैंने०

मेरो प्रितम

प्रीति की रीत न जाने मेरो प्रितम
मेरो प्रितम, नदराज को छैल,
प्रीत लगाई और नाहि निभावत
रसिकराज रसके बिसर गये
भोर भई, नहि आये मेरो प्रितम ॥
यमुना तीर, पनघट बन बन मे
बाह पकर, ठठोली करत छी गये
पैया परूँ नहि माने मेरो प्रियतम ॥
[illegible] मेरो दधी की [illegible]

बरजोरी से सब गोरस लूंट गये
क्या करू और सतावे मेरो प्रितम ॥
मुरली बजावत, धूम मचावत
मधुरी तान, मेरी सुधबुध बिसरावत
सुनत सुनत मन भायो मेरो प्रितम ॥
रग मरमर मेरी चुनरी भींजावत
खेलत खेलत सब सखीन बिच हस गये
मोहें केसर पिचकारी मारत मेरो प्रितम ॥
ऐसे धुगरे कान्ह नटनागर
ठगके लराई करके, हँस हँस ठग गये
निडर, निपट नाहिं माने मेरो प्रितम ॥
रसभरी मूरत छीन छीन भावदत
कपटी किशोर अति मेरे मन बस गये
देखत चित्त को लूभावे मेरो प्रितम ॥
लग रह्यो मेरो मन मोहन में
प्रीत की आँखें पिया की लग गई
अबतक क्यों नाहिं जागत ? मेरो प्रितम ॥
श्यामसुन्दर ईन्दु के प्रितम प्यारे
बिनती सूनो, हिरदे को लिपट गयो
दरश दीखावो, पधारो मेरो प्रीतम ॥[1]

—ईन्दुमती ह० देसाईजी

श्री रंग अवधूत महाराज

१

(राग काफी, ताल-दीप चंदी)

मेरो दत्त दिगंबर, एक ही तारनहार-ध्रुव
गुरुचरन रज मेरो तीरथ, ए ही गंग अधहार[2]....मेरो० १
गुरु-कंजपद ध्यान[3] स्नान मम, संध्या तर्पण सा....मेरो० २

---

[1] उपर्युक्त दोनों पद्य लेखिका ने मुझे भेजने की कृपा की थी। एतदर्थ मैं इनका बहुत ही आभारी हूँ। इनके अन्य पदों के प्रकाशन की अनुमति के लिए भी मैं इनका बहुत आभारी हूँ।

[2] पापों को दूर करने वाला।

[3] गुरु के चरण-कमल का ध्यान।

स्वाध्याय[1] गुरुगुण संकीर्तन, सेवा तप कलितार ''मेरो० ३
रग गुरु बिन कोई न तेरो, विषय[2] विपारो[3] बिरखार मेरो० ४
—अवधूती मौज, पृ० १

६

गुरु चरन प्रीत मोरी लागी रे। ध्रु०
सोती थी मैं जनम-जनम से, गुरुशबद से जागी रे। गुरु० १
हाट बजार फिरू मतवाली, लोकलाज सब त्यागी रे। गुरु० २
कोहं कोह पूछत रागी, सोहं कहत विरागी रे। गुरु० ३
ना मैं रागी ना मैं विरागी, रग-राग से भागी रे। गुरु० ४
—वही, पृ० ६

(राग-आशा माड, ताल-कहेरवा)

सून सून तपसी[5]! ज्ञान सुनावु, फिर फिर ध्यान लगाव।
मन चले तो चलन दे, पण तन न जाय लगार॥
ऐसी भीतर सुरत[6] चलाव। टेक
गिल्ली दडा खेल चलाया, गिल्ली उडे आप।
गिरत गिरत फिर दडा मारा, फिर फिर उडे आप॥ ऐसी० १
मन मरकट निशदिन भटकत है, भटक भटक स्थिर आप।
गोली सुरत बेहोश[7] बनाके, तदाकार कर थाप॥ ऐसी० २
कहाँ[8] कश्मीर, कहाँ गुजराता, कहाँ पक्षी की जात?
चकोर चदा नित आनदा, ए ही सुरत साक्षात्॥ ऐसी० ३
सीतामाई शोक छवाई, दैतगढ घभडाय[9]।
सुरत चलाई सेना आई, रावण मार्यो राम॥ ऐसी० ४

[1] नित्यपाठ या मंत्र जप, [2] (i) कलियुग मे तारन हार, (ii) जीवेश्वर के झगडे से बचाने वाला, [3] विषमय, [4] साँप, [5] पूज्य महाराज श्री अपने पुस्तको के प्रकाशक एव अतेवासी श्री अमृतलाल जी मोदी को प्रेमावेश में आकर कभी कभी इस नाम से बुलाते हैं। अत उनको उद्देश्य बनाकर लिखे गये भजनों मे यह नाम स्वाभाविक ही आ जाता है। [6] सजातीय वृत्ति का लगातार प्रवाह, [7] मूर्छित, [8] काश्मीर मे कुंज नामक श्वेत पक्षी होते हैं। वे वहाँ अपने अंडे रखकर समुद्र के किनारे पर ठेठ गुजरात तक दूर सुदूर, जुआर तैयार हो जाती है तब, दाना चुगने आते हैं। लेकिन उनकी सुरत उनके अडों की ओर लगी रहती है और उसी सुरत के बल से उनके अंडो का वहाँ पर सेवन होती है, उसी बात का सूचक है। [9] घबडाना।

रंग राग सब छोड़ जहाँ के सब जग अल्लाह् पेख।
बाहिर देखे गद्धा कुत्ता, भीतर राम ही राम ॥ ऐसी०५
—वही, पृ० ७

१२
(राग आशावरी, ताल कहेरवा)

चौद ब्रह्मांड मेरी झोली में ।····ध्रु०
अमुलख मोती हीरा माणेक, जड़ो बूटी मेरी झोली में।
ब्रह्मा विष्णु शिव सनकादिक, रिद्धिसिद्ध मेरी झोली में। चौद० १
धनपति[1] ताको पार न पावे, नवों निधि मेरी झोली में।
पच कुई[2] की झोली हमारी, खैंचत सांई डोरी से। चौद० २
तीन गुणों का तांत बनाया, पट चितर मेरी झोली में।
रग रगाया सदगुरु नाये, रंग निकाल्या झोली से। चौद० ३
—वही, पृ० ८

२२
(राग दोहरा)

एक अलख निरंजन सब जग, भूचर खेचर एक ही वासा।
बम्मन खतरी शूदर भंगी, म्लेच्छ[3] अनारज एक ही श्वासा॥
पशु पंछी अरु कीट पतंगा, जलथल सब जग एक ही देवा।
स्वर्ग भुवन अरु सप्त पताला, गिरि कंदर जंगल नदी नाला ॥ १
राम कहे रेहेमान कहे कोई,[4] अउर्मझ्द कोई बुद्ध बखाना।
कृष्ण कहे क्राइस्ट कहे कोउ, जीन कहे को पारसनाथा॥
महादेव कोउ गणपति देवा, शक्ति कालिका की कर सेवा।
वस्तु एक किन नाम अनन्ता, रूप मृत्तिका घटघट पेखा ॥ २
घटघट रमता राम रमैया, रहेम करे रहेमान कहैया।
अंतदु:ख अउर्मझ्द मिटावे, कर्षंत दुखडा कृष्ण कनैया॥
जीत-इन्द्रिय सो जीन कहेलाना, प्रेम पिलावे पारसनाथा।
इशु ईश्क[5] अंतर पूर बहावे, कर्म मिटावे क्राइस्ट दाता ॥ ३
बुद्धिप्रकाश बुद्ध कहावे, महादेव सब देवनराना।
काल नियामक कालि कहावत, जन गणदेवा गणपति माना॥

---

[1] कुबेर भंडारी [2] खाना, विभाग, [3] अनार्य, [4] पारसी अपने इष्ट देव को इस नाम से पहचानते हैं, [5] सर्वात्मभाव प्रेम।

व्यापक ब्रह्म मिटावत भ्रम को, शिव[1] करे शकर कहेलाना।
सक्कर मिश्री खड[2] कहो कोई, स्वाद अनेरा एक बखाना ॥ ४
गहना[3] घाट अनेक दिखावे, अदर कचन एक ही जाना।
इसविध आतम सब जग व्याप्यो, सब कोई कहे अपने मन भाना ॥
पेड अनेक भीतर रस एका, साहेब[4] एक ही रूप अनेका।
नामरूप सब छोड निकम्मा, अदर पेखत रग रमैया। ५

—वही, पृ० १८

३०

(राग भीमपलास, ताल-त्रिताल)

(सबसे ऊँची प्रेमसगाई के समान राग)

सत से नाही चीज पराई।
जहाँ देखो वहाँ आपु समाई, रूप अरूप दिखाई। टेक
एक नूर विधु[5] सुर[6] प्रकाश्यो, मृगजल किरण ए ही।
सप्तरग घनु आप दिखायो, अत आपु समाई ॥ सत से० १
एक बूँद नख शिख तन व्याप्यो, हड्डी चाम सब ए ही।
पत्ति फूल फल शाखन माँही, एक पेड रस[7] माई ॥ सत से० २
जल तरग अरु फेन बुदबुदा[8], बरफन शीकर[9] सोई।
एक मृत्तिका घाट घडायो, घट कटोरी सहाई ॥ सत से० ३
एक ततु पट सब बिसरायो, विधविध रूप दिखाई।
अश्व स्वार छवि भिन्न दिखायो, अत[10] रग[11] समुझाई ॥ सत से० ४

—वही, पृ० २६

४८

चलो सखीरी पिया मिलन को, वो नाथ हम को बुला रहा है। ध्रु०
ये तट गगा वो तट जमुना, बीच मे गोकुल लुभा रहा है।
श्वासा की बसी बजा बजा के, वो नाथ ताना लगा रहा है ॥ चलो० १
अगली छोडो पिछली छोडो, बिचली गली से चलो री आली।
नहीं अँधेरा नही उजेरा, सुनेरी सध्या सुहा रही है ॥ चलो० २
देह की नैया मन हलैया, सूरत सढ़िया श्रद्धा भरैया।
जल गहरिया तृष्णा तरैया, वो राममैया रमा रहा है ॥ चलो० ३

---

[1] कल्याण, [2] खाड, चीनी, [3] आभूषण, [4] परमात्मा, [5] चन्द्र, [6] सूरज, [7] पेड़ का रस, [8] पानी का बुलबुला, [9] पानी के हलके से बूँद, [10] अतिम, [11] रहस्य।

काहे को बातें काहे के नाते, कहाँ लजाते, कैसे हो जाते।
दुई का परदा हटा के सारा, रंग अकेला जमा रहा है ॥ चलो० ४
नींद गँवाई जाग हराई, अखंड आँखें मिला रहा है।
नैनों का तारा श्याम छबीला, मैं—तूपने को भूला रहा है ॥ चलो० ५

—वही, पृ० ४३

६३

(राग—देस, ताल-दादरा)

(अब तो मेरो राम नाथ के समान राग)

अब मैं कहाँ जाऊँ शरण छोड़ चरण तोरे''''टेक
घर दुवार कोउ नाहीं, भ्रात बिरादर नाही,
नात गोत सर्व तू ही, माई बाप मोरे''''अब० १
नाम सुन दौड़ आयो, पतित पावन मन भायो,
साँवरी सूरत देख धायो, दौड़ कर जोरे''''अब० २
तू पिया मैं तेरी दुल्हन, अशरण शरण मनमोहन,
लज्जा तोकुं भवभंजन, मार तार ओरे....अब० ३
दिवस रैन चैन नही, स्वप्न छबी तू ही सही,
छटक छटक जाय कही ? कब लौ दिल चोरे''''अब० ४
छोड़ छांड लोक लाज, भक्त भयी मिलन काज,
धूल पड़ी जगत ताज, दरस पाय तोरे''''अब० ५
कोउ कहे नफट भयी, लाज मांझ अटक गई,
मैं पिया तेरी भयी, भेदभाव छोरे''''अब० ६
घूंघट दूर फेंक दियो, हाथ में हाथ लियो,
रंग रूप एक भयो, कोउ कांहो बोले !!''''अब० ७

—वही, पृ० ५८

परिशिष्ट—२

सन्दर्भ ग्रंथ

हिन्दी

१	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	डा० दीन दयालु गुप्त
२	अखिल भारतीय हिन्दुस्तानी प्रचार सम्मेलन १९४५ की अधिकृत रिपोर्ट	हिन्दी प्रचार सभा
३	आश्रम भजनावली	स० नारायण मो० खरे
४	उ० भारत की संत परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी
५	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	कृष्ण शकर शुक्ल
६	कृष्ण रुकमणीरी वेलि	स० नरोत्तम स्वामी
७	खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास	ब्रज रत्नदास
८	चारण (त्रैमासिक) वर्ष ३, अंक १	
९	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	गोसाई गोकुल नाथ
१०	दक्खिनी हिन्दी	डा० बाबूराम सक्सैना
११	दादू	क्षितिमोहन सेन
१२	दादू जी की बानी	स० स्वामी मगलदास जी
१३	दादू दयाल की बानी	चंद्रिका प्रसाद
१४	दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता	गोसाई गोकुल नाथ

१५ नागरी प्र० पत्रिका सं० २०१३,
अंक १
१६ व्रज भाषा का व्याकरण — किशोरी दास बाजपेयी
१७ भजन संग्रह धर्मामृत — पं० बेचरदास
१८ भक्तमाल — नाभा जी
१९ भक्त नामावली — ध्रुवदास
२० भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य — डा० हरि कान्त
२१ भारतीय भाषाएँ और भाषा संबंधी समस्याएँ — डा० सुनीति कुमार चटर्जी
२२ भारतीय प्राचीन लिपिमाला — ओझा
२३ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ — डा० सावित्री सिन्हा
२४ मिश्रबंधु विनोद, भाग ३ — मिश्रबंधु
२५ महाराजा छत्रसाल बुन्देला — डा० भगवानदास गुप्त
२६ राज० का पिंगल साहित्य — मोतीलाल मेनारिया
२७ राजस्थानी भाषा — डा० सुनीति कुमार
२८ राजस्थानी भाषा की रूपरेखा — मोतीलाल मेनारिया
२९ राजस्थानी भाषा और साहित्य — मोतीलाल मेनारिया
३० संगीत राग कल्पद्रुम — सं० कृष्णानन्द
३१ संत सुधासार — वियोगी हरि
३२ सूफी काव्य संग्रह — परशुराम चतुर्वेदी
३३ सूफी महाकवि जायसी — डा० जयदेव
३४ हिन्दी भाषा का इतिहास — धीरेन्द्र वर्मा
३५ हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल
३६ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा० राम कुमार वर्मा
३७ हिन्दी साहित्य — आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
३८ हिन्दी साहित्य का आदिकाल — आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
३९ हिन्दी संत काव्य संग्रह — परशुराम चतुर्वेदी

गुजराती

१ अखानी वाणी — प्र० सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद
२ अखो : एक अध्ययन — उमाशंकर जोशी
३ अनवर काव्य — काजी अनवर मियाँ

४	अविनाशानंद काव्य	अविनाशानंद
५	अरजुन वाणी	सं० महादेव देसाई
६	आपणु साहित्य	डा० विपीन झवेरी
७	आनन्दघन पद संग्रह	बुद्धिसागर जी
८	आनन्द काव्य महोदधि सभी भाग	
९	इतिहास निबंध संग्रह	प्र० गु० वि० सभा
१०	कबीर संप्रदाय	किशन सिंह चावडा
११	कविचरित्र १–२	के० का० शास्त्री
१२	कवीश्वर दलपतराम, भाग १	नान्हालाल
१३	कृष्णलीला काव्य	सं० अंबालाल जानी
१४	*काठियावाड़ी साहित्य*	*कहानजी भाई देसाई*
१५	गुजरातमा संगीतनु' पुनरुज्जीवन खरे	
१६	गु० साहित्मों स्वरूपो	डा० मंजुलाल मजमुदार
१७	गिरधर	जगजीवन दास मोदी
१८	गुजराती साप्ताहिक, द० मोदी का लेख *'गुजरातनु' हिन्दी साहित्य'*	रा० रा० जगजीवन दास
१९	गुजराती ओए हिन्दी साहित्मां आपेलो फालो	डाह्या भाई देरासरी
२०	गु० भाषानु' वृहद् व्याकरण	क० प्रा० त्रिवेदी
२१	गु० भाषानो उत्क्रांति	बेचरदास दोशी
२२	गु० साहित्यनु' रेखादर्शन	के० का० शास्त्री
२३	गुजराती साहित्य	अनन्त राय रावल
२४	गुजराती साहित्य परिषद की समस्त रिपोर्टें	
२५	गु० साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास	ईश्वर लाल दवे
२६	चारणो अने चारणी साहित्य	झवेरचन्द मेघाणी
२७	छोटमनी वाणी ग्रन्थत्रीजो	सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद
२८	जैन गुर्जर कवि भाग १	मोहन लाल द० देसाई
२९	वही, भाग २	वही
३०	जैन धर्मनी प्राचीन अर्वाचीन स्थिति	बुद्धि सागर सूरि

३१ दयाराम मोदी
३२ दयाराम काव्य मणिमाला, भाग ६ प्र० नारायण दास शाह
३३ दयाराम काव्य संग्रह न्हानालाल द० कवि
३४ दलपत काव्य, भाग १ वही
३५ वही भाग २ वही
३६ नरसिंह महेता कृत काव्यसंग्रह गुजराती प्रेस
३७ नृसिंह वाणी विलास और श्री नृसिंहाचार्य जी शताब्दी स्मृति ग्रंथ
३८ नवीन काव्य संग्रह प्र० विनय चन्द गु० शाह
३९ नभूवाणी सं० भट्ट निर्भयराम प्रा० गोगा
४० प्राचीन काव्य माला, २५ भाग सं० हरगोविंद कांटावाला
४१ प्रवीण सागर सं० गोविन्द गिल्ला भाई
४२ प्रवीण सागर प्र० गुजराती प्रेस
४३ प्रीतमदासनो वाणी प्र० सस्तु साहित्य, अहमदाबाद
४४ फर्बस त्रैमासिक, वर्ष ५ के अंक
४५ ब्रह्मानन्द काव्य प्र० गुजराती प्रेस
४६ बुद्धिप्रकाश मासिक, सन् १९१५ के अंक
४७ भजन सागर भाग १–२ सस्तु साहित्य, अहमदाबाद
४८ बृहत्काव्य दोहन, भाग १ से ८ सं० ईच्छाराम देसाई
४९ मेहता हर्षदास कृत पद संग्रह सं० मेहता दुर्लभराम
५० मध्यकालनो साहित्य प्रवाह क० मा० मुन्शी
५१ मीरांबाई भानुसुखराम मेहता
५२ मनहर पद सस्तु साहित्य, अहमदाबाद
५३ रणछोड़ भजनावली सं० निर्भेराम प्रा० गोगा
५४ वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास दुर्गा शंकर के शास्त्री
५५ वसंत मासिक, सं० १९१३ और १९६१ के अंक
५६ बड़नगरा नागर गरबावली रा० ब० चन्द्रविधानन्द
५७ साहित्य प्रवेशिका हिं० ग० अंजारिया
५८ शैव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास दुर्गाशंकर शास्त्री

५६ शिक्षण अने साहित्य (मासिक),
जुलाई १६५१ से जनवरी १६५२
तक के अंक।

६० समालोचक (मासिक) सन् १६०३
के अंक

६१ साठीना साहित्यनुं दिग्दर्शन — डाह्याभाई देरासरी

६२ सचित्र साक्षरमाला — जयसुखराम जोशीपुरा

६३ हरिदास काव्य — स० दामोदर हीरजी जगड

६४ कुंवरजी कीर्तन संग्रह — प्र० अमृतलाल कुं० वैद्य

English

1 A Short History of Muslim Rule in India —*Dr. Ishvari Prasad*

2. Bombay Gazetiar, Vol. I, Part I

3 Bengali Language and Literature —*D. F. Sen*

4. Classical Poets of Gujrat —*G. M. Tripathi*

5. Early History of India —*Vincent Smith*

6. Further Milestones in G. Literature —*K. M. Jhaveri*

7. Gujrat and Its Literature —*K. M. Munshi*

8. Indian Antiquary 1914; 15, 16
(Notes on Old Western Rajasthani) —*L. P. Tessitory*

9. Lecture on Gujrati Poetry —*H. R. Scott*

10. Linguistie Survey of India, Part I, Vol. IV —*Greirson*

11. Modern Vernacular Literature of Hindusthan —*Sir George Greirson*

12. Milestones in Gujarati Literature —*K. M. Jhaveri*

13. Selections from Classical Gujrati Literature
(All Volumes) —*Taraporwala*

14. The Nirgun School of Hindi Poetry —*P. D. Barthwal*

परिशिष्ट—३

हिन्दी काव्य साहित्य को प्रदान करने वाले प्रमुख गुजराती कवि

वैष्णव कवि

१ भालण
२ केशवराम
३ नरसिंह मेहता
४ मीराबाई
५ कृष्णदास
६ मुकुन्द
७ दयाराम
८ गिरधर
९ हर्षदास
१० आदित्यराम

स्वामी नारायण सम्प्रदाय के कवि

१ मुक्तानन्द
२ ब्रह्मानन्द
३ प्रेमानन्द
४ निष्कुलानन्द
५ मुजानन्द
६ दयानन्द
७ देवानन्द

सत कवि

१ दादू
२ अखो
३ प्राणनाथ-इन्द्रामती
४ भाणदास
५ रविसाहेब
६ खेम साहेब
७ मोरार
८ त्रिकम
९ होथी
१० जीवण
११ प्रीतम
१२ मूलदास
१३ धीरो
१४ हरदास

१५ कल्याण
१६ निरान्त
१७ भोजो
१८ मनोहर
१९ दीनदरवेश
२० अर्जुन भगत
२१ अनवर
२२ नृसिंहाचार्य
२३ हरिदास
२४ कहान

जैन कवि

१ आनन्द घन
२ ज्ञानानन्द
३ विनय विजय
४ यशोविजय
५ नेम विजय
६ उदय रत्न
७ आनन्द वर्धन
८ किशनदास

राजा और राजाश्रित कवि

राजा

१ महेरामणसिंह
२ अमरसिंह
३ रणमलसिंह
४ मानसिंह
५ अमरसिंह
६ उमड़जी
७ हरिसिंह ठाकुर
८ विजयसिंह

राजाश्रित कवि—१ : चारण

१ आणन्द करमाणन्द
२ ईसरदास बारोट
३ सांया झुला
४ देवीदास
५ जसुराम
६ गोपाल
७ कालीदास
८ वजमल जी महेडु
९ पिंगलशी गढवी
१० जीवा भक्त राजसिंह
११ केसरीसिंह
१२ रविराज
१३ युगल किशोर
१४ कनक कुशल
१५ दूला काग

राजाश्रित कवि—२ : अन्य कवि

१ पुहकर
२ गंजन
३ दलपतिराय बंसीधर
४ लोचह
५ केशवरामजी कवीश्वर
६ आदितरामजी कवीश्वर
७ उत्तमरामजी कवीश्वर

सूफी कवि

१	शेख बहाउदीन बाजन	५	शाम्मवली उल्लाह्
२	काजी महमूद दरियायी	६	हजरत कुबबे आलम
३	शाह् अलीजी राजधनी	७	हजरत सैयद मुहम्मद
४	हजरत खूब मुहम्मद चिश्ती	८	शेख वजीहुद्दीन अहमदमलवी

आधुनिक कवि

१	नमुलाल	८	मूलदास
२	हीराचन्द कानजी	९	दुलेराय
३	दलपतराम	१०	दूला काग
४	नर्मद	११	अविनाशानन्द
५	सविता नारायण	१२	वैद्य कुंवरजी नथु
६	बालाशंकर कंथारीआ	१३	इन्दुमती ह० देसाई (भड़ोच)
७	गोविन्द गिल्ला भाई	१४	रंग अवधूत महाराज